ज्ञान शांति मैत्री

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)

Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya, Wardha

(A Central University Established by Parliament by Act No.3 of 1997)

एमएसडब्ल्यू पाठ्यक्रम (80 क्रेडिट)

चतुथ सेमेस्टर

दूर शिक्षा निदेशालय

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

पोस्ट - हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा - 442001 (महाराष्ट्र)

मार्ग निर्देशन समिति

प्रो. गिरीश्वर मिश्र
कुलपति, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

प्रो. आनंद वर्धन शर्मा
प्रतिकुलपति, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

प्रो. अरबिंद कुमार झा
निदेशक, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

पाठ्यचर्या निर्माण समिति

प्रो. मनोज कुमार
निदेशक – म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. मिथिलेश कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर , म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. शिवसिंह बघेल
असिस्टेंट प्रोफेसर , म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

श्री अमोद गुर्जर
असिस्टेंट प्रोफेसर , म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. शंभू जोशी
असिस्टेंट प्रोफेसर एवं पाठ्यक्रम संयोजक, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

संपादन मंडल

प्रो. मनोज कुमार
निदेशक – म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. मिथिलेश कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर , म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. शंभू जोशी
असिस्टेंट प्रोफेसर एवं पाठ्यक्रम संयोजक, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

इकाई लेखन

खंड -1
डॉ. मिथिलेश कुमार

खंड -2
इकाई 1 व 4 डॉ. मिथिलेश कुमार
इकाई 2 व 3 डॉ. शंभू जोशी

खंड -3
इकाई 2, 3 व 4 डॉ. शंभू जोशी
इकाई 1 व 5 डॉ. मिथिलेश कुमार

खंड -4
डॉ. मिथिलेश कुमार

कार्यालयीन एवं मुद्रण सहयोग

श्री विनोद वैद्य
सहायक कुलसचिव, दू.शि. निदेशालय

श्री महेन्द्र प्रसाद
सहायक संपादक , दू.शि. निदेशालय

डॉ. मेघा आचार्य
प्रूफ रीडर, दू.शि. निदेशालय

सुश्री राधा
टंकक, दू.शि. निदेशालय

अनुक्रम

क्र.सं.	खंड का नाम	पृष्ठ संख्या
1	**खंड – 1 गांधी दर्शन के मूल आधार**	5
	इकाई – 1 सत्य की अवधारणा	6-9
	इकाई – 2 अहिंसा	10-13
	इकाई – 3 सत्याग्रह	14-24
	इकाई – 4 हिंसा पर गांधी के विचार	25-30
2	**खंड – 2 गांधीय समाज कार्य – 1**	31
	इकाई – 1 अहिंसात्मक संघर्ष की अवधारणा और उसका औचित्य	32-37
	इकाई – 2 रचनात्मक कार्यक्रम	38-47
	इकाई – 3 एकादश व्रत	48-52
	इकाई – 4 सर्वोदय	53-60
3	**खंड – 3 गांधीय समाज कार्य – 2**	61
	इकाई – 1 साम्प्रदायिक सद्भाव	62-67
	इकाई – 2 ट्रस्टीशिप	68-80
	इकाई – 3 स्वेदशी	81-90
	इकाई – 4 बुनियादी शिक्षा	91-97
	इकाई – 5 अस्पृश्यता उन्मूलन	98-103
4	**खंड – 4 अहिंसक आंदोलन : गांधी के बाद**	104
	इकाई – 1 भूदान एवं ग्रामदान	105-115
	इकाई – 2 संपूर्ण क्रांति आंदोलन	116-120
	इकाई – 3 सामाजिक आंदोलन की गांधीय प्रविधि	121-128
	इकाई – 4 नव सामाजिक आंदोलन और गांधी	129-138
	इकाई – 5 गांधी की प्रासंगिकता	139-144

ज्ञान शांति मैत्री

MSW 14 गांधीय समाज कार्य

खंड परिचय

प्रिय विद्यार्थियों,

एमएसडब्ल्यू पाठ्यक्रम (चतुर्थ सत्र) के प्रश्नपत्र **MSW 14 गांधीय समाज कार्य** में आपका स्वागत है। इस प्रश्नपत्र को चार खंडों में विभाजित किया गया है।

पहले खंड में गांधी दर्शन के मूल आधारों को स्पष्ट किया गया है। सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह की अवधारणा को समझने का प्रयास किया गया है कि महात्मा गांधी ने इन्हें किस रूप में व्याख्यायित किया और किन संदर्भों और तर्कों के माध्यम से इन्हें प्रस्तुत किया।

दूसरे खंड में गांधीय समाज कार्य की अवधारणा को स्पष्ट किया गया है। इनमें अहिंसात्मक संघर्ष की उनकी अवधारणा को समझाने का प्रयास किया गया है। इसके साथ उनके रचनात्मक कार्यक्रम को बताया गया है जो अहिंसक समाज रचना कीप्रविधि और क्षेत्रों को रेखांकित करते हैं। एकादश व्रत और सर्वोदय को बताते हुए इनकी चर्चा की गई है।

तीसरा खंड भी गांधीय समाज कार्य को स्पष्ट करता है। गांधी विचार के माध्यम से समाज कार्य के कौन से क्षेत्र हो सकते हैं उनकी चर्चा की गई है। इसमें साम्प्रदायिक सद्भाव, ट्रस्टीशिप, स्वदेशी, अस्पृश्यता उन्मूलन जैसे कार्यों और क्षेत्रों का उल्लेख किया गया है।

चौथे खंड में गांधीजी के बाद हुए अहिंसक आंदोलनों का उल्लेख किया गया है। इसके अंतर्गत भूदान,ग्रामदान और सम्पूर्ण क्रांति का उल्लेख किया गया है। इसके पश्चात सामाजिक आंदोलनों की गांधीय प्रविधि, नव सामाजिक आंदोलनों का उल्लेख किया गया है। साथ ही वर्तमान समय में गांधीविचार की प्रासंगिकता की चर्चा की गई है।

ज्ञान शांति मैत्री

खंड – 1
गांधी दर्शन के मूल आधार

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई -1 सत्य की अवधारणा

इकाई की रूपरेखा

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 सत्य : अर्थ एवं संदर्भ

1.4 सत्य एवं अहिंसा: अंतरसंबंध

1.5 सारांश

1.6 बोध प्रश्न

1.7 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

1.1 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको निम्न बिन्दुओं में सक्षम बनाना है –

- सत्य की अवधारणा को समझ पाने में।
- सत्य एवं अहिंसा के बारे में समझ विकसित कर पाने में ।
- सत्य की गांधीय प्रविधि का वर्णन करने में।

1.2 प्रस्तावना

सत्य की अवधारणा गांधीय विमर्श का मूल तत्व है । सत्य के साथ प्रयोग गांधी के जीवन का मूल ध्येय है । उनके समस्त चिंतन का स्रोत सत्य की अवधारणा है। दार्शनिक प्रत्ययों से अलग उन्होंने सत्य के व्यावहारिक एवं दैनंदिन आयाम को प्रकट करने में ज्यादा रूचि दिखाई। हालांकि उनके सत्य की अवधारणा में दार्शनिक पुट भी मिलता है। सत्य उनके लिए एक जीवन शैली के रूप में था। सत्य वस्तुत: अपने अस्तित्व एवं उसे परिभाषित करने की खोज कही जा सकती है। इसलिए उन्हें अपने जीवन को सत्य के प्रयोग के रूप में अभिव्यक्त किया और सत्य की इसी खोज से सत्याग्रह, स्वदेशी, बुनियादी तालीम, ट्रस्टीशिप जैसे सिद्धांत उत्पन्न हुए।

1.3 सत्य : अर्थ एवं संदर्भ

गांधी जी के लिए दो शब्द बहुत महत्वपूर्ण हैं -'सत्य' एवं 'अहिंसा अथवा प्रेम'

गांधी जी के अनुसार ''सत्य सर्वोच्च सिद्धांत है, जिसमें अन्य अनेक सिद्धांत समाविष्ट है। यह सत्य केवल वाणी का सत्य नहीं है अपितु विचार का भी है...।''

आगे वह कहते हैं कि सत्य प्रत्येक मनुष्य हृदय में वास करता है और मनुष्य को इसे वहीं खोजना चाहिए, सत्य जिसे जैसा दिखाई दे वह उसी से निर्देशित हो। लेकिन किसी को यह अधिकार नहीं है कि वह सत्य का जिस रूप में दर्शन करता है, उसके अनुसार चलने के लिए दूसरे लोगों पर जोर जबरदस्ती करें।

साधारण शब्दों में कहें तो अस्तित्व का नियम ही सत्य है। गांधी जी हमेशा इस बात पर जोर देते है कि चूँकि निरपेक्ष सत्य को जानना कठिन है ? अत: जिस सापेक्ष सत्य को जानते है उसी के अनुसार आचरण करें। यहाँ कुछ आलोचक यह प्रश्न उठातेहै कि गांधीजी का यह कथन अस्पष्ट है क्योंकि यदि समाज में हर व्यक्ति अपने सत्य पर बना रहे तो अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी। इस आलोचना पर विचार करने से लगता है कि यह कथन को आधा – अधूरा समझना है। गांधी के सत्य की अवधारणा में अपृथक रूप से अवधारणा जुड़ी है वह है- अहिंसा। यहां अहिंसा का तात्पर्य है कि सत्य को जानने और मानने का सबको अधिकार है परंतु मनवाने का अधिकार नहीं है। गांधी जी के लिए सत्य एवं अहिसा अभेद रूप से जुड़े हुए है। उनके शब्दों में :-

“अहिंसा के बिना सत्य का शोध और उसकी प्राप्ति असंभव है। अहिंसा और सत्य एक – दूसरे से इस प्रकार गुंथे हुए है कि उन्हे पृथक करना प्राय: असंभव है। वे सिक्के, बल्कि कहिए की धातु की चिकनी और बिना छाप वाली चक्रिका के दो पहलू है। कौन बता सकता है कि सीधा पहलू कौन सा है और उल्टा कौन-सा ? फिर भी अहिंसा साधन है और सत्य साध्य है। साधन वही है जो हमारी पहुंच के भीतर हो और इस प्रकार अहिंसा हमारा सर्वोपरि कर्तव्य है। यदि हम साधन को ठी रखें तो देर सवेर साध्य तक पहुंच ही जाएंगे। एक बार इस मुद्दे को समझ जाएं तो अंतिम विजय असंदिग्ध है।”

आगे वे कहते हैं कि लेकिन मानवीय संबंधो में सत्य की सिद्धि का सिवा इसके और कोई साधन नहीं है कि हम अहिंसा का व्यवहार करें। अहिंसा का दृढता के साथ आचरण अनिवार्यत : हमें सत्य तक ले जाता है- जो हिंसा के व्यवहार से संभव नहीं है। इसीलिए अहिंसा पर मेरा दृढ विश्वास है। सत्य मेरे पास स्वभावत: आया। अहिंसा को मैने संघर्ष करके अर्जित किया। लेकिन अहिंसा चूंकि साधन है, इसलिए स्वभावत: अपने दैनंदिन जीवन में हमारा उससे सरोकार ज्यादा है। इसलिए हमारी जनता को अहिंसा की शिक्षा देना आवश्यक है। तदुपरांत सत्य की शिक्षा उसके स्वाभाविक परिणाम के रूप में आएगी।

1.4 सत्य एवं अहिंसा: अंतरसंबंध

सत्य और अहिंसा ही महात्मा गाँधी के सम्पूर्ण चिंतन एवं कर्म का केंद्र बिंदु है । *'ईश्वर सत्य है'* से *'सत्य ईश्वर है'* की उनकी यात्रा दार्शनिक आधार लिए हुए है । लेकिन सत्य की कोई एक निश्चित और एकायामी धारणा स्वीकार नहीं की जा सकती है क्योंकि विभिन्न धर्मों एवं दर्शनों में सत्य को जानने, उसकी प्रक्रिया, अभिव्यक्ति में कई भिन्नताएँ हैं । गाँधीजी इसी विचार को स्पष्ट करते हुए सत्य के अनन्त रूपों को स्वीकार करते हैं और मानते हैं कि निरपेक्ष सत्य को जानना मनुष्य के वश की बात नहीं है । अत: मनुष्य के लिए यह आवश्यक है और यह कर्त्तव्य भी है कि सत्य जैसे उसे दिखाई दे, उसका अनुगमन करें एवं ऐसा करते हुए अहिंसा को अपनाएं-

"निरपेक्ष सत्य को जानना मनुष्य के वश की बात नहीं है। उसका कर्त्तव्य है कि सत्य जैसा उसे दिखाई दे, उसका अनुगमन करे और ऐसा करते समय शुद्धतम साधन अर्थात् अहिंसा को अपनाए।"

अहिंसा के माध्यम से ही हम सत्य के विभिन्न रूपों के अस्तित्व को स्वीकार कर सकते हैं और विभिन्नताओं के बावजूद जीवन संचालित कर सकते हैं। साध्य एवं साधन के एकत्व के कारण सत्य का आग्रह एक प्रकार से अहिंसा का ही आग्रह हो जाता है । अहिंसा की इस अनुभूति का आधार अस्तित्व मात्र के एकत्व का विचार है । इस अहिंसा दृष्टि का सार *मम तथा ममेतर/ स्व और पर के बीच प्रेमपूर्ण एवं सृजनात्मक संबंधों* में

निहीत है । इस *ममेतर/पर में केवल मनुष्य ही नहीं अपितु सम्पूर्ण सृष्टि* शामिल है । इस अहिंसा दृष्टि का व्यावहारिक आधार व्यक्ति द्वारा न केवल अन्य व्यक्ति अपितु सम्पूर्ण सृष्टि के साथ प्रेमपूर्ण संबंध स्थापित करना है । वस्तुत: गाँधीजी के जीवन का सार अहिंसा पर आधारित एक मानवीय सभ्यता का निर्माण करना है । 1931 में लंदन में भारतीय विद्यार्थियों की सभा में गाँधीजी द्वारा कहा गया निम्नलिखित कथन उनके समस्त विचारों को समझने का प्रस्थान बिंदु है-

"मुझे अपने देशवासियों की पीड़ाओं के निवारण से ज्यादा चिंता मानव-प्रकृति के बर्बरीकरण को रोकने की है।"

उपर्युक्त दार्शनिक प्रस्थापनाएँ ही गाँधीजी के समस्त चिंतन का विन्यास करती है । उनके लिए सत्य अहिंसा के रूप में अभिव्यक्त होता है । अत: उनके अनुसार एक आदर्श समाज-व्यवस्था और उसके प्रत्येक सदस्य के आचरण की कसौटी अपने सूक्ष्म एवं सकारात्मक अर्थों में अहिंसा हो जाती है । गाँधीजी एक ऐसी समाज व्यवस्था की कल्पना करते हैं जिसमें सत्ता के किसी भी रूप का केंद्रीकरण न हो क्योंकि यह हिंसक मनोवृति है । उनकी समाज व्यवस्था में आदर्श इकाई स्वावलंबी मनुष्य व आत्मनिर्भर गाँव हैं ।

एक अहिंसक व्यक्ति के निर्माण के लिए वह एकादश व्रतों की धारणा प्रस्तुत करते हैं। इन एकादश व्रतों को निम्नानुसार बताया जा सकता है-

1. सत्य
2. अहिंसा
3. ब्रह्मचर्य
4. अस्तेय
5. अपरिग्रह
6. शरीर-श्रम
7. अस्वाद
8. अभय
9. सर्वधर्म समानत्व
10. स्वदेशी
11. स्पर्शभावना

ये व्रत व्यक्तिगत गुण ही नहीं बल्कि सामाजिक गुण भी है । इनका जीवन में प्रयोग न केवल व्यक्तिगत रूपान्तरण का अपितु सामाजिक रूपान्तरण का भी माध्यम बन सकता है । स्वयं गाँधीजी का जीवन इस बात का प्रमाण है कि इनमें से किसी भी एक व्रत का स्वीकार स्वमेव अन्य व्रतों को समाहित करता है । अहिंसा का उनका आग्रह उन्हें न केवल एक अहिंसक व्यक्तित्व बनाता है अपितु अहिंसा को सामाजिक क्षेत्र में लागू करने को भी प्रेरित करता है ।

एक स्वावलम्बी व्यक्तित्व और स्वतंत्रता एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से आबद्ध हैं । एक अहिंसक व्यक्तित्व का अर्थ ही स्वतंत्र होना है । गाँधीजी के लिए तो *'स्वतंत्रता जन्म के समान'* आधारभूत है, मनुष्य को व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित कर किसी प्रकार की समाज रचना नहीं की जा सकती, अत: स्वंतत्रता की उपेक्षा नहीं की जा सकती है । परंतु यह स्वतंत्रता अमर्यादित है या उसकी कोई सीमा है ? गाँधीजी ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता एवं सामाजिकता को संयोजित करते हुए लिखा कि:

"मैं व्यक्तिगत स्वतंत्रता को मूल्यवान समझता हूँ, पर आपको यह नहीं भूलना चाहिए कि मनुष्य बुनियादी तौर पर एक सामाजिक प्राणी है। अपने व्यक्तिवाद को सामाजिक प्रगति की अपेक्षाओं के साथ समायोजित करके ही वह इतनी उन्नति कर सका है। अप्रतिबंधित व्यक्तिवाद तो जंगल के पशु का नियम है। हमें व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक संयम के बीच एक मध्यमार्ग की खोज करनी होगी। समूचे समाज की भलाई के लिए स्वेच्छापूर्वक सामाजिक संयम को स्वीकार करने से व्यक्ति और समाज, जिसका वह सदस्य है, दोनों की संवृद्धि होती है।"

इस उद्धरण के अनुसार एक अहिंसक समाज हेतु व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिकता के बीच मध्यम मार्ग की खोज की जानी है। यह मध्यम मार्ग व्यक्ति के अहं के विसर्जन और सामाजिकता के स्वीकार से प्राप्त किया जा सकता है। इस मध्यम मार्ग की प्राप्ति यानि व्यक्तिगत अहं विसर्जन एवं सामाजिकता के स्वीकार में श्रम की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाती है।

1.5 सारांश

सत्य की गांधीजी की अवधारणा व्यावहारिक जीवन के लिए उपयोगी है। 'ईश्वर सत्य है' से'सत्य ईश्वर है' तक की उनकी यात्रा अपने में कई दार्शनिक बहसों और व्यावहारिक आदर्शों को संजोए हुए है। उन्होंने सत्य को व्यावहारिक सत्य के रूप में अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए दैनंदिन जीवन में उसके प्रयोगों के बारे में बताया। उससे प्राप्त आत्मबल और अहिंसा शक्ति का प्रतिपादन किया। सत्य के साथ उन्होंने अहिंसा के संबंध को स्पष्ट करते हुए बताया कि दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। सत्य की इसी अवधारणा के कारण उन्होंने भारतीय जनता को सत्यपूर्ण होने का संदेश दिया और बताया कि जब हम सत्य पूर्णहोते हैं तो अभय स्वयमेव प्राप्त हो जाता है। सत्य की उनकी अवधारणा यह स्पष्ट करती है कि सत्य के कई रूप होते हैं अत: हम सभी का कर्त्तव्य है कि हम अपने से इतर अन्य सत्यों के अस्तित्व को भी स्वीकार करें और उनके साथ सहअस्तित्व के सिद्धांत के साथ जीवन व्यतीत करें। उनके लिए सत्य अपने आप में निरपेक्ष भी है और व्याख्या में सापेक्ष भी।

ज्ञान शांति मैत्री

1.6बोध प्रश्न

प्रश्न 1: सत्य क्या है? स्पष्ट कीजिये।

प्रश्न 2: सत्य एवं अहिंसा का वृहत वर्णन कीजिये।

1.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- प्रभु, आर.के.एवं राव, यू.आर. (अनु. भवानी दत्त पंड्या) (1974). महात्मा गांधी के विचार. दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट.
- मशरूबाला, किशोरलाल. (2001). गांधी विचार-दोहन. नई दिल्ली: सस्ता साहित्य मंडल.
- सुमन, श्रीरामनाथ. (1967). सत्याग्रह : निष्क्रिय प्रतिरोध, असहयोग, सविनय एवं, सत्याग्रह बनारस: उत्तर प्रदेश गांधी स्मारक निधि.
- आचार्य,नंद किशोर.(2004). सभ्यता का विकल्प. बीकानेर : वाग्देवी प्रकाशन.

इकाई -2 अहिंसा

इकाई की रूपरेखा

2.1 उद्देश्य
2.2 प्रस्तावना
2.3 अहिंसा : अर्थ एवं संदर्भ
2.4 अहिंसा की वैज्ञानिक अवधारणा
2.5 अहिंसा का स्वरूप
2.6 सारांश
2.7 बोध प्रश्न
2.8 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

2.1 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको निम्न बिन्दुओं में सक्षम बनाना है –

- अहिंसाकी अवधारणा को समझ पाने में।
- सत्य एवं अहिंसा के बारे में समझ विकसित कर पाने में ।
- अहिंसा की गांधीय प्रविधि का वर्णन करने में।

2.2 प्रस्तावना

गांधी का जीवन सिद्धांत एवं व्यवहार का पूर्ण समन्वय था। गांधी जी कहते है कि "यदि हम अहिंसाके सिद्धांत को सिद्ध कर सके तो इसे संसार की उसकीकाया पलटने, निर्मन प्रतियोगिता को समाप्त करने और धनलोलुपता तथा लालच से उत्पन्न होनेवाले सामाजिक विघटन को रोकने के सर्वोत्तम साधन के रूप में पेश कर सकते हैं।" गांधी के इन बातों से पता चलताहै कि अहिंसा उनके लिए दुनिया बदलने की सर्वोतम साधन थी। वे यह भी कहा करते थे कि मेरे जीवन का मार्गदर्शन सिद्धांत निष्क्रियता नहीं, अपितु अधिकतम सक्रियता है। अत: कहना उचित है कि गांधीजी सिद्धांतों की कोरी कल्पना के बजाय व्यवहारिकता के धरातल पर रहना पसंद करते थे।

2.3 अहिंसा : अर्थ एवं संदर्भ

अहिंसा का सामान्य अर्थ किसी दूसरे व्यक्ति अथवा जीव को कष्ट न पहुँचाने की भावना एवं क्रिया है। गांधी जी के दृष्टि में मन, वचन एवं कर्म से दूसरे को कष्ट न पहुँचाना ही अहिंसा है। गांधी अहिंसा को ईश्वर तक पहुँचने की बात करते थे। जैन धर्म की सबसे बड़ी बात यह है कि उसमें सबसे ज्यादा बल अहिंसा पर दिया गया है। बौद्ध धर्म भी विश्व शांति की बात इसी अहिंसा पर करता है। इस तरह हिंसा का आभार ही

अहिंसा है। जहाँ शांति है वहाँ अहिंसा है और जहाँ अहिंसा है वहाँ शांति है। इससे स्पष्ट होता है कि जहाँ-जहाँ आज दुनिया में अशांति है वहाँ हिंसा मानसिक, वाचिक कार्तिक रूप में विद्यमान है।

गांधी की दृष्टि में अहिंसा का स्वरूप :- महात्मा गांधी एक तरफ अंग्रेजों से गुलामी को खत्मकरने के लिए लड़ रहे थे तो दूसरी तरफ भारतीय समाज में विद्यमान अंधविश्वास, अस्पृश्यता, अलगाव, एवं दारिद्रता जैसी बुराईयोंके खिलाफ लड़ रहे थे। इस दौरान अहिंसा को अपना प्रमुख अस्त बनाया जिसकी स्वरूपगत विशेषताएँ निम्नवत है।

अ) अहिंसा पशुबल से ज्यादा श्रेष्ठ है तथा यह मानव जाति का नियम है।

आ) अहिंसा उकसे लिए उपयोगी नही है जिसे प्रेम के ईश्वर में जीती-जागती आस्था नहीं है।

इ) अहिंसा मनुष्य के स्वाभिमान और आत्मसम्मान की पूरी तरह रक्षा करती है। मगर अनैतिक कृत्यों की रक्षा करने में अहिंसा सहयोग प्रदान नहीं करती।

ई) अहिंसा का प्रयोग स्वयं की रक्षा के लिए किया जाना चाहिए दूसरों पर शासन स्थापित करने या चलाने के लिए नही।

उ) अहिंसा का प्रयोग कोई भी अपने जीवन में कर सकता है। चाहे वह किसी जाति, धर्म, क्षेत्र, भाषा अथवा आयु का हो।

ऊ) अहिंसा का प्रयोग सिर्फ व्यक्तियों के लिए ही नही समूह एवं समुदाय के लिए भी उपयोगी है।

ऋ) अहिंसा जीवन के किसी एकांगी पक्ष पर ही नहीं बल्कि जीवन के सम्पूर्ण पक्ष पर लागू होनी चाहिए।

2.4 अहिंसा की वैज्ञानिक अवधारणा

इस प्रकार गांधी जी के लिए सत्य और अहिंसा में कोई भेद नही है। उनके शब्दो में 'अपने विशुद्धतम रूप में अहिंसा का अर्थ है अधिकतम प्रेम।'

गांधी के सत्याग्रह संबंधी विचार को समझने से पूर्व यह आवश्यक है कि उनके अहिंसा संबंधी विचार पर दृष्टिगत कर लिया जाए। इसका कारण है कि गांधी के लिए अहिंसा न केवल एक धार्मिक तर्क है अपितु एक वैज्ञानिक एवं ऐतिहासिक तर्क भी है। गांधीजी के लिए धर्म से तात्पर्य किसी औपचारिक अथवा संप्रदायगत धर्म से नहीं है वरन समस्त धर्मों के मूल में जो धर्म है, उससे है। गांधीजी हिन्दू धर्म, इस्लाम धर्म, जैन धर्म आदि में अहिंसा को सभी धर्मों के अनिवार्य तत्व के रूप में प्रस्तुत करते है।

अहिंसा को वैज्ञानिक सिद्धांत की भांति प्रस्तुत करते हुए गांधी विज्ञान के 'संसजक बल,''अधिकेन्द्री बल' व 'गुरूत्वाकर्षण बल' सिद्धान्तोंको मानव जीवन व इतिहास में 'प्रेम के अस्तित्वगत नियम के रूप में स्थापित करते है-

''वैज्ञानिक बताते है कि जिन अणुओं से मिलकर हमारी पृथ्वी की रचना हुई है उनके बीच यदि संसंजक बल या संसक्तिशील बल विद्यमान न हो तो पृथ्वी खंड-खंड हो जायेगी और हमारा अस्तित्व समाप्त हो जाएगा, और जिन प्रकार पदार्थों में संसंजक बल है उसी प्रकार सभी चेतना पदार्थों में भी यह बल उपस्थित होना चाहिए, और चेतन पदार्थो में इस संसंक्तिशील बल का नाम है 'प्रेम', हमें इसके दर्शन पिता-पुत्र में, भाई-बहन में, मित्र-मित्र में होते है। लेकिन हमें समस्त जगत के बीच इस बल के प्रयोग का अभ्यास डालना चाहिए ; इसी प्रयोग में हमारा ईश्वर का ज्ञान निहीत है। जहां प्रेम है वहां जीवन है ; घृणा विनाश की और ले जाती है।''''मेरा मानना है कि मानवजाति की ऊर्जा का कुल योग हमारे अपकर्ष के लिए नहीं बल्कि हमारे उत्कर्ष के

लिए है और यह प्रेम के नियम अचेतन किंतु निश्चित प्रवर्तन का परिणाम है। मात्र यह तथ्य कि मानवजाति का अस्तित्व बरकरार है : इस बात का प्रमाण है कि संसक्तिशील बल विच्छेदक बल से अधिक शक्तिशाली है ; अभिकेन्द्री बल से बढ़कर है।"

"जिस प्रकार गुरूत्वाकर्षण के प्रभाव से बंध कर अपनी कक्षा में स्थित है उसी प्रकार सारा समाज अहिंसा के सूत्र से बंधा है। लेकिन जब गुरूत्वाकर्षण के नियम की खोज हुई तो इस खोज के अनेक ऐसे परिणाम सामने आये जिन का ज्ञान हमारे पूर्वजों को नही था। इसी प्रकार जब समाज की रचना सोच-समझकर अहिंसा के नियमानुसार की जाएगी तो उस की संरचना की भौतिक विशिष्टताएं जैसी आज है, उन से भिन्न होंगी।"

गांधी जी अहिंसा को ऐतिहासिक आधार पर भी पुष्ट करने की कोशिश करते है। उनके अनुसार अब तक के इतिहास को देखने की दृष्टि अगर परिवर्तित की जाएं तो अहिंसा एक मूल्य के तौर पर हमारे सामने आता है। अहिंसा मानवीय अनुभव और इतिहास से समर्थित हैं। आधुनिक सभ्यता की इतिहास दृष्टि को स्पष्ट तौर प्रस्तुतकरते है जहां वह आधुनिक सभ्यता से प्रेरित इतिहास को मानते है। आगे वह कहते है कि लगातार युद्धों, संघर्ष, हिंसा के बाद भी संसार टिका हुआ है यह अहिंसा के कारण ही संभव है।

2.5 अहिंसा का स्वरूप

इस प्रकार यदि हम अहिंसा के स्वरूप को समझना चाहे तो उसे निम्न बिंदुओं में समझा जा सकता है।

1. अहिंसा मानव जाति का नियम है और यह पशुबल से कहीं अधिक महान तथा श्रेष्ठ है।
2. यह अंततः उनके लिए उपयोगी नहीं है जिन्हें प्रेम ईश्वर में जीती-जागती आस्था नहीं है।
3. अहिंसा मनुष्य के स्वाभिमान और आत्मसम्मान की पूरी तरह रक्षा करती है, लेकिन जमीन-जायदाद या चल संपत्ति के स्वामित्व को सदा संरक्षण प्रदान नहीं करती, हालांकि अहिंसा का आभ्यासिक पालन-संपत्ति की रक्षा के लिए सशस्त्र आदमी रखने की अपेक्षा ज्यादा कारगर सुरक्षा प्रदान करता है। अहिंसा की प्रकृति ही ऐसी है कि वह गलत तरीके से कमाए गए लाभों और अनैतिक कृत्यों की रक्षा करने में कोई मदद नहीं करती।
4. अहिंसा के मार्ग पर चलने वाले व्यक्तियों और राष्ट्रों को अपनी प्रतिष्ठा के अलावा सब कुछ बलिदानकरने (राष्ट्रों को अपने अंतिम नागरिक की बलि तक) के लिए तैयार रहना चाहिए। अतः अहिंसा का अन्य देशों पर अधिकार कर बैठने अर्थात साम्राज्यवाद, जो स्पष्टतया अपनी रक्षा के प्रयोग पर आधारित होता है, के साथ कोई मेल नहीं है।
5. अहिंसा ऐसी शक्ति है जिसे सब साथ सकते हैं- बच्चे, युवा स्त्री–पुरूष या प्रौढ व्यक्ति। शर्त यही है कि उन्हें प्रेम के ईश्वर में जीवित आस्था हो वे समस्त मानव जाति को एक समान प्रेम करते हों। अहिंसा को जीवन का नियम मान लेने पर यह केवल व्यक्ति के इक्का –दुक्का कृत्योंपर ही लागू न हो बल्कि उसके समूचे व्यक्तित्व को अनुप्रणित करने वाली होनी चाहिए।
6. यह मानना बहुत गलत है कि अहिंसा का नियम व्यक्तियों के लिए तो ठिक है पर मानवसमूहों के लिए कारगल नहीं है।

गांधीजी अहिंसा के इस स्वरूप के आधार पर ही एक ऐसी तकनीक का विकास करते है जो संघर्ष को निपटाने में सहायक होती है। गांधी इसे सत्याग्रह का नाम देते है। गांधी द्वारा प्रस्तुत सत्याग्रह ऐसा सिद्धांत है

जो अहिंसा को आधार बनाकर समाज में कही भी उपस्थित समस्या को अहिंसक तरीके से समाप्त करने का प्रयास करता है।

2.6 सारांश

गांधीजी ने अपने अहिंसा सिद्धांत को एक व्यावहारिक सिद्धांत के रूप में प्रस्तुत किया। उनके पहले यह सिद्धांत धर्म संबंधी सिद्धांत ही माना जाता था और व्यक्तिगत जिंदगी में ही प्रयुक्त होता था। गांधीजी ने इसे लोकचिंतन और व्यवहार का सिद्धांत बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। अहिंसा के सिद्धांत को उन्होंने भारतीय स्रोतों से उत्पन्न बता कर यह बताया कि यह परम्परा से हमें प्राप्त हुआ है और मानवीय जीवन इसी के कारण टिका हुआ है। अत: अहिंसा की मानवीय जीवन का आधार है। अहिंसा को जीवन के हर क्षेत्र में लागू करने का प्रयोग किया। उनका दृढ़ विश्वास था कि भारत की स्वतंत्रता अहिंसक साधनों से ही प्राप्त की जा सकती है।

2.7बोध प्रश्न

प्रश्न 1: अहिंसा क्या है? स्पष्ट कीजिये।

प्रश्न 2: अहिंसाके वैज्ञानिक अवधारणा का वृहत वर्णन कीजिये।

2.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- प्रभु, आर.के.एवं राव, यू.आर. (अनु. भवानी दत्त पंड्या) (1974). महात्मा गांधी के विचार. दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट.
- मशरूबाला, किशोरलाल. (2001). गांधी विचार-दोहन. नई दिल्ली: सस्ता साहित्य मंडल.
- सुमन, श्रीरामनाथ. (1967). सत्याग्रह : निष्क्रिय प्रतिरोध, असहयोग, सविनय एवं, सत्याग्रह बनारस: उत्तर प्रदेश गांधी स्मारक निधि.
- आचार्य,नंद किशोर.(2004). सभ्यता का विकल्प. बीकानेर : वाग्देवी प्रकाशन.

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई -3 सत्याग्रह

इकाई की रूपरेखा

3.1 उद्देश्य
3.2 प्रस्तावना
3.3 सत्याग्रह : अर्थ एवं संदर्भ
3.4 सत्याग्रह का बुनियादी सिद्धांत
3.5 सत्याग्रह और दुराग्रह
3.6 सत्याग्रह की सफलता के लिए आवश्यक शर्ते
3.7 सत्याग्रह की विशेषताएँ
3.8 सत्याग्रह एवं निष्क्रिय प्रतिरोध (पैसिव रेजिस्टेन्स) में अंतर
3.9 सत्याग्रह के प्रकार
3.10 सारांश
3.11 बोध प्रश्न
3.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.1 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको निम्न बिन्दुओं में सक्षम बनाना है –

- सत्याग्रह की अवधारणा को समझ पाने में।
- सत्याग्रह की गांधीय प्रविधि का वर्णन करने में।

ज्ञान शांति मैत्री

3.2 प्रस्तावना

इतिहास की शुरूआत से ही समाज में संघर्ष विद्यमान रहे है और मनुष्य इस संघर्ष के खिलाफ आवाज उठाता रहा है। इन संघर्षों से निपटने के दो तरीके है। पहला हिंसक प्रतिरोध – यहाँ एक बात गौर करने की हैं कि हिंसा द्वारा समाधान किये जाने पर जीत ज्यादा हिंसा करने वाले की होती है फिर यह जरूरी नहीं है कि वह सही पक्ष की जीत हो। हिंसा के दौरान जो जान-माल का नुकसान होता है उसकी भरपाई करना संभव नहीं है। ऐसी स्थिति में यह सवाल उठता है कि संघर्ष के समाधान के हिंसक पक्ष का कोई विकल्प मौजूद है अथवा नहीं ?

महात्मा गांधी ने संघर्ष के समाधान के लिए हिंसक प्रतिरोध के बरअक्स जो मार्ग बताया वह सक्रिय अहिंसक प्रतिरोध का रास्ता है जिसे वह 'सत्याग्रह' का नाम देते है। अपनी प्रविधि में अहिंसक प्रतिरोध कई तरीकों को शामिल करती है वे है – असहयोग, सविनय अवज्ञा, हड़ताल, धरना, उपवास आदि।

3.3 सत्याग्रह : अर्थ एवं संदर्भ

सत्याग्रह एक संयुक्त शब्द है जो दो शब्दों - सत्य एवं आग्रह के मेल से बना है। जिसका अर्थ होता है सत्य पर दृढता यानि हर परिस्थितियों में सत्य को ही पकडकर चलना। प्रो. नंदकिशोर आचार्य ने अपनी पुस्तक 'सभ्यता का विकल्प' में कहा है कि : 'सत्याग्रह वस्तुत: एक राजनैतिक प्रौद्योगिकी है।'
इस प्रकार गांधी जी द्वारा प्रस्तुत सत्याग्रह का विचार प्रेम के नियम-जो कि अस्तित्व का भी नियम है- को राजनीतिक गतिविधियों का आधार बनाना है। गांधी जी ने अनुसार 'सत्याग्रह राजनीति में धार्मिक भावना का समावेश है' । यहाँ ध्यान रखने वाली बात यह है कि धर्म का तात्पर्य कोई ऐतिहासिक धर्म नहीं बल्कि सभी धर्मो का सार नैतिकता से है। इस प्रकार गांधी के लिए धर्म का मतलब है- विश्व का नैतिक व्यवस्थित शासन। अत: स्पष्ट है कि गांधीजी प्रेम के नियम के आधार पर एक ऐसी प्रौद्योगिकी विकसित करते है जो अपनी प्रक्रिया में भी इसी नियम से संचालित होती है। इसी का नाम सत्याग्रह है। गांधीजी के अनुसार सत्य सबसे बडी शक्ति है। सत्य तीन रूपों में गांधीजी के यहां प्रयुक्त होता है।

1. आत्मबल- अर्थात् हर व्यक्ति को सत्य पर टिके रहने से आत्मबल प्राप्त होता है।
2. प्रेमबल – यानी अपनी प्रक्रिया में सत्य प्रेमपूर्ण है।
3. न्यायबल – अर्थात किसी भी प्रकार के अन्याय अथवा शोषण, दमन और उत्पीड़न के सम्मुख मानवीय समानता, स्वतंत्रता और गरिमा को भौतिक बल की बजाय आत्मबल, पीड़ा देने की वजाय पीड़ा सहकर और घृणा और हिंसा के बजाय प्रेम और अहिंसा के माध्यम से स्थापित करने का प्रयास है।

सत्याग्रह को परिभाषित करते हुए गांधी जी लिखते है-
"सत्याग्रह का अर्थ है, जिसे हम सत्य समझते है उसे मृत्यु पर्यन्त न छोड़ना, सत्य के लिए चाहे जितनी तकलीफें उठानी पड़े, सब उठाना। कष्ट किसी को नहीं पहुंचाना चाहिए क्योंकि कष्ट पहुँचाने ने सत्य का उल्लघंन होता है। इतना सब सहने की शक्तिया जाना ही सच्ची जीत है।"
आगे वह लिखते है कि,''मेरे लिए सत्याग्रह का नियम प्रेम का नियम, एक शाश्वत नियम है। इसका मूलार्थ को ग्रहण करना है। इससे यह सत्य-शक्ति है। इससे यह सत्य-शक्ति है। मैंने इसे प्रेम-शक्ति या आत्म-शक्ति भी कहा है। सत्याग्रह का उपयोग करने में बिल्कुल प्रारंभिक अवस्था में ही, मैंने यह देख लिया कि सत्य के अनुरागमन में विरोधी के प्रति हिंसा करने की गुंजाइश नहीं है; उसकी गलती तो धैर्य और सहानुभूति के द्वारा ही दूर करनी पड़ेगी। क्योंकि जो एक को सत्य जान पड़ता है वही दूसरे को गलत ज्ञान पड़ सकता है। धैर्य का अर्थ स्वयंकष्ट उठाना है। इसलिए सत्याग्रहका अर्थ लिया गया कि विरोधी को पीड़ा देकर नहीं बल्कि स्वयं कष्ट उठाकर सत्य की रक्षा करना।

3.4 सत्याग्रह का बुनियादी सिद्धांत

गांधी कहते है कि ''सत्याग्रह के सिद्धांत का असली रूप यह हुआ कि इस व्रत को स्वीकार करने वाला सदा आत्मबल पर निर्भर रहकर अपने शत्रु को किसी प्रकार का कष्ट न देकर, अपनी साधना को पूर्ण करने के लिए जिस निमित्त सत्याग्रह –व्रत धारण किया हो उसकी प्राप्ति के लिए स्वयं कष्ट भोगेगा।''
यदि हम गांधीजी के सत्याग्रह के बुनियादी सिद्धांत को बिन्दुवार लिखना चाहें तो इस प्रकार लिख सकते है-

1. मनुष्यमात्र के हृदय मे स्थित सत्य सत्याग्रह की बुनियाद है। इसी को 'अंत:करण की आवाज' कह सकते हैं।
2. स्वार्थ के वशीभूत मनुष्य अंत:करण की इस आवाज को दवा देने का कुछ समय तक प्रयास करता है। पर उसका विरोधी अगर सच्चा सत्याग्रही हो तो अंत में वह आवाज सुननी ही होगी।
3. यह आवाज अनेक रूपों में उसके सामने प्रकट होती है। उसे अपने अन्याय का निश्चय हो जाना और उसके लिए पश्चाताप होना इसका श्रेष्ठ प्रकार है। इसी को 'हृदय परिवर्तन' या दिल बदलाव कहते हैं।
4. विरोधी के हृदय को अंत:करण की आवाज के प्रति जागृत करना प्रत्येक सत्याग्रह का साध्य है।

सत्याग्रह का सामान्य सिद्धांत

1. सत्य, अहिंसा आदि साधनों द्वारा ही अधर्म का विरोध किया जा सकता है, यह सामान्य नियम सर्वत्र लागू होता है।
2. सत्याग्रह ऐसा उपाय है जिसमें सत्याग्रही के ही कष्ट उठाने की बात रहती है; विरोधी पक्ष को कष्ट देने का हेतु होता ही नहीं।
3. अधर्म में सत्याग्रह का आधार धर्मयुक्त उपाय ही होना चाहिए।
4. सत्याग्रह के फलस्वरूप विरोधी के साथ कटुता बढ़ती नहीं बल्कि घटती है, और सत्याग्रह के अंत में दोनों पक्ष मित्र बन जाते हैं।
5. अधर्म का विरोध करने के लिए सत्याग्रह की उचित रीति जब तक न सूझ जाय तब तक सत्याग्रही कोई कदम जल्दी नहीं उठायेगा।
6. सत्याग्रही झूटी प्रतिष्ठा के फेरे में नहीं रहता।

3.5 सत्याग्रह और दुराग्रह

जब हम गांधीजी द्वारा प्रस्तुत सत्याग्रह के सिद्धांत पर हम बात करते है तो एक बात आवश्यक रूप से सामने आती है वह है सत्याग्रह और दुराग्रह में भेद करना। गांधीजी लिखते है :'बलात लादे हुए दु:खों से मुक्ति का उपाय ज्ञानपुर्वक दु:ख सहना है, यही सत्याग्रह है। दु:खों से मुक्ति के लिए दु:ख देना दुराग्रह और पशुबल है।'

गांधीजी इस संक्षिप्त उद्धरण में सत्याग्रह व दुराग्रह का अर्थ सटीकता से प्रस्तुत करते है। स्वयं गांधी जी सत्याग्रह को स्वीकार करते हुए भी हिंसा व अहिंसा के द्वन्द्व को पहचानते है परन्तु सत्याग्रह में शत्रु नहीं, विपक्षी होता है। वर्तमान समय में जॉन बोनड्यूरैंट जैसी विश्लेषण सत्याग्रह के मूल में एक गांधीवादी द्वन्द्ववाद (सत्याग्रह –दुराग्रह) भी देख लेती है जो वस्तुओं के स्वभाव या समय की प्रगति में नहीं बल्कि मानवीय प्रवृत्तियों और कर्म में व्यक्त होता है- लेकिन इस द्वद्वं में अहिंसा ही जीवन के संचालक नियम के रूप में प्रतिष्ठित होती है।

सत्याग्रह में स्वेच्छा से दु:ख को सहन करना केन्द्रीय महत्व रखता हैं। प्रत्येक व्यक्ति में अच्छाई – बुराई दोनों प्रवृत्तियां होती हैं। अत: विपक्षी के हृदय में विद्यमान अच्छी प्रवृतियों को /अच्छाई को जगाने के लिए दु:ख सहन करना सर्वोत्तम उपाय है। गांधीजी के अनुसार सत्याग्रह में (स्वेच्छापूर्वक) दु:ख सहन करने की प्रवृत्ति 'मानव जाति का नियम है'

3.6 सत्याग्रह की सफलता के लिए आवश्यक शर्ते

गांधीजी ने हरिजन में अपने एक लेख में सत्याग्रह की सफलता की आवश्यक शर्ते गिनाई है, जिसमें पीड़ा सहन को भी शामिल किया गया है।

1. सत्याग्रही के मन में विरोधी के लिए घृणा की भावना नहीं होनी चाहिए।
2. सत्याग्रही का मुद्दा सच्चा और महत्वपूर्ण होना चाहिए।
3. सत्याग्रही को अपने ध्येय की पूर्ति होने तक पीड़ा भोगने के लिए तैयार रहना चाहिए।

गांधीजी ने समय-समय पर सत्याग्रह के विशेषताओं की उल्लेख किया है। जिन्हें हम निम्न बिंदुओं में लिख सकते है-

1. मानव प्रकृति में बदलने की अनंत सभावनाएं है। सत्याग्रह का मनुष्य की बुनियादी अच्छाई में पूरा विश्वास है।
2. सत्याग्रह में कोई शत्रु नहीं होता, विपक्षी होता है। विपक्षी के प्रति दुर्भावना नहीं होती, उसके दृष्टिकोण में परिवर्तन लाया जाता है ताकि बदले हुए दृष्टिकोण से वह व्यवहार कर सकें।
3. सत्याग्रह पूर्ण रूप से अहिसंक होता है।
4. सत्याग्रह अंतिम अस्त्र के रूप में प्रयुक्त होता है।
5. विपक्षी की कमजोरी का फायदा नहीं उठाना चाहिए।
6. सत्याग्रह में अभय बड़ी महत्वपूर्ण बात है। सत्याग्रही को हर तरह के डर से खुद को मुक्त करना होता है।
7. सत्याग्रह के प्रयोग से कम से कम हानि होती है। हिंसा द्वारा समाप्त एवं नष्ट किए गए प्राणियों, वस्तुओं का लौटना असंभव होता है। सत्याग्रह यह अवसर देता है कि बिना हिंसाके उद्देश्य तक पहुंचा जाए अगर सफलता नहीं भी मिलती है तो भी दूसरों को हानि पहुंचाने के दोष से तो बचा ही जा सकता है।
8. सत्याग्रह का उद्देश्य विपक्षी के हृदय में विद्यमान आत्मबल, प्रेमबल, को जागृत करना होता है। अगर ऐसा न भी कर सकें तो स्वयं अपने मन में दबे उच्चतम भावों व आत्मबल को जागृत करता ही है। इसलिए सत्याग्रह स्वयं सत्याग्रही के लिए भी लाभदायक है।
9. सत्याग्रह में पराजय जैसी कोई बात नहीं है।
10. सत्याग्रह में झूठ, गोपनीयता के लिए कोई स्थान नहीं है।
11. सत्याग्रह में प्रतिपक्षी पर सदैव भरोसा किया जाता है।
12. सत्याग्रह में प्रतिपक्षी से घृणा के लिए कोई स्थान नहीं है।
13. सत्याग्रही सदैव बातचीत करने के लिए तैयार रहता है। हर स्थिति में वह सत्याग्रह से प्रारंभ स्थिति से अधिक बेहतर स्थिति होती है क्यों कि वह प्रतिपक्षी को बातचीत के लिए प्रेरित कर सका। संवाद हीनता से संवाद तक की प्रक्रिया तक आना सत्याग्रह की जीत होती है। गांधीजी अपने आंदोलनों में हमेशा बातचीत के किसी भी प्रस्तावको तत्परता से लेते थे। प्रतिपक्षी से संवाद के किसी मौके को जाने नहीं देते थे। सत्याग्रही यद्यपि हर समय संघर्ष के लिए तैयार रहता

ज्ञान शांति मैत्री

है, पर उसे शांति के लिए भी उतना ही उत्सुक रहना चाहिए। उसे शांति के किसी भी सम्मान जनक अवसर का स्वागत करना चाहिए।

14. सत्याग्रह व्यक्ति और उसके बुरे कर्मों को अलग –अलग करके देखना है यानि वह पाप का विरोध करता है, पापी का नहीं।
15. गांधीजी ने सत्याग्रह के सबसे शक्तिशाली हथियार के रूप में 'जागृत तथा प्रबुद्ध जनमत' को बताया है।

सत्याग्रह के बारे में उपरोक्त विचारों के बाद हम यह कह सकते है कि सत्याग्रह की विशेषता उसके उद्देश्य में सत्यपूर्ण होने के साथ-साथ प्रक्रिया में भी सत्यपूर्ण होने में है। स्थायी हानि से छुटकारा इसकी प्रमुख विशेषताओं में हैं जो हिंसा के विकल्प के रूप में प्रस्तुत होती है।

उपरोक्त गिनायी गयी सत्याग्रह की विशेषताओं के साथ-साथ सत्याग्रही के लिये आवश्यक योग्यताएँ भी बतायी गयी है। हम यहाँ उसे अलग बिंदुवार प्रस्तुत कर सकते है।

3.7 सत्याग्रह की विशेषताएँ

1. ईश्वर में उसकी सजीव श्रद्धा होनी चाहिए, क्योंकि वही उसका आधार है।
2. वह सत्य और अहिंसा को धर्म मानता हो और इसलिए उसे मनुष्य -स्वभाव की सुप्त सात्विकत्ता में विश्वास होना चाहिए।
3. वह चारित्र्यवान हो और अपने लक्ष्य के लिए प्राण और धन का बलिदान करने के लिए तैयार हो।
4. वह आदतन खादीधारी हो।
5. वह निव्यर्सनी हो जिससे कि उसकी बुद्धि हमेशा स्वच्छ और स्थिर रहे।
6. वह अनुशासन के नियमों का पालन करने में हमेशा तत्पर रहता हो।
7. उसे जेल के नियमों का जो कि खासतौर पर आत्मसम्मान को भंग करने के लिए न बनाये गये हों, पालन करना चाहिए।

यह न समझ लेना चाहिए कि इन शर्तों में ही सत्याग्रही की योग्यताओं की परिसमाप्ति हो जाती है। ये तो केवल दिशा- दर्शक है।

सत्याग्रह का कर्तव्य

1. सत्याग्रह के किसी भी संघर्ष में सर्व प्रथम कर्तव्य सत्य पर दृढ रहना है।
2. अपने आस-पास जो स्पष्ट अधर्म चल रहा है उसकी ओर से अपनी आखें बंद ना करें।
3. समाज के प्रचलित अधर्म का विरोध करना उसका कर्तव्य है।

3.8 सत्याग्रह एवं निष्क्रिय प्रतिरोध (पैसिव रेजिस्टेन्स) में अंतर

यूं तो निष्क्रिय प्रतिरोध को सत्याग्रह का ही एक भाग माना जाता है लेकिन गांधीजी सत्याग्रह और निष्क्रिय प्रतिरोध में अंतर भी करते है।

पैसिव रेजिस्टेन्स	सत्याग्रह
1. पैसिव रेजिस्टेन्स कमजोरों का हथियार माना जाता है।	1. सत्याग्रह वीर व्यक्तियों का हथियार है।

2. पैसिव रेजिस्टेन्स में प्रेम की भावना के लिए कोई जगहनहीं है।	2. सत्याग्रह में वैर भावना के लिए कोई जगह नहीं है।
3. पैसिव रेजिस्टेन्स में मौका आने का हथियार बल का उपयोग किया जा सकता है।	3. सत्याग्रह में हथियारों के उपयोग के लिये उत्तम से उत्तम परिस्थितियां पैदा होने पर भी वह सर्वदा त्याच्य है।
4. पैसिव रेजिस्टेन्स हथियार बल के साथ चल सकता है।	4. सत्याग्रह हथियार बल का संपूर्ण रूप से विरोधी है।
5. पैसिव रेजिस्टेन्स का उपयोग अपने प्रियजनों के प्रति वस्तुत: हो नहीं सकता।	5.सत्याग्रह का उपयोग अपने प्रियजनों के प्रति भी हो सकता है और होता है।

3.9 सत्याग्रह के प्रकार

गांधीजी सत्याग्रह की अपनी प्रौद्योगिकी के कई व्यवहारिक रूप बताते हैं। जिसमें समझाना, असहयोग, सविनय अवज्ञा, हड़ताल, काराबंदी, उपवास आदि है।

1.**समझाना:**

अ) विरोधी को समझाकर समाधान –भाव से काम करने का प्रयत्न करना सत्याग्रही का पहला लक्ष्य और सत्याग्रही की पहली सीढ़ी है।

ब) इस तरह समझाने का एक भी उपाय वह नहीं छोडेगा। इसमें वह अपने धीरज और उदारता की पराकाष्ठा दिखायगा। इसके लिए मध्यस्त की भी सहायता ले सकता है। और जिनसे सिद्धांत का भंग ना होता है वैसी सभी छूटें देने को तैयार रहेगा।

क) समझाने का प्रयत्न निष्फल न हो जाने पर और खास-तौर का कदम उठाने का समय आने पर वह विरोधी को आखिर मौका दिये बिना नहीं छोडेगा।

2. असहयोग :

असहयोग अपने आप में एक सकारात्मक अवधारणा है, चाहे ऊपरी तौर पर यह नकारात्मक ही लगे। असहयोग दोनों पक्षों को न्याय के आधार पर एक पवित्र सहयोग के लिए तैयार करता है। वस्तुत:यह तो ‘सहयोग की शुरूआत’ है क्योंकि –

‘‘असहयोग आंदोलन का उद्देश्य यह है कि पारस्पारिक आदर और विश्वास की बुनियादी पर बिना किसी दबाव के सच्चे तथा प्रतिष्ठापूर्ण सहयोग के लिए रास्ता तैयार किया जाए’’

‘वस्तुत:असहयोग जनसाधारण में अपनी गरिमा और शक्ति की भावना जागृत करने का एक प्रयास है। यह तभी संभव है जब उन्हें वह ज्ञान कराया जाए कि यदि वे अपनी अंतरात्मा को पहचान सकें तो उन्हें पशुबल से डरने की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी।’

असहयोग बुराई में अनजाने और अनिच्छापूर्वक भागीदारी करने के विरूद्ध किया गया प्रतिवाद है...बुराई के साथ असहयोग करना उसी प्रकार मनुष्य का कर्तव्य है जिस प्रकार अच्छाई के साथ सहयोग करना।

ज्ञान शांति मैत्री

इस प्रकार असहयोग कोई निष्क्रिय स्थिति नहीं है, यह अत्यंत सक्रिय स्थिति है – हिंसक प्रतिरोध या हिंसा से अधिक सक्रिय। निष्क्रिय प्रतिरोध एक गलत संज्ञा है। असहयोग शब्द का प्रयोग मैंने जिस अर्थ में किया है, उसमें इसका अहिंसक होना आवश्यक है और इसीलिए यह न तो दंडात्मक है और न द्वेष, दुर्भावना अथवा घृणा पर आधारित है।

गांधीजी ने असहयोग को गीता, कुरान, जेन्दअवेस्ता, बाइबिल के उदाहरण देकर असहयोग को नैतिक के साथ-साथ धर्मसम्मत भी बताया है।

असहयोग की सफलता की शर्तें बताते हुए गांधीजी ने तीन प्रमुख बातें कही-

''सफलता तभी संभव है जब पूरी समझ के साथ समवेत रूप से मिलकर असहयोग किया जाए। इसके लिए तीन बातें आवश्यक है- आदेश के अनुसार चलना, शांति और धैर्य तथा हिंसा से सदा दूर रहना।''

इसके अलावा सत्याग्रह के सारे नियम भी इस पर लागू होते है। सत्याग्रह मे रचनात्मक कार्यक्रम अनिवार्य रूप से शामिल है। असहयोग आंदोलन की शुरूआत करते समय भी गांधीजी असहयोग को निर्धारित कर वैकल्पिक व्यवस्था भी प्रस्तुत करते है। यहां ध्यान में रखना चाहिए कि सत्य और अहिंसा असहयोग आदोलन की बुनियाद है यही कारण था कि 1922 में चौरी-चौरा कांड के बाद जब असहयोग आंदोलन हिंसक हो गया तब गांधीजी ने उसे तत्काल स्थगित कर दिया। हिंसा की किसी भी सूक्ष्म स्तर तक की स्वीकृति गांधीजीको अस्वीकार थी क्योंकि वह सत्याग्रह की मूलभावना के ही विरूद्ध थी। एक बार सूक्ष्म स्तर पर हिंसा की स्वीकृति बाद की कई हिंसक घटनाओं की स्वीकृति के लिए द्वार खोल सकती है अतएव यह अस्वीकार्य हुई। गांधी जी के अनुसार असहयोग हिंसा करना नहीं अपितु 'आत्मा त्याग और बलिदान करने के लिये आत्म संयम का दूसरा नाम है।'

3. सविनय अवज्ञा

गांधीजी के अनुसार सविनय अवज्ञा वैधानिक आंदोलन का विशुद्धतम रूप है। 'अनैतिक, वैध कानूनों को शिष्ट रूप में भंग करना सविनय अवज्ञा है।' सविनय अवज्ञा तभी मानी जा सकती है जब वह

- वह सच्चे हृदय से की जाये।
- आदरभाव लिये हो।
- संयमित हो।
- कभी उद्धत रूप ग्रहण न करे।
- सुस्थापित सिद्धांतों पर आधारित हो।
- स्वेच्छाचारिता के दोष से मुक्त हो।
- उसके पीछे कोई द्वेष या घृणा की भावना ना हो।

पूर्व शर्त :

सविनय अवज्ञा के लिए पहली पूर्व शर्त यह है कि उसमें भाग लेने वाले की ओर से हिंसा शुरू न की जाये इसकी पक्की गारंटी हो। हिंसा भड़क उठने पर यह करना बेईमानी होगा वह राज्य अथवा सविनय प्रतिरोधकारियों के विरूद्ध अन्य तत्वों द्वारा प्रेरित थी।

यहां गांधीजी स्पष्ट रूप से एक बात बताते है कि सविनय अवज्ञा हिंसाके वातावरण में प्रगति नही कर सकता। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि सत्याग्रही के पास अब कोई उपाय शेष नहीं है। उसे सविनय अवज्ञा के अलावा अन्य उपाय ढूंढने होंगे।

ज्ञान शांति मैत्री

स्वरूप :

गांधीजी सत्याग्रह को मूल रूप से धर्म से जोड़ते है इसलिये वह धर्म युद्ध का नाम देते है। उनके अनुसार ''धर्मयुद्ध जिसमें न कोई बातें गोपनीय रखने की होती हैं और न जिसमें धूर्तता तथा असत्य के लिए कोई स्थान नहीं होता।''

सविनय अवज्ञा दो तरह की हो सकती है। किसी विशेष अन्यायकारी हुक्म या कानून की, केवल उसी हुक्म या कानून को रद्द कराने भर के लिए और सहयोग के ही खास कदम की भांति, अन्याय अधर्म किये अथवा निर्दोष या तटस्थ जनता को अनुचित असुविधा पहुचाये बिना तोड़े जा सकनेवाले, आमतौर से तमाम कानुनों की है।

यहां ध्यान देने की बात है कि गांधी जी सविनय अवज्ञा व अपराधिक (क्रिमिनल) अवज्ञा में भेद करते है उनके शब्दों में –

''अपराधिक कानून-भंजक कानून को गोपनीय रूप से तोड़ता है और दण्ड से अपने को दूर रखने की चेष्ठा करता है। सविनय प्रतिरोधी ऐसा नहीं करता। जिस राज्य में वह रहता है उसके कानूनों को वह सदा दण्ड–भय के कारण नहीं, बल्कि इसलिए मानता है कि वह उन्हें समाज के लिए हितकारी समझता है। परन्तु कभी-कभी ऐसे अवसर भी आ जाते है, यद्यपि वे बहुत ही कम होते है, जब वह कुछ कानुनों को इतना अन्यापूर्ण समझता है कि उसका पालन उसे अपमान जनक मालूक पड़ता है। तब वह खुलेआम किन्तु विनीत भाव से उनका भंग करता है और उसके लिए प्राप्त दण्ड को शांतिपूर्वक सहन करता है।''

सविनय के शब्द में ही इसका मूल अर्थ समाहित है जो अहिंसा से अविभाज्य रूप से जुड़ा हुआ है। इसके साथ गांधी आक्रामक- रक्षात्मक सविनय अवज्ञा की बात करते हैं-

"आक्रामक, आग्रही सविनय अवज्ञा अहिंसक होती है यह किसी कानून की स्वैच्छिक अवज्ञा है इस अवज्ञा में कोई नैतिक अधमता नहीं है और यह राज्य के विरूद्ध विद्रोह के प्रतीक रूप में की जाती है। इस प्रकार किसी राज्य की सुविधा के लिए निर्मित राजस्व या वैयक्तिक आचरण को नियंत्रित करने वाले कानून- यद्यपि ऐसे कानून स्वयं कोई कठिनाई नहीं उत्पन्न करते और इनके परिवर्तन की जरूरत नहीं – की अवज्ञा आग्रही और आक्रामण अवज्ञा होगी।"

ज्ञान शांति मैत्री

दूसरी और रक्षात्मक सविनय अवज्ञा, ऐसे कानूनों की, जो स्वयं में बुरे है और जिनका पालन मानव - प्रतिष्ठा और आत्म – विश्वास से मेल नहीं खाता, अनैच्छिक या हिचक के साथ अवज्ञा है। इस प्रकार शांतिपूर्ण उद्देश्य के लिए स्वयंसेवक दल गठित करना, ऐसे ही उद्देश्य से जनसभाएं करना, निषेधाज्ञा के बावजूद ऐसे लेखों को प्रकाशित करना जो हिंसा को समर्थन, प्रोत्साहन नहीं देते- रक्षात्मक सविनय अवज्ञा है। और शांतिपूर्ण धरना भी ऐसा ही है जो कि जनता को उन चीजों अथवा संस्था से विरत रखता है, जिसके विरूद्ध धरना दिया जाता है।''

असहयोग की तरह सविनय अवज्ञा को भी गांधी रचनात्मक कार्यक्रम से जोड़ते है। उनके अनुसार वह सविनय भंग, जिसके पीछे रचनात्मक प्रयत्न का बल न हो, न तो सविनय है, न अहिंसक।

सविनय अवज्ञाके बारे में गांधीजी का कहना था कि 'सविनय अवज्ञा तभी मानी जा सकती है जब वह सच्चे हृदय से की जाए, आदरभाव लिए हो, संयमित हो, कभी उद्धत रूप ग्रहण न करें, सुस्थापित सिद्धांतो पर आधारित हो, स्वेच्छारिता के दोष से मुक्त हो और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उसके पीछे कोई द्वेष या घृणा की भावना न हो।

गांधीजी सत्याग्रह और सविनय अवज्ञा में भी अंतर को स्पष्ट करते है सभी सविनय अवज्ञाएं सत्याग्रह का एक अंश होती है, मगर सभी सत्याग्रह तो सविनय अवज्ञा नहीं है।

साथ ही असहयोग व सविनय अवज्ञा के अंतर को भी समझना होगा। 'सविनय अवज्ञा और असहयोग मूलत: एक ही भावना से अनुप्राणित है –फर्क बस इतना है कि सविनय अवज्ञा का संबंध किसी भी अनुचित कानून को मानने से इनकार करता है जबकि असहयोग किसी भी अन्यायपूर्ण वृत्ति या व्यवस्था के साथ सहयोग करने से मना करना है। इसलिए सविनय अवज्ञा के विरूद्ध प्रतिकार है जबकि असहयोग राजकीय अथवा गैर राजकीय किसी भी प्रकार के अनौचित्य का विरोध। अहिंसा दोनों में ही मूल शर्त है।

4. उपवास :

गांधीजी उपवास पर चर्चा करते हुए इसे सत्याग्रह का एक शक्तिशाली अस्त्र बताते है। साथ स्पष्ट करते है कि इसका प्रयोग हर कोई नहीं कर सकता। उनके शब्दों में उपवास करने की शारीरिक क्षमता से ही उसकी पात्रता निर्धारित नहीं की जा सकती। ईश्वर में जागृत आस्था के बिना इसका कोई उपयोग नहीं है। यह एक यांत्रिक प्रयास अथवा मात्र अनुकरण के रूप में कभी नहीं किया जाना चाहिए। उपवास की प्रेरणा व्यक्ति की आत्मा गहराई से आनी चाहिए इसलिए उपवास सदा एक विरल घटना होती है।

विशुद्ध उपवास में स्वार्थ, क्रोध, आस्थाहीनता अथवा अधैर्य का कोई स्थान नहीं हो सकता ... उसमें असीम धैर्य, दृढ संकल्प, उद्देश्य के प्रति अडिग निष्ठा, पूर्ण शांति तथा क्रोध का अभाव होना परम आवश्यक है। लेकिन चूंकि मनुष्य के लिए इन सभी गुणों का तत्काल विकास कर पाना संभव नहीं है, इसलिए जिसने अहिंसा के नियमों के पालन का व्रत न लिया हो, उस सत्याग्रही को उपवास पर नही बैठना चाहिये। उपवास विशुद्ध सत्य तथा अहिंसा पर आधारित हो चाहिए।''

यहां पर गांधीजी उपवास और आमरण उपवास में अंतर करते हुए कहते है कि आमरण उपवास सत्याग्रह के शस्त्रागार का अंतिम एवं सबसे शक्तिशाली शस्त्र है। यह एक पवित्र शस्त्र है। इस इसके संपूर्ण निहितार्थ के साथ स्वीकार करना चाहिए। महत्वपूर्ण स्वयं उपवास नहीं है, बल्कि उसका निहितार्थ है।

गांधीजी उपवास को एक शक्तिशाली चीज समझते थे। और कहते थे कि इसे यांत्रिक तरीके से नहीं किया जा सकता। उनके अनुसार अनाड़ीपन के साथ करने पर यह खतरनाक साबित हो सकता है। इसके लिए पूर्ण आत्म-शुद्धीकरण की आवश्यकता होती है – उससे भी कहीं ज्यादा आत्मशुद्धिकरण की जो केवल मन में ही प्रतिकार की भावना लेकर मौत का सामना करने के लिए चाहिए। पूर्ण बलिदान का एक ही ऐसा कृत्य समूची दुनिया के लिए काफी होगा। अक्सर कई आलोचक गांधीजी की आलोचना इस बात के लिए करते है की वह उपवास का प्रयोग दबाव की भांति करते थे और यह हिंसा है। यहां पर यह देखना जरूरी है सत्याग्रही के तौर पर गांधीजी ने हमेशा अन्याय के विरूद्ध ही इसका उपयोग किया या फिर अपनी आत्मशुद्धी के लिए। गांधीजी स्पष्ट शब्दों में कहते है कि अगर विपक्षी को सत्याग्रह अनुचित मुद्दो को लेकर लगें तो कभी भी उसे उपवास की परवाह नहीं करनी चाहिए, भले ही इसके फलस्वरूप उपवास पर बैठे व्यक्ति की मृत्यु हो जाए।

उनके शब्दों में ''अगर लोग ऐसे उपवासों की अपेक्षा करने की आदत डाल लें तो, उनकी राय में, निकृष्ट उद्देश्यों को लेकर किए गए है, तो ऐसे उपवासों से जोर जबर्दस्ती और अनुचित प्रभाव का कलंक दूर हो जाएगा। अन्य सभी मानव संस्थाओं की तरह, उपवास जायज और नाजायज, दोनों प्रकार का हो सकता है''

'यदि कोई व्यक्ति, चाहे वह कितना ही जनप्रिय तथा महान हो, किसी अनुचित मुद्दे को उठाता है और इस अनौचित्य की रक्षा के लिए उपवास करता है तो यह उसके मित्रों, सहयोगियों और संबंधियों (जिनमें मैं अपनी

गिनती भी करता हूं।) का कर्तव्य है कि उसकी प्राणरक्षा के लिए अनुचित मुद्दे को मनवाने की अपेक्षा उसे मर जाने दें। उद्देश्य अनुचित हो तो शुद्ध- से- शुद्ध साधन भी अशुद्धबन जाते है।'

धरना

गांधीजी धरने का उद्देश्य नैतिक व आर्थिक सुधार मानते थे। उनकी नजरों में इसका राजनैतिक परिणाम एक गौण तत्व है। अत: इस प्रकाश में निम्न नियमों का उल्लेख किया।

1. दूकानों पर धरना देने में आपका ध्यान खरीदने वाले से जुड़ना चाहिए।
2. आपको कभी भी क्रेता या विक्रेता के प्रति असभ्य नहीं होना चाहिए।
3. आपको भीड आकर्षित नहीं करनी चाहिए या घेरा नहीं बनाना चाहिए।
4. आपका प्रयत्न मौन – प्रयत्न होना चाहिए।
5. आपको क्रेत या विक्रेता को अपनी सज्जनता से जीतना है, संख्या के भय से नहीं।
6. आपको यातयात में बाधा नहीं डालनी चाहिए।
7. आपको 'हाय-हाय'नहीं चिल्लाना चाहिए या शर्मानेवाले अन्य उद्गार नहीं प्रकट करने चाहिए।
8. आपको प्रत्येक क्रेता की जानकारी होनी चाहिए तथा उसका पता, व्यववसाय आदि जानना चाहिए। आपको उसके घर और हृदय में प्रवेश पाना चाहिए।
9. आपको क्रेता और विक्रेता की कठिनाइयों का समझना चाहिए और जहां आप स्वयं उनको दूर न कर सकें, आपको अपने से बड़े कार्यकर्त्ता को इसकी सूचना देनी चाहिए।
10. अगर आप विदेशी वस्त्र की दूकान पर धरना दे रहे हैं तो आपको थोड़ी खादी या उसकी नमूना – पुस्तिका रखनी चाहिए, जिसमें दाम लिखे हों। आपको पास का खादी- भण्डार जानना चाहिए, जहां आप खरीदार को ले जा सकते है। यदि खरीदार खादी नहीं खरीदना चाहता और मिल के कपड़े पर जोर देता है, तो आपको उसे देशी मिल वस्त्र दूकान देनी चाहिए।
11. आपको खरीदारों में बांटने के लिए अपने पास सम्बद्ध साहित्य रखना चाहिए।
12. आपको मैजिक ' लालटेन और भजन-दल के साथ या उनके बिना जुलूस या सभा का गठन करना चाहिए अथवा उसमें शामिल होना चाहिए।
13. आपको दिन भर के काम की एक सही डायरी रखनी चाहिए।
14. यदि आपको अपने प्रयत्न असफल होते लगें, तो निराश न हों किन्तु कारण और प्रभाव के सार्वभौम नियम पर भरोसा रखें और आश्वत रहे कि अच्छे विचार, वचन या कार्य निरर्थक नहीं जा सकते।

3.9सारांश

यहां स्पष्ट है कि गांधीजी सत्याग्रह कि प्रविधि काकितना विस्तार से वर्णन करते है। सत्याग्रह की विभिन्न प्रविधियों में बल मुख्यत: अहिंसा को आधार बनाकर कार्य करने पर है। इसके अतिरिक्त गांधीजी समय समय पर धरने के संबंध में, हड़ताल के संबंध में, बहिष्कार, पिकेटिंग इत्यादि के संबंध में दिशानिर्देश जारी करते है तथा इन सभी कार्यक्रमों को रचनात्मक कार्यक्रम के साथ जोडते है।

3.10 बोध प्रश्न

प्रश्न 1: सत्याग्रह क्या है? स्पष्ट कीजिये।

प्रश्न 2: सत्याग्रह की विभिन्न प्रविधियों का वृहत वर्णन कीजिये।

प्रश्न 3: टिप्पणी कीजिये

1. धरना
2. सत्याग्रह की विशेषता

3.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- प्रभु, आर.के.एवं राव, यू.आर. (अनु. भवानी दत्त पंड्या) (1974). महात्मा गांधी के विचार. दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट.
- मशरूबाला, किशोरलाल. (2001). गांधी विचार-दोहन. नई दिल्ली: सस्ता साहित्य मंडल.
- सुमन, श्रीरामनाथ. (1967). सत्याग्रह : निष्क्रिय प्रतिरोध, असहयोग, सविनय एवं, सत्याग्रह बनारस: उत्तर प्रदेश गांधी स्मारक निधि.
- आचार्य,नंद किशोर.(2004). सभ्यता का विकल्प. बीकानेर : वाग्देवी प्रकाशन.

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई -4 हिंसा पर गांधी के विचार

इकाई की रूपरेखा

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 हिंसा : अर्थ एवं संदर्भ

4.4 गांधी की दृष्टि में हिंसा के प्रकार

4.5 हिंसा पर गांधी के विचार

4.6 गांधी और हिंसा का प्रतिरोध

4.7 गांधी की हिंसा दृष्टि एवं भारत का जीवन पथ

4.8 गांधी की हिंसा दृष्टि एवं समाज कार्य

4.9 सारांश

4.10 बोध प्रश्न

4.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.1 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको निम्न बिन्दुओं में सक्षम बनाना है –

- हिंसाकी अवधारणा को समझ पाने में।
- हिंसाएवं अहिंसा के बारे में समझ विकसित कर पाने में ।
- हिंसाके बारे में गांधी के विचारों का वर्णन करने में।

ज्ञान शांति मैत्री

4.2 प्रस्तावना

गीता में हिंसा को कमजोरी का प्रतिफल माना गया है। जब कोई व्यक्ति किसी वस्तु को चाहता है पर वस्तु एवं व्यक्ति के बीच में कोई चीज या व्यक्ति रूकावट बनता है तो वस्तु को चाहने वाले व्यक्ति के अंदर भय उठता है या तो क्रोध उठता है। रूकावट डालने वाली वस्तु या व्यक्ति जब कमजोर होते है तो वस्तु को चाहने वाले को क्रोध होता है तया जन रूकावट डालने वाली वस्तु या व्यक्ति सबल होते है तो वस्तु को चाहते वाले व्यक्ति को भय होता है। इस प्रकार देखा जाये तो भय एवं क्रोध सापेक्षित पर्यावरणीय स्थिति का प्रतिफल है। व्यक्ति के क्रोध से ही हिंसा का अंकुरण होता है। हिंसा की प्रक्रिया में व्यक्ति क्षति पहुँचाने या प्रतिशोध की अग्नि में निरस्त जलता रहता है।

4.3 हिंसा: अर्थ एवं संदर्भ

हिंसा का सामान्य अर्थ क्षति या नुकसान पहुँचाने की प्रक्रिया से होता है। महात्मा गांधी की दुष्टि में जब कोई व्यक्ति मन, बचन या शरीर (कर्म) से किसी को हानि पहुँचाता है तो उसे हिंसा कहते हैं। इस प्रकार देखा जाये तो महात्मा गांधी हिंसा को विशिष्ट रूप देते हुए उसमें 'मन','शरीर' एवं कर्म तीनों को सम्मिलित

करते है। गांधी के नजर में किसी को नुकसान पहुँचाने का भाव मन में लाना हिंसा है। किसीको ऐसे बचत कहना जिससे वह आहत हो जो भी वह हिंसा है तथा किसी को कर्म से क्षति पहुँचाने का भाव मन में लाना हिंसा है। किसी को ऐसे बचन कहना जिससे वह आहत हो तो भी वह हिंसा है तथा किसी को कर्म से क्षति पहुँचाना भी हिंसा है।

4.4 गांधी की दृष्टि में हिंसा के प्रकार

महात्मा गांधी अपने जीवन में अहिंसा को गहन स्थान देते थे। वे ईश्वर के रूप में सत्य को स्थापित करते और सत्य का पहुँचने के लिए अहिंसा को साधन मानते हैं। अहिंसा का विपरीत रूप हिंसा है। गांधी हिंसा को वैश्विक एवं व्यावहारिक रूप में देखते हैं। वे मानते हैं कि हिंसा के रास्ते पर आरूढ़ होकर सत्य का कभी प्रचार नही किया जा सकता और न ही सविनय अवज्ञा के योग्य बना जा सकता है। उनके अनुसार हिंसा दो प्रकार की होती है।

I. **सरकारी हिंसा:-** गांधी जी सरकारी हिंसा को संस्थागत हिंसा मानते है। उनका मानना है कि सरकारी हिंसा राज्य द्वारा जनता पर थोपी गई हिंसा है। जब राज्य अथवा सरकार खुद को आवाम से ऊपर समझने लगता है तो वह निरंकुश व्यवहार जनता से करता है। राजनीति के विचारक अल्थुजर ने भी कहा था कि सर्वप्रथम राज्य वैचारिक स्तर पर वह जनता को अपने मुताबिक सहमत नहीं करता है जो बन्दूक एवं बम के द्वारा अपनी बात मनवाता है। गांधी जी इस सरकारी हिंसा को लोक हिंसा के सापेक्ष कमजोर मानते है। वे कहते है कि राज्य की हिंसा को कभी भी खत्म किया जा सकता है।

II. **लोक हिंसा :-** गांधी जी समाज में विद्यमान हिंसा को सर्वाधिक गहरा एवं चुनौती पूर्ण मानते है। वे कहते है कि 'अगर मैं सरकार की संगठित हिंसा से कोई वास्ता रखना नहीं चाहता तो जनता की असंगठित हिंसा से तो और भी कम वास्ता रखना चाहूँगा। मैं इन दोनों के बीच में पिच जाना ज्यादा पसन्द करूगा।' गांधी जी समाज में व्याप्त जाति, धर्म, क्षेत्र, वर्ण एवं व्यवसाय के रूप में जो हिंसा है उसे सर्वाधिक अस्थाई मानते हैं। वे कहते है कि मुझे सरकारी हिंसा से लड़ने में उतना दिक्कत नहीं होती जितना लोक हिंसा से लड़ने में होती है। उतना दिक्कत नही होती जितना लोक हिंसा से लड़ने में होती है। कारण जन समर्धन सरकारी हिंसा के प्रति अधिक एवं लोक हिंसा के प्रतिफल हो।

4.5 हिंसा पर गांधी के विचार

गांधी की दृष्टि में हिंसा साधन नहीं :– महात्मा गांधी सत्य के पुजारी थे। उनका सत्य अहिंसक सत्य था। शुद्धता एवं पवित्रता उनके जीवन का आधार स्तम्भ था। वे सदैव हिंसा से आपती रखते थे। उनका पुरजोर कहना था कि जब भी मुझे हिंसा के पथ पर चलकर भलाई हो रही नजर आती है तो वह भलाई केवल अस्थाई स्वरूप की होती है। पर जो प्रतिफल रूप होता है उससे स्थायी बुराई फैलती है। इस प्रकार समस्या के समाधान के साधन के रूप में गांधी जी कभी भी हिंसा को जगह नही दिया। वे साध्य की तुलना में साधन को सर्वोपरी स्थान देते थे। उनका मानना था कि साधन की पवित्रता ही साध्य की पवित्रता का आधार होता है।

गांधी हिंसा और क्रांतिकारी :- महात्मा गांधी क्रांति के पक्ष में थे। पर उनका पक्ष सर्वथा अहिंसक कांति के प्रति था। वे परिवर्तन की प्रक्रिया में नवीनतमएवं कल्याणकारी मूल्यों के प्रति धारणीय दृष्टि रखते थे और

पुरातन तथा रूढिवादी मूल्यों को त्यागने की बात करते थे। गांधीजी के साथ अनेक और क्रांतिकार एवं स्वतंत्रतासेनानी लोग देश की आजादी के लिए अंग्रेजों से संघर्ष कर रहे थे। उनमें से कुछ हिंसात्मक साधनों का प्रयोग देश के आजादी के लिए अपनाये हुए थे। ये गरमपंथी क्रांतिकारी अंग्रेजों से खुनखराबा करते उनकी सामग्री एवं सम्पत्ति को लुटते और हँसते-हँसते फँसी के फँदे पर झूल जाते। गांधी जी क्रांतिकारीयों की निंदा करते और कहते थे कि फँसी पर चढ़कर मरना आसान है। यह एक तरह की आत्म हिंसा है। अच्छा तो यह है कि अपने लाखों भूखे रहकर मरने वाले मजदूर एवं किसान भाइयों के साथ टिल-टिल कर मरे। यह सबसे बड़ी वीरता एवं क्रांति की बात होगी।

गांधी की दृष्टि:- महात्मा गांधी हिंसा एवं कायरता में सापेक्षित तौर पर हिंसा को अच्छा मानते है। उनके दृष्टि में कायर होने से अच्छा है कि हिंसात्मक हो। वे खुद कहते है कि "समूचि प्रजाति के नपुंसक हो जाने का खतरा उठाने के मुकाबले मैं हिंसा को हजार गुना बेहतर समझता हूँ" वे भारत के रक्षार्थ कहते कि कायर बनकर जुल्म सहने से ज्यादा अच्छा है कि देश के लिए शस्त्र उठा लिया जाये। पर इन सब के बावजूद गांधी अहिंसा को हिंसा से ज्यादा श्रेष्ठ मानते है। वे अंहिसा, हिंसा और कायरता में सम्बन्ध स्थापित करते हुए कहते है कि जब तक दण्ड देने की शक्ति व्यक्ति में नही आयेगी तब तक वह अहिंसक धर्म का पालन नहीं कर सकता। अहिंसक बननेके लिए हिंसा करने की शक्ति रखते हुए अहिंसक धर्म का पालन करना होता है। जो दण्ड देने की क्षमता नहीं धारण करता वह कायर ही बना रह सकता है।

4.6 गांधी और हिंसा का प्रतिरोध

महात्मा गांधी जुल्म अथवा आतंक को सहना कायरता मानते है। पर जुल्म एवं आतंक का सामना अस्त-शस्त्र के द्वारा करने को गलत मानते है। उनकी दृष्टि में हिंसा को हिंसा के द्वारा कभी भी खत्म नही किया जा सकता है। हिंसा एवं अत्याचार का प्रतिरोध त्याग,सविनय अवज्ञा एवं असहयोग के रास्ते पर चल कर किया जा सकता है। गांधी जी की दृष्टि में निहत्ये जान शस्तु के समक्ष देने में कोई संकोच नही किया जाना चाहिए क्योंकि शत्रु मात्र शरीर को क्षति पहुँचा सकता है आत्मा को नहीं। इस तरह से अहिंसात्मक प्रतिरोध में दोहरा फायदा है प्रथम कि शत्रु हमारे विचार एवं आत्माको गुलाम नही बना सकता है और हम अहिंसा धर्म का पालन भी कर सकते हैं।

I. **निष्क्रिय प्रतिरोध :-** गांधी जी प्रतिरोध के दो प्रकार निष्क्रिय एवं अहिंसकमें निष्क्रियको तुच्छ एवं अहिंसक प्रतिरोध को श्रेष्ठ मानते है। उनका कहना है कि शत्रु के सामने छूटने रोकना निष्क्रिय प्रतिरोध है। इससे अच्छा तो शत्रु के साथ अंतिम दम तक लड़ते हुए जान दे देना उचित होगा। कुछ न करके मरने से अच्छा है कि कुछ कर के मरे। इससे स्पष्ट होता है कि गांधी जी कायरता पूर्ण प्रतिरोध को कभी भी अच्छा नही माना बल्कि वे तो वीरतापूर्ण प्रतिरोधक के हिमायती थे।

II. **अहिंसक प्रतिरोध :-** अहिंसक प्रतिरोध से तात्पर्य गांधी जी मानते है कि हम शत्रु के शासन एवं नियम को अहिंसक दृष्टि से नही मानेगे। शत्रु के समक्ष घुटने टेकने से अच्छा है कि उसके समक्ष अपनी गर्दन कर दे। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि अहिंसात्म प्रतिरोध शत्रु को मनोवैज्ञानिक स्तर पर कमजोर करने के साथ-साथ शत्रु में परिवर्तन की संभावना देखता है। अहिंसात्मक प्रतिरोध अस्थाई प्रभाव सरकारी हिंसा एवं लोक हिंसा के खिलाफ डालता है।

4.7 गांधी की हिंसा दृष्टि एवं भारत का जीवन पथ

महात्मा गांधी भारत को सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह एवं ब्रम्हचर्य के मूल्यों को धारण करने वाला देश मानते है। गांधी भारत को इसी लिए प्रेम की भूमि मानते थे। वे खुद कहते है कि भारत को पूर्ण अधिकार है कि वह चाहे तो वास्तविक हिंसा के जरिए राष्ट्र की आजादी प्राप्त कर सकता है। पर यह हिंसा भारत को मेरी दृष्टि में दोयम स्थिति में पहुँचा देगी। हिंसात्मक माध्यम से देश की स्वतंत्रता मेरी आत्मा पर बोझ बन कर रह जायेगी। क्योंकि साधन अशुद्ध होने के बाद साध्य कभी भी शुद्ध नहीं हो सकता है। इस स्थिति में गांधी जी कहते है कि भारत हमारे लिए जन्म की भूमि तो हो सकता है मगर प्रेम की भूमि नही हो सकता है। क्योंकि मां भी पथभ्रष्ट हो जाये तो वह पुत्र के लिए गोरव की बात नहीं रह जाती है।

गांधी जी हिंस के जगह अहिंसा को देश की स्वतंत्रता हेतु साधन के रूप में स्वीकारते है। उनका मानना था कि जब भारत हिंसा के बल पर स्वतंत्रता प्राप्त कर लेगा तो भारत की नींव कमजोर हो जायेगी। भारतीय मूल्य कमजोर हो जायेंगे जिसके कारण स्वतंत्र भारत प्रेम,शांति एवं खुदाहाली की भूमि के जगह हिंसा अशांति एवं मातम की भूमि बन जायेगा। गांधी जी आगे कहते हैं कि भारत जब अहिंसा, त्याग एवं संमय के साथ आजादी प्राप्त करेगा तो भारत की आन्तरिक सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था मजबूत होगी। जिसके कारण दुनिया का कोई देश अपने सैन्य ताकत के बल पर भी भारत को कमजोर नहीं कर सकता है।

4.8 गांधी की हिंसा दृष्टि एवं समाज कार्य

महात्मा गांधी राजनीतिज्ञ, विचारक, वकील एवं संत होने के अलावा एक समाजसेवी एवं समाज कार्य कर्त्ता भी थे। इसी लिए तो गांधी जी को व्यावहारिक आदर्शवादी भी कहा माध्यम से समाज कार्य में सक्रीय थे।

I. **वैयक्तिक समाज कार्य एवं हिंसा दृष्टि :-** महात्मा गांधी जी व्यक्ति को एक संपूर्ण इकाई के रूप में समझते थे। उनका मानना था कि व्यक्ति जन्म से ही शुद्ध शांतप्रिय एवं अहिंसक रहा है। यदि कोई व्यक्ति अहिंसक रास्ते पर चल पड़ा है तो यह परिस्थितियों का प्रतिफल है। वैचारिक प्रशिक्षण एवं निर्देशक द्वारा व्यक्ति की समस्या को हल किया जा सकता है। इस तरह से गांधी जी वैयक्तिक समाज कार्य में प्रेमवत मॉडल के समर्थक थे।

II. **समूह समाज कार्य एवं हिंसा दृष्टि :-** समूह समाज कार्य समाज कार्य की एक प्रमुख प्रणाली है। इसमें व्यक्ति, समूह अथवा समुदाय की समस्या को समूह द्वारा खत्म किया जाता है। गांधीजी गौ-सेवा संघ, किसान संघ, खादी उद्योग संघ जैसे समूहों के द्वारा समाज को सशक्त करने एवं विकास करने की बात किया। अहिंसा की दृष्टि समूह समाज कार्य के लिए त्याग के साथ होना गांधी ने आवश्यक बताया।

III. **सामुदायिक समाज कार्य एवं हिंसा दृष्टि:-** व्यक्ति से समूह एवं समूह से ही समुदाय की निर्मिति बनती है। गांधी की दृष्टि में व्यक्ति जन्म से अहिंसक होता है अत: समाज को भी अहिंसक होना होगा। हिंसा को पशुतापूर्ण व्यवहारका प्रतिफल है। जो स्वार्थ एवं भोग भावना के बाद पलित होती है। अत: गांधीजी ग्रामस्वराज्य, कुटीर उद्योग, न्यास, सामूहिक भागीदारी के द्वारा समुदाय की समस्या हल करने की कोशिश करते है।

ज्ञान शांति मैत्री

IV. **सामाजिक क्रिया एवं हिंसा दृष्टि :-** सामाजिक क्रिया से तात्पर्य उद्देश्यपूर्ण तरिके से कार्य को करना होता है। गांधी जी हिंसा के जगह अहिंसक तरीके से सामाजिक परिवर्तन की वकालत करते थे। उनका मानना था कि अहिंसक आन्दोलन, हड़ताल, बहिष्कार, आमरन अनसन आदि के द्वारा सामाजिक बदलाव किय जा सकते है। इन सभी साधनों में अहिंसा एक उभयनिष्ट पक्ष होगी। गांधी जी परिवर्तन के लिए थोपी गई विचार धारा एवं प्रक्रिया के जगह लोकतांत्रिक बदलाव के समर्थक थे। उनका मानना था कि आत्मनिर्णय के द्वारा सहभागी सामाजिक क्रिया ही सकारात्मक सामाजिक व्यवस्था कायम कर सकती है।

V. **समाज कल्याण प्रशासन एवं हिंसा दृष्टि :-** समाज –कल्याण प्रशासन के अंतर्गत नीति निर्माण एवं क्रियान्वय के साथ-साथ मूल्यांकन को सम्मिलित किया जाता है। समाज कल्याण प्रशासन के तहत राज्य स्तर पर सामाजिक सुरक्षा एवं सामाजिक हित के लिए किये जाने वाले सभी कार्य आते है। राज्य स्तर पर सामाजिक परिवर्तन के साथ बदलते समस्याओं के निदान हेतु जो नीतियाँ एवं कानून बनाये जाते है कि समाज के कल्याण के लिए जाति,धर्म, क्षेत्र, भाषा एवं लिंग के आधार पर भेदभाव नही करना चाहिए। जब राज्य सामाजिक सुरक्षा एवं कल्याण के क्षेत्र में नागरिकों के साथ भेदभाव करता है तो यह एक तरह की असंतोष एव ईर्ष्या का कारण बनता है जिसके कारण सामाजिक हिंसा के उद्वेलन में गतिप्राप्त होती है।

4.9 सारांश

सारांश रूप में देखा जाये तो गांधी अहिंसा के पुजारी थे। वे हिंसा के द्वारा किसी भी चीज को प्राप्त करने के पूर्ण खिलाफ थे। राज्य अथवा किसी अन्य प्रकार के अन्याय के प्रतिरोध के खिलाफ अहिंसा को ही एक साधन मानते थे। मगर गांधी निष्क्रिय प्रतिरोध के जगह अहिंसक प्रतिरोध को अपनी मान्यता देते थे। उनका मानता था कि राष्ट्र एवं समाज का उद्धार अहिंसक प्रतिरोध के द्वारा ही संभव है। इसका अभिप्राय गांधी कायरताका वरण करने की शिक्षा नहीं देते थे। कायरता एवं हिंसा में से हिंसा को चुनना ज्यादा श्रेयस्कर मानते थे। वे कहते थे कि अहिंसा कायरों के लिए संभव नहीं है यह तो वीरों की भाषा है। दण्ड देने की सामर्थ बल के बावजूद क्षमा भावना रखना ही अहिंसा है। इस तरह समाज कार्य के दृष्टिसे गांधी जी बड़े प्रासंगिक जान पड़ते है। समाज कार्य में हाल्मोंस मॉडल ‘प्रेमवत मॉडल’ के नाम से जाना जाता है और गांधी जी भी अहिंसक रूप से अपने विचार व्यक्ति, समूह एवं समुदाय की समस्या के निदान एवं उपचार हेतु देकर ‘प्रेमवत मॉडल’ के सार्थकता की पुष्टि करते है।

4.10बोध प्रश्न

प्रश्न 1: गांधी हिंसा दृष्टि क्या है? स्पष्ट कीजिये।

प्रश्न 2: हिंसा को समाप्त करने में समाज कार्य की भूमिका वर्णन कीजिये।

प्रश्न 3: टिप्पणी कीजिये

1. हिंसा का प्रतिरोध
2. सरकारी हिंसा

4.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- प्रभु, आर.के.एवं राव, यू.आर. (अनु. भवानी दत्त पंड्या) (1974). महात्मा गांधी के विचार. दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट.
- मशरूबाला, किशोरलाल. (2001). गांधी विचार-दोहन. नई दिल्ली: सस्ता साहित्य मंडल.
- सुमन, श्रीरामनाथ. (1967). सत्याग्रह : निष्क्रिय प्रतिरोध, असहयोग, सविनय एवं, सत्याग्रह बनारस: उत्तर प्रदेश गांधी स्मारक निधि.
- आचार्य,नंद किशोर.(2004). सभ्यता का विकल्प. बीकानेर : वाग्देवी प्रकाशन.

ज्ञान शांति मैत्री

खंड – 2
गांधीय समाज कार्य – 1

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई- 1 : अहिंसक संघर्ष की अवधारणा और औचित्य

इकाई की रूपरेखा

1.1 उद्देश्य
1.2 प्रस्तावना
1.3 अहिंसा: अर्थ एवं संदर्भ
1.4 अहिंसक संधर्ष की गांधीय अवधारणा
1.5 अहिंसक संधर्ष का औचित्य
1.6 अहिंसक संधर्ष एवं समाज कार्य
1.7 सारांश
1.8 बोध प्रश्न
1.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.1 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको निम्न बिन्दुओं में सक्षम बनाना है –

- अहिंसक संघर्ष की अवधारणा को समझ पाने में।
- अहिंसक संधर्ष की गांधीय अवधारणा के बारे में समझ विकसित कर पाने में।
- अहिंसक संधर्ष के औचित्य का वर्णन करने में।

1.2 प्रस्तावना

इतिहास की शुरूआत से ही समाज में संघर्ष विद्यमान रहे हैं और मनुष्य इस संघर्ष के खिलाफ आवाज उठाता रहा है। इन संघर्षो से निपटने के दो तरीके हैं। पहला हिंसक प्रतिरोध – यहाँ एक बात गौर करने की हैं कि हिंसा द्वारा समाधान किये जाने पर जीत ज्यादा हिंसा करनेवाले की होती है फिर यह जरूरी नहीं है कि वह सही पक्ष की जीत हो। हिंसा के दौरान जो जान-माल का नुकसान होता है उसकी भरपाई करना भी संभव नहीं है।

महात्मा गांधी ने संघर्ष के समाधान के लिए हिंसक प्रतिरोध के बरअक्स जो मार्ग बताया वह सक्रिय अहिंसक प्रतिरोध का रास्ता है जिसे वह 'सत्याग्रह' का नाम देते हैं। अपनी प्रविधि में अहिंसक प्रतिरोध कई तरीकों को शामिल करती है वे हैं– असहयोग, सविनय अवज्ञा, हड़ताल, धरना, उपवास आदि।

1.3 अहिंसा :अर्थ एवं संदर्भ

अहिंसा का सामान्य अर्थ किसी दूसरे व्यक्ति अथवा जीव को कष्ट न पहुँचाने की भावना एवं क्रिया है। गांधी जी के दृष्टि में मन, वचन एवं कर्म से दूसरे को कष्ट न पहुँचाना ही अहिंसा है। गांधी जी के अनुसारअपने विशुद्धतम रूप में अहिंसा का अर्थ है अधिकतम प्रेम।वेअहिंसा को ईश्वर तक पहुँचने के स्त्रोत्र के रूप में देखतेथे। जैन धर्म की सबसे बड़ी बात यह है कि उसमें सबसे ज्यादा बल अहिंसा पर दिया गया है।

बौद्ध धर्म भी विश्व शांति की बात इसी अहिंसा पर करता है। इस तरह हिंसा का आभार ही अहिंसा है। जहाँ शांति है वहाँ अहिंसा है और जहाँ अहिंसा है वहाँ शांति है। इससे स्पष्ट होता है कि जहाँ-जहाँ आज दुनिया में अशांति है वहाँ हिंसा मानसिक,वाचिक एवंकार्तिक रूप में विद्यमान है।

गांधी एक व्यावहारिक आदर्शवादी :- महात्मा गांधी सिर्फ आदर्शों की बात नहीं करते थे। वे पूर्ण में व्यावहारिक आदर्श की बात करते थे। एक ऐसे आदर्श की स्वीकृति गांधीजी देते थे जो लोक जीवन में उतारा जा सके। वे कहते हैंकि उस सिद्धांत की कोई प्रासंगिकता नहीं जिसे व्यवहार में न उतारा जा सके। वे पेट के अपच से ज्यादा नुकसानदेह विचारों के अपच को मारते थे। गांधी का जीवन पूर्णत: सिद्धांत एवं व्यवहार का पूर्ण समन्वय था। गांधी जी कहते है कि "यदि हम अहिंसाके सिद्धांत को सिद्ध कर सके तो इसे संसार की उसकीकाया पलटने, निर्मन प्रतियोगिका को समाप्त करने और धनलोलुपता तथा लालच से उत्पन्न होनेवाले सामाजिक विघटन को रोकने के सर्वोत्तम साधन के रूप में पेश कर सकते हैं।" गांधी के इन बातों से पता चलताहै कि अहिंसा उनके लिए दुनिया बदलने की सर्वोतम साधन थी। वे यह भी कहा करते थे कि मेरे जीवन का मार्गदर्शन सिद्धांत निष्क्रियता नहीं, अपितु अधिकतम सक्रियता है। अत: कहना उचित है कि गांधीजी सिद्धांतों की कोरी कल्पना के बजाय व्यवहारिकता के धरातल पर रहना पसंत करते थे। महात्मा गांधी प्रयोगधर्मी व्यक्तित्व को धारण करते थे। वे जो कुछ भी औरों के जीवन में बदलाव देखना चाहते थे सर्वप्रथम उसे खुद के जीवन पर प्रयोग करके देखते थे। उनका जीवन उनके लिए पूर्णत: एक प्रयोगशाला था। जहाँ सिद्धांत एवं नियमों की वे खुद चीड़-फाड़ करते थे फिर उसके प्रासंगिकता एवं अप्रासंगिकता के आधार पर स्वयं के जीवन एवं जन-जीवन में लागू करने की बात करते थे। अहिंसा गांधी के जीवन का मूल सिद्धांत था। वे इस सिद्धांत को अपने जीवन में लागू अक्षरश: किये हुए थे। वे इस 'अहिंसा' के सिद्धांत को लोक जीवन में उतारे की बात करते थे। वे इस 'अहिंसा'के सिद्धांत को लोक जीवन में उतारे की बात करते थे। वे कहते थे कि इस शांत संसार की मुक्ति हिंसा में नहीं अपितु अहिंसा में हैं।

गांधी की दृष्टि में अहिंसा का स्वरूप :- महात्मा गांधी एक तरफ अंग्रेजों से गुलामी को खत्मकरने के लिए लड़ रहे थे तो दूसरी तरफ भारतीय समाज में विद्यमान अंधविश्वास, अस्पृश्यता, अलगाव, एवं दारिद्रता जैसी बुराईयोंके खिलाफ लड़ रहे थे। इस दौरान अहिंसा को अपना प्रमुख अस्त्रबनाया जिसकी स्वरूपगत विशेषताएँ निम्नवत है।

ऌ) अहिंसा पशुबल से ज्यादा श्रेष्ठ है तथा यह मानव जाति का नियम है।

ऍ) अहिंसा उकसे लिए उपयोगी नही है जिसे प्रेम के ईश्वर में जीती-जागती आस्था नहीं है।

ऎ) अहिंसा मनुष्य के स्वाभिमान और आत्मसम्मान की पूरी तरह रक्षा करती है। मगर अनैतिक कृत्यों की रक्षा करने में अहिंसा सहयोग प्रदान नहीं करती।

ए) अहिंसा का प्रयोग स्वयं की रक्षा के लिए किया जाना चाहिए दूसरों पर शासन स्थापित करने या चलाने के लिए नही।

ऐ) अहिंसा का प्रयोग कोई भी अपने जीवन में कर सकता है। चाहे वह किसी जाति, धर्म, क्षेत्र, भाषा अथवा आयु का हो।

ऑ) अहिंसा का प्रयोग सिर्फ व्यक्तियों के लिए ही नही समूह एवं समुदाय के लिए भी उपयोगी है।

ऒ) अहिंसा जीवन के किसी एकांगी पक्ष पर ही नहीं बल्कि जीवन के सम्पूर्ण पक्ष पर लागू होनी चाहिए।

ज्ञान शांति मैत्री

1.4 अहिंसक संघर्ष एवं गांधी

महात्मा गांधी जिस सत्य एवं अहिंसा को अपने जीवन के लिए साधन के रूप में मानकर दुनिया की बुराईयों को मिटाने के लिए खड़े हुए ये उस समय पूरा विश्व उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद, गरीबी हिंसा एवं महामारी से आच्छादित था। भारत में भी यह सभी बुराईयों विद्यमान थी। गांधीजी अहिंसा के बल पर इन बुराईयों को खत्म करने का प्रयास किया तथा काफी हद तक अपने इस उद्देश्य में वे सफल भी रहें। उनका अहिंसक संघर्ष प्रेम युक्त संघर्ष था। वे व्यक्ति से संघर्ष न करके विचारधारा एवं व्यवस्था से संघर्ष किये। गांधी जी खुद कहते है कि अहिंसा का पालन करे जब आप के चारों तरफ हिंसा का नाच हो रहा हो। अहिंसक व्यक्ति के साथ अहिंसा पूर्ण व्यवहार करना बहुत बड़ी बात नही है हिंसा करने वाले व्यक्ति के साथ अहिंसा का व्यवहार करना बड़ी बात है। अहिंसक संघर्ष की प्रक्रिया में व्यक्ति को पाप से घृणा करना चाहिए पापी से नहीं। गांधी अपने अहिंसक संघर्ष की प्रक्रिया में मानते थे कि बुरे-से-बुरे व्यक्ति के हृदय में प्रेम होता है। हमें अहिंसा के बल पर हृदय परिवर्तन हेतु संघर्ष करने चाहिए।

अहिंसक संघर्ष एवं ईश्वर :- महात्मा गांधी का सत्य में उतना ही विश्वास था जितना विश्वास ईश्वर में था। गांधी जी सत्य को ईश्वर एवं ईश्वर को सत्य मानते थे। और इस सत्य तक जाने के लिए अहिंसा को परम साधन मानते थे। इस तरह स्पष्ट होता है कि ईश्वर एवं अहिंसा दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू है। अहिंसा के बगैर ईश्वर का साक्षात्कार संभव नही है तो ईश्वर में बगैर आस्था कायम किये अहिंसा धर्म का पालन करना संभव नहीं है। इस तरह गांधी जी का यह अटूट विश्वास था कि ईश्वर में जीति जागती आस्थान हो तो अहिंसा में जीति-जागती आस्था हो ही नही सकती। अहिंसक व्यक्ति ईश्वर की शक्ति एवं अनुग्रह के बगैर कुछ भी नहीं करता है।

अहिंसक संघर्ष एवं सत्य का मार्ग :- गांधी के दृष्टि में अहिंसक संघर्ष सत्य तक पहुँचने का एक अटूट मार्ग है। सचमुच यह दुनिया संघर्ष का कुरूक्षेत्र है। जहाँ भ्रम एवं मोह होती भ्रम एवं मोह होती विद्यमान है। व्यक्ति भ्रम एवं मोह में पड़कर अनेक बुराईयों में पड़ जाता है। जहाँ चारो तरफ मोह एवं भ्रम के कारण हिंसा एवं भ्रष्ट व्यवहार किये जा रहे मोह एवं भ्रम के कारण हिंसा एवं भ्रष्ट व्यवहार किये जा रहे हो वहाँ सत्य का मार्ग दिखाने एवं पाने के लिए अहिंसक संघर्ष ही मात्र एक सच्चा मार्ग है। सत ईश्वर है और ईश्वर सत्य है। गांधीजी कहते हैं कि हम जितना ही ज्यादा अहिंसा को अपने जीवन में उतारने जाते है उतना ही हमारा जीवन ईश्वर तुल्य होता जाता है। अहिंस संघर्ष में उन व्यक्तियों के प्रति भी सम्मान की दृष्टि रखा जाता है जिनसे हमारा विरोध होता है। अपने विरोधी के प्रति प्रेम एवं सम्मान का विरोध होता है। अपने विरोधी के प्रति प्रेम एवं सम्मान का भाव रखना अहिंसक संघर्ष का आदर्श रूप है और यही सत्य तक पहुँचाने का जीवन संघर्ष का मार्ग भी है।

अहिंसक संघर्ष कायरता का पथ नहीं :- महात्मा गांधी अहिंसा को साधन मानते है साध्य नही। उनका मानना था कि अहिंसा हमारे जीवन के लिए एक ऐसा साधन है जो व्यवहार के सभी पक्षों में प्रयोग मन वचन एवं कर्म से करना होगा। पर वे कहते है कि इस अहिंसा के साधन का अनुशीलता एक कायर अथवा डरपोक व्यक्ति नहीं कर सकता है। इसके अनुशीलता के एिल निडरता अथवा अभय होने की आवश्यकता है। दूसरी बात यह भी कि अहिंसा का प्रयोग कमजोर व्यक्ति नही कर सकता है। अहिंसा का अनुशीलता वही कर सकता है जो दण्ड देने की क्षमता या सामर्थ रखता है। इस प्रकार स्पष्ट होता कि अहिंसा का मार्ग हिंसा की तुलना में कही ज्यादा साहस एवं बल की अपेक्षा रखता है।

अहिंसक संघर्ष में कष्ट सहने की प्रवृत्ति :- अहिंसक संघर्ष गांधी की दृष्टि में केवल हिंसा के माहौल में ही किया जा सकता है। हिंसा तत्पर होती है तो अहिंसा हिंसाके सुरसामयी मुख को भर देती है। हिंसा दूसरों को कष्ट देती है तो अहिंसा खुद को कष्ट देती है। विरोधी के अत्याचार का विरोध अहिंसक तरीके से करते समय अपने अंदर कष्ट सहने की क्षमता एवं साहस होने की आवश्यकता होती है। इस तरह अहिंसा एक योग है जो अपनी आत्मा को शोधित करने का रास्ता बतलाती है। इसे खुद से आत्मा के शोध का आधार भी माना जा सकता है। इस तरह से अहिंसा का पुजारी खुद के साथ हिंसा तो कर सकता है पर औरों से हिंसा नहीं कर सकता है।

अहिंसक संघर्ष आत्मिक प्रतिरोध :- महात्मा गांधी जी अहिंसा का आत्मशुद्धि का साधन मानते थी। अहिंसा दोहरा वरदान के भ्राँति यह अनुशीलत करने वाले को आत्मासिद्धी के प्राप्ति में सहयोग देती है साथ-साथ विरोधियों के व्यवहार में बदलाव करके न्याय की व्यवस्था करती है। मनुष्य की दो शरीर हैं। स्थूल शरीर एवं सूक्ष्म शरीर के चारों तरफ अनेक प्रकार के संस्कार पाये जाते हैं। ये संस्कार ही अपने प्रकृति के अनुसार व्यक्ति को विविध कर्मों में क्रियाशील करते हैं। जब संस्कार तामसी प्रवृत्ति के होते हैं तो व्यक्ति के लिए अनेक प्रकार की दिक्कते आती है। वह हिंसात्मक कार्य में सलिप्त होता है। अहिंसा के पक्ष पर चलकर इन संस्कारों को खत्म करके आत्मकिक प्रतिरोध किया जा सकता है।

अहिंसक संघर्ष कीआस्था :- आस्था मानव मन की प्रबलता का नाम है। जिसमें वैकल्पिक चेतना के बजाय एकाकी चेतना रह जाती है। गांधी जी अहिंसक संघर्ष के संदर्भ में कहते हैं कि अहिंसा के पुजारी को आवश्यक है कि वह अहिंसा में आस्था रखे। व्यक्ति अपने ईष्ट देव में पूर्णरूपेण आस्था रखता है। अहिंसा भी साधन के समान ईश्वर तक पहुँचाने का मार्ग है। यदि व्यक्ति को ईश्वर तक पहुँचना है तो अहिंसा का अनुसरण करना होगा तथा अहिंसा के अनुसरण के लिए अहिंसा में आस्था रखनी होगी। इस प्रकार अहिंसा में आस्था रखने वाला व्यक्तिही अहिंसक संघर्ष का अनुगामी बन सकता है।

1.5 अहिंसक संघर्ष का औचित्य :-

महात्मा गांधी अकेले ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंनेअहिंसा के बल पर अंग्रेजी को भारत से निकाला एवं देश को स्वतंत्रता दिलायी। इस कार्य में अहिंसा ही एक मात्र साधन थी। इस लिए अहिंसा की प्रासंगिकता आज भी है।

I. **राज्य की स्थापना :-** द्वितीय विश्व युद्ध के बाद दुनिया में नये राष्ट्र–राज्यों की स्थापना में क्रांतिकारी बढ़ोत्तरी हुई। आज भी दुनिया के विविध क्षेत्र, जम्मू-कश्मीर, फिलिस्तीन, बलुचिस्तान जैसे क्षेत्र है। जहाँ नये राज्य की स्थापना की मांग हो रही है और इसके लिए खूनी संघर्ष को बढ़ावा दिया जा रहा है। यह अच्छा नहीं है। हिंसा के बुनियाद पर हिंसा का भवन ही तैयार होगा अत: आवश्यकता है कि अहिंसा के आधार पर राज्यों के स्थापना की मांग की जाये।ओ
II. **राजनीति :-** आज पूरे दुनिया में लोकतांत्रिक शासन प्रणाली है। जिसके केन्द्र में राजनीति एवं राजनेता आते है। राजनेताओं को देश की आवाम प्रतिनिधि चुनकर भेजती है। ये राजनेता लोग देश आवाम की खुशहाली के लिए निर्णय लेते है। पर स्थिति यह है कि जनता के हित के बदले

अपने ही हीत में ही ये फंस जाते है। इसके लिए हिंसा का भी सहारा लिया जाता है। अत: आज की राजनैतिक परिदृश्य में अहिंसा एक अहम भूमिका निभा सकती है।

III. **व्यक्ति के निर्माण:-** व्यक्ति समाज की एक ईकाई होता है। व्यक्ति का प्रभाव समाज पर एवं समाज का प्रभाव व्यक्ति पर पड़ता है। आज भागमभाग, व्यक्तिवादी एवं उपभोक्तावादी समाज में संघर्ष की दर बढ़ रही है। जिसके कारण हिंसा की मात्रा भी बढ़ रही है। अहिंसा का अनुपालन व्यक्ति में संयम एव सहिष्णुता लाता है। इस लिए आवश्यक है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व के निर्माण हेतु अहिंसा पर बल दिया जाया। हमारे शास्त्रों में भी उद्घोष किया गया है कि,'अहिंसा परमों धमूम:'।

IV. **सुरक्षा :-**आज पूरी दूनिया तृतीय विश्व युद्ध के मुहाने पर आकर खड़ी है। नये-नये युद्ध से संबंधित अस्त-शस्त तैयार किये जा रहे है। इसमें हर दृष्टि से मानवता का ही अहिंसा है। दुनिया के मुल्कोंका अहिंसा का पालन करनेका संकल्प लेना होगा तभी दुनिया की मानवता बच पायेगी। ऐसा नही हुआ तो पूरी दुनिया आज के दानवाकार विध्वंसकारी बम से खत्म हो जायेगी।

V. **पर्यावरण :-** पृथ्वी पर जीव जंतु एवं मानव जीवन इस लिए संभव हो पाया क्योंकि यहाँ पर अनुकुल वातावरण पाया गया। मानव अपने अन्धानु करणीय प्रयासों से प्रकृति का भरपूर दोहन किया जिसके कारण प्रकृति का असंतुलन बिगड़ गया। यह एक तरह का मानव द्वारा प्रकृति के प्रति हिंसा ही है। अत: प्रकृति के साथ अहिंसात्मक रूप से व्यवहार करने की जरूरत नहीं

VI. **धार्मिक सहिष्णुता** – आज के दुनिया में अनेक आधारक पर संघर्ष एवं हिंसा जारी है। उसमें धर्म भी एक ऐसा आधार है जिस पर अलग-अलग सम्प्रदाय के लोग आपस में लड़ते झगते है। यूरोप में कैथोलिक एवं प्रोटेस्टेट मूस्लिम देशों में शिया एव सुन्नी तथा भारत में मुसलमान एवं हिन्दू आवास में लड़ते है। जबकी सभी धर्मो का मूल सिद्धांत प्रेम एवं अहिंसा ही है। इस लिए दुनिया में एक-दूसरे के धर्मके प्रति सहिष्णुता बदलने के लिए अहिंसा का अनुपालन जरूरी है।

VII. **विश्व मानवता का कल्याण :-** पूरी मानवता पृथ्वी पर अपनी संतती को बढ़ा रही है तथा आगे बढ़ रही है तो उसमें प्रेम, सहयोग, सहिष्णुता एवं अहिंसा का भाव दिया है। जब-जब मानवा ने हिंसा का प्रयोग किया तब-तब अपना ही नुकसान किया है। धर्म, प्रजाती, क्षेत्र, भाषा नस्ल एवं वर्ग से भी बढ़कर मानवता है। अत: इस मानवता को सुरक्षित तथा अविरल रखने के लिए आवश्यक है कि पूरे विश्व के लोग अहिंसा धर्म का पालन करे साथ ही अपने-अपने देश में अहिंसा को परम आदर्श एवं लक्ष्य के रूप में स्थापित करें।

1.6 अहिंसक संघर्ष एवं समाज कार्य :-

अहिंसा मानव जीवन के कल्याण हेतु एक साधन है तो समाज कार्य एवं इसकी प्रणालियाँ अहिंसा के अनुकरण के बगैर पंमू है। इसलिए आज समाज कार्यकर्ताओं को विविध प्रकार चुनौतियों का सामना करना पड़ता है जिसके कारण कभी-कभी समाज कार्यकर्ता अपना धैर्य एवं साहस तोड़ देते है। ऐसे में गांधी जी के इस अहिंसा के सिद्धांत का प्रयोग करके समाज कार्य कर्ता अपने जीवन का संतुलित बना सकते हैं। गांधी जी खुद कहते है कि जो लोग समजा के लिए कुछ करना चाहते है उन्हें सर्वप्रथम खुद के लिए करना होगा। और

ज्ञान शांति मैत्री

वह करना यह है कि उन्हें अहिंसा धर्म का पालन करे तभी उनके अंदर तेज बल पैदा होगा ओर वह तेज बल उन्हें जीवन के सभी क्षेत्रों में आनेवाली चुनौतियों से सामना करने में सहयोग प्रदान कर सकता है। समाज अनेक विचारों पंथो एवं नियमो से बनता है जहाँ संघर्ष एवं सहयोग साथ-साथ चलता है ऐसे में एक समाज कार्यकर्ता को अहिंसा का पालन करना होगा तभी जाकर अपने लक्ष्य को सिद्ध कर सकता है।

1.7 सारांश

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि अहिंसा मानव जीवन का सनातन धर्म है जिसे गांधी जी ने प्रयोग करके व्यावहारिक रूप दिया। यह कमजोर लोगों के जगह वीर व्यक्तियों के लिए साधन है। इसका प्रयोग आत्मशुद्धि के लिए किया जाता है। मन, वचन एवं कर्मके द्वारा हिंसा का निक्षेध ही अहिंसा है तथा यह विरोध का प्रमुख साधन भी है। आज की दुनिया जो उथल-पुथल एवं अन्याय के पथ पर बढ़ रही है ऐसे में अहिंसा का आचित्य का पालन करेगा तभी सच्चे अर्थो में समाज के लिए अपने उत्तरदायित्वों का पालन कर सकता है।

1.8 बोध प्रश्न

प्रश्न 1: अहिंसाको स्पष्ट कीजिये।

प्रश्न 2: अहिंसकसंघर्ष की गांधीय प्रविधि का वृहत वर्णन कीजिये।

प्रश्न 3: टिप्पणी कीजिये

1. अहिंसक संघर्ष एवं समाज कार्य
2. अहिंसक संघर्ष एवं सत्य का मार्ग
3. अहिंसक संघर्ष एवं ईश्वर

1.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- प्रभु, आर.के.एवं राव, यू.आर. (अनु. भवानी दत्त पंड्या) (1974). महात्मा गांधी के विचार. दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट.
- मशरूबाला, किशोरलाल. (2001). गांधी विचार-दोहन. नई दिल्ली: सस्ता साहित्य मंडल.
- सुमन, श्रीरामनाथ. (1967). सत्याग्रह : निष्क्रिय प्रतिरोध, असहयोग, सविनय एवं, सत्याग्रह बनारस: उत्तर प्रदेश गांधी स्मारक निधि.
- आचार्य,नंद किशोर.(2004). सभ्यता का विकल्प. बीकानेर : वाग्देवी प्रकाशन.

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई -2 रचनात्मक कार्यक्रम

इकाई रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 रचनात्मक कार्यक्रम का अर्थ
2.3 रचनात्मक कार्यक्रम का दार्शनिक पक्ष
2.4 रचनात्मक कार्यक्रम के विभिन्न अंग
2.5 रचनात्मक कार्यक्रम की प्रासंगिकता
2.6 बोध प्रश्न
2.7 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रन्थ

2.0 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के बाद आप -

- रचनात्मक कार्यक्रम के अर्थ से परिचित हो सकेंगे।
- रचनात्मक कार्यक्रम के दार्शनिक पक्ष को रेखांकित कर सकेंगे।
- रचनात्मक कार्यक्रम के विभिन्न अंगों को प्रदर्शित कर सकेंगे।
- रचनात्मक कार्यक्रम की प्रासंगिकता को व्याख्यायित कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

महात्मा गांधी के अवदान पर चर्चा करते समय स्वतंत्रता संग्राम में उनकी भूमिका, सत्याग्रह की अवधारणा इत्यादि पर अधिक जोर दिया जाता है परन्तु एक अन्य महत्वपूर्ण - *परन्तु उपेक्षित*- अवदान रचनात्मक कार्यक्रमों को प्रायः विस्मृत कर दिया जाता है। एक अहिंसक एवं आदर्श समाज रचना के लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए रचनात्मक कार्यक्रमों की अवधारणा का जन्म हुआ। कांग्रेस की सक्रिय सदस्यता से स्वयं को अलग करने के बाद गांधीजी ने अधिकांश समय सामाजिक उत्थान में लगाया। सतही तौर पर राजनीतिक स्वतंत्रता के संघर्ष में सक्रिय योगदान न करते हुए भी गांधीजी इन कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के जरिए आजादी की लड़ाई लड़ रहे थे। वस्तुतः रचनात्मक कार्यक्रम 'स्वराज्य' की अपनी आंतरिक लड़ाई थी। इस लड़ाई में उनका सामना भारतीय समाज और उसके वर्चस्वशाली तबके से था। इन कार्यक्रमों का उद्देश्य समाज के सभी तबकों को आजादी में उनका वाजिब हक दिलाना और उनके मुद्दों को राष्ट्रीय राजनीति में स्थान दिलाना था। रचनात्मक कार्यक्रम सत्याग्रहियों के लिए एक प्रयोगशाला थे जहाँ वह कड़ा अनुशासन,त्याग और अहिंसक संघर्ष के नियमों का पालन कर एक सच्चा सत्याग्रही बनने का प्रयास करते थे। साधारण से प्रतीत होने वाले रचनात्मक कार्यक्रम समाज की पुनर्रचना के आधार थे। रचनात्मक कार्यक्रम के जरिए गांधीजी भारतीयों को शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तौर पर

नयी दिशा की ओर उन्मुख करना चाह रहे थे जिससे वे न केवल ब्रिटिश सत्ता से मुक्त हो सकें अपितु हिंसक आधुनिक सभ्यता के पाश से भी छूट सकें। रचनात्मक कार्यक्रम अहिंसात्मक सिळांतों पर समाज में बदलाव का एक सर्वांगीण दृष्टिकोण है।

2.2 रचनात्मक कार्यक्रम का अर्थ

रचनात्मक कार्यक्रमों से तात्पर्य गांधीजी द्वारा एक अहिंसक समाज की रचना और वर्तमान समाज की पुनर्रचना के कार्यक्रमों से है, जिनके आधार पर अहिंसा, न्याय और समानता के मूल्यों को दृष्टिगत रखते हुए समाज निर्माण किया जा सकता है।

रचनात्मक कार्यक्रम की शुरूआत गांधीजी के अपने प्रारंभिक जीवन काल से ही देखने को मिलती है,जब वह दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के मानवाधिकारों की लड़ाई लड़ रहे थे। भारत आने बाद भी उनके विभिन्न कार्यक्रमों में हमें रचनात्मक कार्यक्रमों की झलक मिल जाती है। 1941 में इन कार्यक्रमों को गांधी ने एक व्यवस्थित रूप प्रदान किया और एक पुस्तक की रचना की जिसका शीर्षक ***"रचनात्मक कार्यक्रम का मर्म और महत्व"*** रखा। गांधीजी ने अपनी इस पुस्तिका में रचनात्मक कार्यक्रमों का विस्तार से वर्णन किया। विभिन्न रचनात्मक कार्यक्रमों को निम्नानुसार बताया जा सकता है-

1. कौमी एकता
2. अस्पृश्यता-निवारण
3. शराबबन्दी
4. खादी
5. दूसरे ग्रामोद्योग
6. गांवों की सफाई
7. नयी या बुनियादी तालीम
8. बड़ों की तालीम
9. स्त्रियां
10. आरोग्य की नियमों की शिक्षा
11. प्रान्तीय भाषाएं
12. राष्ट्रभाषा
13. आर्थिक समानता
14. किसान
15. मजदूर
16. आदिवासी
17. कोढ़ी
18. विद्यार्थी

इनके अतिरिक्त बाद में पशु-सुधार एवं प्राकृतिक चिकित्सा भी शामिल किए गए।(गंगराडे, के.डी., गांधियन एप्रोच टू डवलपमेंट एंड सोशल वर्क, पृ.188)।

रचनात्मक कार्यक्रमों पर विचार करने के बाद गांधीजी ने रचनात्मक कार्यक्रमों और सविनय अवज्ञा के बीच

ज्ञान शांति मैत्री

संबंध को परिभाषित करते हुए सविनय अवज्ञा के महत्व की चर्चा की। उन्होंने स्पष्ट किया कि 'पूर्ण स्वराज्य की सिद्धि के लिए सविनय कानून भंग की लड़ाई, रचनात्मक कार्यक्रम में करोड़ों देशवासियों के सहयोग के अभाव में , निरी बकवास बन जाती है, और वह निकम्मी ही नहीं, नुकसानदेह भी है।'

2.3 रचनात्मक कार्यक्रम का दार्शनिक पक्ष

गांधीजी राजनैतिक सत्ता प्राप्ति/ स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात समाज परिवर्तन के मार्ग पर नहीं चलते हैं, उनका दृष्टिकोण था कि सामाजिक परिवर्तन की अहिंसक लड़ाई, स्वतंत्रता की लड़ाई का ही भाग है। सामाजिक परिवर्तन की उपेक्षा कर राजनीतिक आजादी की लड़ाई बेमानी है।

रचनात्मक कार्यक्रम हाशिए पर रह रहे लोगों के उत्थान का कार्यक्रम है। ये कार्यक्रम यह अवसर उपलब्ध कराते हैं जिससे व्यक्ति अहिंसक संघर्ष के जरिए बदलाव ला सके। रचनात्मक कार्यक्रम न तो दया/दान है और न ही यथास्थितिवाद है। यह एक सक्रिय बल है जो अहिंसा के आधार पर नवीन समाज रचना का इच्छुक है, यह हर भारतीय का कर्त्तव्य है। रचनात्मक कार्यक्रम वर्तमान में विद्यमान संरचनात्मक एवं व्यवस्थित हिंसक व्यवस्था को बदलने का अहिंसक संघर्ष है। इन कार्यक्रमों की सूची से स्पष्ट हो जाता है कि यह समस्त विभेद - लिंग, जाति, धर्म इत्यादि - को नकारता है, शिक्षा पर ध्यान देता है, स्वच्छता और आरोग्य की बात करता है, आर्थिक स्वावलंबन का मार्ग प्रशस्त करता है, हाशिए पर रह रहे समूहों के प्रति कर्त्तव्यों को पूरा किए जाने पर जोर देता है। वस्तुतः ये कार्यक्रम व्यक्तिगत एवं सामाजिक रूपान्तरण के कार्यक्रम हैं। व्यक्तिगत स्तर पर रचनात्मक कार्यक्रम का उद्देश्य आत्मविश्वास प्राप्ति, अभय और स्वयं की पहचान का निर्माण करना है तथा सामुदायिक स्तर पर नवीन सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक संबंधों की रचना करना है। ये कार्यक्रम यह अवसर प्रदान करते हैं कि दमन को हटाकर परस्पर सहयोगमूलक वैकल्पिक संरचनाएं, व्यवस्थाएं,प्रक्रियाएं और संसाधनों का निर्माण हो। रचनात्मक कार्यक्रम समाज निर्माण की सकारात्मक पहल है। ये कार्यक्रम वह अवसर उपलब्ध कराते हैं जिससे हम उन कौशलों को विकसित कर सकें जो हमें नवीन समाज रचना हेतु आवश्यक हैं।

गांधीजी ने व्यक्तिगत, सामुदायिक, राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तरों पर हिंसा के सभी रूपों की आलोचना की। उन्होंने ब्रिटिश दासता, हिंसा, साम्राज्यवाद, राष्ट्रवादी हिंसा, विभेद की राजनीति, शोषण, अंतरराष्ट्रीय पूँजीवाद, भौतिकतावाद के घातक प्रभावों को काफी करीब से देखा। अतः उन्होंने आम आदमी के नजरिये से अपने समस्त आदशरें को निर्मित किया। रचनात्मक कार्यक्रम एक साधारण भारतीय के जीवन में अहिंसक परन्तु क्रांतिकारी परिवर्तन का माध्यम है। इन कार्यक्रमों के जरिए गांधीजी ने आजादी की लड़ाई को एक व्यापक परिप्रेक्ष्य प्रदान किया। इन कार्यक्रमों ने ऐसे जनआंदोलन की पृष्ठभूमि तैयार की जो ब्रिटिश हुकूमत की विश्वसनीयता, वैधता और नैतिक तर्क को खारिज करने में समर्थ था।

इन कार्यक्रमों के जरिए गांधीजी ने समाज के हाशिए पर रह रहे वंचित तबकों को राष्ट्र की मुख्यधारा में शामिल करने का प्रयास किया। यह स्पष्ट किया कि इन तबकों का भी आजादी में उतना ही हक जितनी किसी और का। इनके अधिकारों और इनके प्रति कर्त्तव्यों को राष्ट्रीय राजनीति में स्थान दिलाया। इन कार्यक्रमों के जरिए गांधीजी ने उन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्ड्डतिक मुद्दों को राष्ट्रीय राजनीति में आवाज प्रदान की जिन पर या तो चुप्पी साध ली जाती थी या उपेक्षा कर दी जाती थी। रचनात्मक कार्यक्रम हर भारतीय को यह अवसर प्रदान करते हैं कि वह समाज के अंतिम व्यक्ति की बेहतरी में अपना

योगदान कर देश की सेवा कर सके।

2.4 रचनात्मक कार्यक्रम के विभिन्न अंग

महात्मा गांधी के अनुसार अंग्रेजों के साथ अहिंसक संघर्ष स्वराज्य की प्राप्ति के लिए था। जिसका तात्कालिक संदर्भ भारत की आजादी था लेकिन वृहदतर संदर्भ सम्पूर्ण मानव जाति को हिंसक सभ्यता के पाश से छुड़ाना ही अभिप्रेत रहा है। इस आजादी के बाद भारत के साथ-आजादी से पूर्व के समय में गांधी जी एक रचनात्मक कार्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं। एक विचारक के रूप में गांधी जी का यह दृष्टिकोण आलोचना की सही मर्यादा को प्रकट करता है कि यदि वे तात्कालिक सभ्यता का, समाज व्यवस्था का विरोध करते है तो उसके साथ ही उसका विकल्प भी प्रस्तुत करते हैं। जैसा कि गांधी प्रस्तावना में लिखते भी है कि-

" निश्चित रूप से यह समझ लेना चाहिये कि रचनात्मक कार्यक्रम ही पूर्ण स्वराज्य या मुकम्मल आजादी को हासिल करने का सच्चा और अहिंसक रास्ता है, उसकी पूरी-सिद्धि ही संपूर्ण स्वतंत्रता हैं।"

गांधी अपने द्वारा प्रस्तुत रचनात्मक कार्यक्रम को अपने अहिंसा व सत्य के भावों के साथ जोडकर ही समाज के सम्मुख प्रकट करते हैं और कहते है कि-

"सत्य और अहिंसा के जरिए संपूर्ण स्वतंत्रता की प्राप्ति का मतलब है,जात-पांत,वर्ण या धर्म के भेद से रहित राष्ट्र के प्रत्येक घटक की और उसमें भी उस के गरीब से गरीब व्यक्ति की स्वतंत्रता की सिद्धि।"

यहाँ यह स्पष्टतः प्रकट होता है कि गांधी जी की मूल भावना क्या है, मानव समाज के हाशिए पर निवास करने वाले व्यक्ति का उदय ही हमारी सच्ची स्वतंत्रता भी है और विजय भी (साथ ही इसमें मानवता की विजय भी शामिल है)।

गांधी ब्रिटिश साम्राज्य में अपने को हीन महसूस कर रही जनता के पुरूषार्थ को जागृत करने के भाव से भी अहिंसा के भाव को सम्मिलित कर रचनात्मक कार्यक्रम का ऐसा ढाँचा प्रस्तुत करते हैं जिसमें व्यक्ति का उचित व सही दिशा में विकास हो सके तथा वह मानवता के लिए एक सार्थक जीवन जी सके। गांधी जी के रचनात्मक कार्यक्रमों पर निम्नांकित रूप से विचार किया जा सकता है :-

1) <u>कौमी एकता</u> : गांधी जी समाज में सभी धर्मो की एकता को आवश्यक समझते थे। गांधी जी का बल इस बात पर था कि यदि हम सभी अपने -अपने धमरें के मूल भावों का पालन ठीक ढ़ंग से कर तो हम कौमी एकता आसानी से प्राप्त कर सकते है क्योंकि प्रत्येक धर्म प्रेम,सहयोग,दया, करुणा आदि के भाव को ही समाहित करे हुए है। सबसे प्रमुख बात गांधी जी कहते है हम मानवता के धर्म को न भूलें। हर दूसरे धर्म के बारे में जाने तथा व्यक्तियों से मेल जोल बढ़ाए। तत्कालीन समय में 'हिन्दू पानी' 'मुस्लिम पानी' की प्रथा गांधी जी को बहुत अखरती थी, वे इसे यथाशीघ्र समाप्त करना चाहते थे। अतः कांग्रेसियों से उनका आह्वान था कि उन्हें प्रत्येक व्यक्ति को अपने वास्तविक धर्म को बतलाने का कार्य करना चाहिए। कांग्रेसियों को स्वयं को समाज के सम्मुख कौमी एकता का आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए। गांधी जी मानते थे कि हम आज अगर अपनी आजादी से दूर है तो हमारी कौमी एकता के दृढ़ न होने का फायदा ब्रिटिश सरकार ने उठाया है। अतः हमें एकजुट होकर इस साम्राज्य के खिलाफ अहिंसा प्रतिरोध हेतु एकत्रित होना होगा।

ज्ञान शांति मैत्री

2) अस्पृश्यता-निवारण : गांधी जी हिन्दू धर्म की प्रशंसा भी करते थे लेकिन इसकी बातों या प्रथाओं पर अविवेकपूर्ण दृष्टि से विश्वास नहीं करते थे जो बात या प्रथा गांधी जी की अहिंसा व मानवता की कसौटी पर खरी नहीं उतरती थी उसे वह खारिज कर देते थे। अस्पृश्यता के बारे में उनका यही विचार था, यह हिन्दू धर्म में एक विकृति है लेकिन समाज की सच्चाई है अतः गांधी जी का यह पुरजोर प्रयास रहा कि वे इस विकृति को दूर कर सकें। स्वयं गांधी जी चाहते थे कि हिन्दू सवर्ण लोग स्वयं आगे होकर अपने धर्म की इस विद्रूपता को दूर करे। मानव होने के नाते हमें अस्पृश्य वर्ग की स्थिति में सुधार के लिए प्रयासरत रहना चाहिए। स्वयं गांधी जी ने अपने आदर्श से समाज को इस अस्पृश्यता को समाप्त करने का संदेश दिया। गांधी तात्कालीन समाज के इस दाग को दूर करना एक अनिवार्यता मानते थे क्योंकि इसके नारे के बिना सच्चा स्वराज एक तबका कभी नहीं पा सकता है।

3) शराबबन्दी : गांधी जी व्यसनमुक्त समाज की आवश्यकता पर बल देते थे। जो व्यसनी थे उनके लिए गांधी जी का विचार था उन्हें प्रेम द्वारा इससे मुक्त किया जाय। गांधी जी का विचार था कि मजदूरों के लिए विश्रांति गृह एवं आनंद-विनोद के केंद्र खोले जाएं, उनमें जागृति लाई जाए मनोरंजन हेतु वे खेल-तमाशों में शरीक हो सके, इसकी भी व्यवस्था की जावें। यह काम मन को आकर्षित करने वाला और हृदय को संस्कारी बनाने वाला होगा।

4) खादी : गांधी के लिए खादी का मतलब था- देश के सभी लोगों की आर्थिक स्वतंत्रता और समानता का प्रारंभ। खादी गांधी जी के लिए हिन्दुस्तान की समस्त जनता की एकता, आर्थिक स्वतंत्रता एवं समानता का प्रतीक थी। खादी के पीछे प्रमुख बात जीवन के लिए जरूरी चीजों की उत्पति एवं उनके बंटवारे का विकेंद्रीकरण थी। गांधी जी का यह पक्का विश्वास था कि यदि खादी के भाव को सभी गांवों में लागू कर दिया जाए तो यह भारत की आर्थिक समस्याओं के लिए रामबाण औषधि सिद्ध होगा। खादी की भावना के पीछे विकेंन्द्रीकृत समाज व्यवस्था (जिसमें आर्थिक व राजनीतिक सत्ता, संसाधन, शक्ति समाहित है) का भाव था।

ज्ञान शांति मैत्री

5) दूसरे ग्रामोद्योग : खादी के अतिरिक्त गांव में स्थानीय स्तर के कुटीर व लघुउद्योग को प्रोत्साहित करने के पीछे गांधी जी का मुख्य भाव स्वदेशी का था अर्थात् आवश्यकताओं की पूर्ति को हम लोग स्थानीय संसाधनों के उचित व सही उपयोग द्वारा करें। खादी के साथ-साथ यह ग्रामोद्योग व्यक्ति में स्वावलम्बन आर्थिक स्वतंत्रता एवं आत्मनिर्भरता का विकास करेगा।

6) गाँवों की सफाई :मन की सफाई के साथ- गांधी जी बाहरी सफाई पर भी जोर देते है विशेषतः अनजाने में या अज्ञान के वशीभूत ग्रामीण जन सफाई पर ध्यान नहीं देते। अतः गांधी जी का विचार था कि प्रत्येक कांग्रेसी जो गांव में निवास करता है उसका दायित्व है कि वे समाज में सफाई को क्रियान्वित करे, जो अनेक बीमारियों को उत्पन्न होने से रोकेगी।

7) नयी या बुनियादी तालीम :गांधी जी के अनुसार कांग्रेसियों को सबसे ज्यादा दिलचस्पी इसी कार्यक्रम में थी क्योंकि ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा चलायी जा रही शिक्षा को वह उचित नहीं मानते थे क्योंकि वह पढ़ाई

हमारी आवश्यकताओं के अनुसार नहीं थीं। नयी तालीम का उद्देश्य -

- शिक्षार्थी के तन और मन का विकास
- शिक्षार्थी को अपने वतन के साथ जोड़ना
- शिक्षार्थी को उसके एवं देश के भविष्य का गौरवपूर्ण चित्र दिखाना
- इस चित्र को साकार करने में स्कूल जाने के दिन से ही हाथ बंटाने से है।

तालीम का उद्देश्य गांव के बच्चो को सुधार संवार कर उन्हें गांव का आदर्श बाशिन्दा(नागरिक) बनाना था।

8) बड़ों की तालीम : गांधी जी बड़े व्यक्तियों (पुरुष-स्त्री) को भी शिक्षा देने के पक्षधर थे जो अनपढ़ थे। क्योंकि ज्ञान के अभाव में वह लोग यह नहीं जानते थे कि यह शासन उन पर कैसे हुकूमत कर रहा है और किस प्रकार देश पर बुरा असर डाल रहा है। वे यह भी नहीं जानते थे कि इस हुकूमत के पंजे से कैसे छूटा जाए? अज्ञानता के प्रसार को गांधी हम भारत वासियों की ही कमजोरी मानते थे।अतः बडों की तालीम के संदर्भ में गांधी जी का अर्थ उन्हें जबानी तौर पर सीधी बातचीत के जरिए सच्ची राजनीतिक तालीम दी जाने से था। इसकी पूर्व तैयारी हेतु कमेटी मुकर्रर (स्थापित) करने का प्रस्ताव भी करते है।

9) स्त्रियां : गांधी जी के अनुसार रचनात्मक कार्यक्रमों के माध्यम से स्त्रियों को सामाजिक क्षेत्र में लाना चाहते थे और इसमें सफल भी हुए। गांधीजी स्वयं स्वीकार करते हैं कि स्त्रियों को इन कार्यक्रमों में प्रोत्साहित करने के लिए कांग्रेसियों को जो करना चाहिये वे उतना प्रयास नहीं कर रहे थे। एक अहिंसक समाज में वह स्त्री व पुरुष की समानता पर बल देते हैं। उनका मानना था कि अहिंसा की नींव पर रचे गए जीवन की योजना में जितना और जैसा अधिकार पुरूष को अपने भविष्य की रचना का है उतना ही और वैसा ही अधिकार स्त्री को भी अपना भविष्य तय करने का है। वह कांग्रेसियों से आह्वान करते हैं कि वे स्त्रियों को उनकी पददलित हालातों से ऊपर उठकर समाज में उचित स्थान प्रदान करें, समाज में स्त्रियों को उनकी मौलिक स्थिति का पूरा बोध करावें। स्त्रियों को काम -वासना की पूर्ति का साधन न माना जाए।

10) आरोग्य के नियमों की शिक्षा : प्रत्येक को शरीर की हिफाजत करना एवं तंदुरुस्ती के नियमों को जानना चाहिए ताकि समाज व व्यक्ति दोनों रोगों से बचे रहे गांधी कहते भी है कि साधारणतः स्वास्थ्य का पहला नियम यह है कि मन चंगा है तो शरीर भी चंगा है। मन व शरीर में अटूट संबध है। शुद्ध विचार, शुद्ध आचार-व्यवहार,व्यायाम,शारीरिक स्वच्छता,संतुलित भोजन,संतुलित विचार, शुद्ध आहार इत्यादि का ध्यान आवश्यक रखना चाहिए तथा यथासंभव इनके नियमों का पालन करना चाहिए।

11) प्रांतीय भाषाएँ : गांधी जी यद्यपि राष्ट्र भाषा के रूप में हिन्दी को मान्यता देते है लेकिन उनका विचार था कि प्रांतीय/स्थानीय भाषाओं को सीखना व उनका प्रचार भी आवश्यक है। इससे हमें यह लाभ होगा कि हम अपने विचारों को कठिन भाषा में व्यक्त न करके ग्रामीणों को उनकी भाषा में ही बतलावें जो उनके समाज विचारों में रची-बसी है। स्थानीय भाषा के प्रयोग से ग्रामीण जन विचारों को अधिक स्पष्ट रूप से समझकर अपना सकेगें।

12) राष्ट्रभाषा : अखिल भारतीय स्तर पर संवाद को स्थापित करने हेतु गांधी जी स्वयं हिन्दी को आवश्यक मानते थे। हिन्दी के साथ अन्य भाषाओं को जानना लिखना व बोलने का प्रयास,इसके लिए गांधीजी बहुत बल देते थे। हिन्दुस्तानियों के मध्य संवाद का सेतु अंग्रेजी होने की आदत को गांधी जी अच्छा नहीं मानते। अंग्रेजी के मोह पाश से मुक्त होने की अपील भी करते हैं।

13) आर्थिक समानता : गांधी जी पूर्व में ही खादी के उद्देश्य में इस आर्थिक समानता के भाव को ही व्यक्त करते है। वह आर्थिक समानता के लिए काम करने का अर्थ पूँजी और मजदूरी के बीच झगड़ों को हमेशा के लिए मिटा देने से बताते हैं। आर्थिक असमानता जिस समाज में व्याप्त रहेगी, तब तक अहिंसा की बुनियाद पर चलने वाली राजव्यवस्था कायम नहीं हो सकती। इस आर्थिक असमानता को समाप्त करने हेतु गांधी जी किसी हिंसक क्रांति का पक्ष नहीं लेते है वरन धनवान व्यक्तियों के हृदय परिवर्तन पर बल देते हैं और कहते है कि हम लोगों को अहिसंक प्रयासों द्वारा ही आर्थिक समानता प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। धनवानों को जब यह अहसास होगा कि उनकी आवश्यकता के अधिक धन उनके पास समाज की धरोहर है तो स्वयं वह उस संपत्ति को समाज के हाशिये पर रह रहे व्यक्तियों के कल्याण में लगायेगा। आगे यही सिद्धांत 'ट्रस्टीशिप' कहलाता है।

14) किसान : गांधी जी का मानना था किसान ही कांग्रेस है अर्थात यही लोग यदि अहिंसा के मार्ग को दृढ़ पकड लें तो दुनिया की कोई ताकत इनका सामना नहीं कर सकेगी। गांधी जी ने स्वयं "चम्पारन सत्याग्रह" द्वारा यह स्पष्ट किया कि यदि किसान लोगों को सच्चा राजनीतिक प्रशिक्षण दिया जाए तो वह किसी भी लक्ष्य को प्राप्त कर सकते है। लेकिन साथ ही गांधी जी इन भोले-भाले किसानों का प्रयोग किसी गलत राजनीतिक स्वार्थ पूर्ति हेतु करने के विरोधी थे। गांधीजी ने कांग्रेस को अपनी देखरेख में किसानों के लिए एक अलग विभाग खोलने के लिए कहा जो इनके सवालों को हल करने का काम करे।

ज्ञान शांति मैत्री

15) मजदूर : मजदूरों के लिए अहमदाबाद के मजदूर संघ को गांधी जी आदर्श कहते है जो अहिंसा की नींव पर टिका हुआ है। यह संघ मजदूरों के स्वास्थ्य, उनके बच्चों की शिक्षा, छापाखाना, खादी भंडार, आवास आदि की उचित व्यवस्था करता है। हड़ताल की आवश्यकता होने पर अहिंसक धारणाओं का प्रयोग करता है। किसी विवाद के निपटारे में 'पंच नीति' को स्वीकारते है। गांधी जी का विचार था कि 'अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस' को अहमदाबाद मजदूर संघ के तरीकों को अपनाना चाहिए।

16) आदिवासी : आदिवासियों की सेवा भी रचनात्मक कार्यक्रम का अंग है। यह महत्वपूर्ण कि आदिवासियों के दुःख-दर्द को देश की जनता अपने दुःख-दर्द की तरह लें और उनके उत्थान के लिए कार्य करें। आदिवासियों की सेवा के संदर्भ में वह ठक्कर बापा एवं श्री बालासाहेब खेर के कार्यों को उल्लेख भी करते हैं जिन्होंने इस कार्य को सफलतापूर्वक किया है।

17) <u>कोढ़ी</u> : परचुरे शास्त्री की सेवा के द्वारा गांधी जी ने स्वयं इस सबंध में यह संदेश दिया कि कोढ़ी को सबसे ज्यादा आवश्यकता हमारे प्रेम-सेवा-सुश्रूषा की है,हमारे तिरस्कार की नहीं। कोढ़ी को त्यागना नहीं उसका वरण करना चाहिए। इस संदर्भ में वह ईसाई मिशनरियों के कार्यो की प्रशंसा करते हैं। वर्धा में कोढ़ियों के उपचार के लिए काम कर रहे श्री मनोहर दीवान और विनोबा भावे का उल्लेख करते हैं।

18) <u>विद्यार्थी</u> : अध्यापकों,छात्रों ने गांधी जी के अह्वान पर स्कूलों,कॉलेजों में जाना छोड़ दिया और स्वयं को राष्ट्र सेवा में प्रस्तुत कर दिया यह प्रशंसनीय बात थी। गांधी जी का मानना था कि पाश्चात्य शिक्षा विद्यार्थियों को मात्र 'क्लर्क' बनाने के लिए है। गांधी जी विद्यार्थियों को समाज के निर्माण में सहयोग के हेतु आमंत्रित करते है लेकिन नियमावली के साथ। उनके नियम हैं -

1. विद्यार्थियों को दलबंदी राजनीति में कभी शामिल न होना चाहिए।
2. उन्हें राजनीतिक हड़तालें न करनी चाहिए।
3. सब विद्यार्थियों को सेवा की खातिर शास्त्रीय तरीके से खादी कातना चाहिए।
4. अपने पहनने-ओढ़ने के लिए वे हमेशा खादी का ही उपयोग करें, और गांवों में बनी चीजों के बदले परदेश की या यंत्रों की बनी वैसी चीजों को कभी न बरतें।
5. वंदे मातरम गाने,राष्ट्रीय झंडा फहराने के मामले में दूसरों पर जबर्दस्ती न करें।
6. तिरंगे झंडे के संदेश को अपने जीवन में उतार कर दिल में साम्प्रदायिकता या अस्पृश्यता को घुसने न दें। दूसरे धर्म वाले विद्यार्थियों और हरिजनों को अपने भाई समझ कर उनके साथ सच्ची दोस्ती कायम करें।
7. अपने दुखी-दर्दी पड़ोसियों की सहायता के लिए वे तुरन्त दौड़ आएं, आस-पास के गांवों में सफाई का काम करें और गांवों के बड़ी उमर के स्त्री-पुरूषों व व बच्चों को पढ़ावें।
8. हिन्दी व उर्दू यथाशक्ति लिखना, बोलना सीखें।
9. नये विचारों को जनता के बीच प्रसारित करे।
10. व्यवहार शुद्ध रखे तथा बिना डर के खुल्लम-खुल्ला अपने कार्यो को अंजाम दे।
11. विद्यार्थिनी बहनों के प्रति व्यवहार बिलकुल शुद्ध एवं सभ्यतापूर्ण रखें।

इसके अतिरिक्त समय पाबंदी पर भी बल देते है। गांधी जी विद्यार्थियों को साथ में सलाह देते है कि वे पढ़ाई के साथ भी इन कार्यों में अपना योगदान दे सकते है।

महात्मा गांधी ने अपनी पुस्तिका में रचनात्मक कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के लिए सविनय अवज्ञा को बहुत महत्वपूर्ण माना है। अपनी रचना में वह सविनय अवज्ञा के तीन काम बतलाते है :-

1. किसी स्थानीय अन्याय या शिकायत को दूर करने के लिए इसका सफल प्रयोग किया जा सकता है।
2. किसी खास अन्याय,शिकायत या बुराई के खिलाफ, उसे मिटाने के मसले पर कोई खास असर डालने का इरादा न रखते हुए, स्थानीय जनता को उस अन्याय या शिकायत या बुराई का भान कराने या उसके दिल पर असर डालने के लिए कुरबानी या आत्म-बलिदान की भावना से भी सविनय कानून-भंग किया जा सकता है।
3. रचनात्मक कार्य में जनता का पूरा सहयोग न मिलने पर इसके बदले में सन् 1941 में छिड़े सत्याग्रह की तरह सविनय कानून भंग की लड़ाई छेड़ी जा सकती है।

ज्ञान शांति मैत्री

गांधी जी स्पष्ट कहते है कि पूर्ण स्वराज की सिद्धी के लिए सविनय कानून-भंग की लड़ाई रचनात्मक कार्यक्रम में करोड़ों देशवासियों के सहयोग के अभाव में,निरी बकवास बन जाती है ; और वह निकम्मी ही नही, नुकसान देह भी है।

गांधी जी इस पुस्तक का उद्देश्य रचनात्मक कार्यक्रमों के बारे में लोगों की समझ को विकसित करना बताते है। रचनात्मक कार्यक्रम का अमल किस तरह किया जा सकता है या किया जाना चाहिए यही बताना इसका अभिप्रेत रहा है।इन रचनात्मक कार्यक्रमों का गांधीजी के लिए जो महत्व है उन्हें निम्न शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है -

"अगर रचनात्मक कार्यक्रम के बिना मैं सविनय कानून भंग की लड़ाई लड़ने लगूं ,तो वह लकवे से बेकार बने हुए हाथ से चम्मच उठाने जैसी बात होगी।"

आगे चलकर गौ सेवा के रूप में **पशु-सुधार** (जिसमें गाय के अतिरिक्त अन्य पशु-पक्षी शामिल है) तथा **प्राकृतिक चिकित्सा** को भी इन रचनात्मक कार्यक्रमों के साथ जोड़ते हैं।

2.5 रचनात्मक कार्यक्रम की प्रासंगिकता

रचनात्मक कार्यक्रम सामाजिक पुनर्रचना का महत्वपूर्ण कार्यक्रम है। भारत के संदर्भ में आज भी इसकी प्रासंगिकता बनी हुई है। कई महत्वपूर्ण संस्थाएं ;गांधीवादी एवं गैर गांधीवादीद्ध अपने समर्पित कार्यकर्ताओं के बल पर महत्वपूर्ण कार्य करते हुए बदलाव की बयार ला रही है। रचनात्मक कार्यक्रम में शामिल वंचित तबकों को अभी भी मुख्यधारा में अपना स्थान प्राप्त करना शेष है। अभी भी भारत गांवों का देश है अतः ग्रामीण पुनर्रचना आज भी उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी गांधीजी के समय थी। आज आवश्यकता इस बात की है कि रचनात्मक कार्यक्रमों को पूरे मनोयोग के साथ और इसके संघर्षपूर्ण स्वरूप में लागू किया जाए। जिससे ऐसा जनमानस तैयार हो सकेगा जो लोकतंत्र, सहभागीमूलक विकास, सामाजिक न्याय इत्यादि के लिए सशक्त पहल कर सकेगा।

ज्ञान शांति मैत्री

2.6 बोध प्रश्न

1. रचनात्मक कार्यक्रम से आपका क्या आशय है?
2. रचनात्मक कार्यक्रम के दार्शनिक पक्ष को स्पष्ट कीजिए।
3. रचनात्मक कार्यक्रमों को अहिंसक क्रांति क्यों कहा जाता है?
4. पूर्ण स्वराज के लिए रचनात्मक कार्यक्रम अत्यन्त आवश्यक है। इस कथन पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

2.7 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रन्थ

- भारत सरकार. *सम्पूर्ण गांधी वांङ्मय*(खंड 81 व 88).नई दिल्ली:भारत सरकार।
- गांधी,मो.क.(नवंबर,2004). *रचनात्मक कार्यक्रम : उसका महत्व और स्थान*(अनुवादक - काशिनाथ त्रिवेदी). अहमदाबाद:नवजीवन प्रकाशन मंदिर(पुनमुर्द्रण)।

- गंगराडे,के.डी.(2005).*गांधियन एप्रोच टू डवलपमेंट एंड सोशल वर्क*. नईदिल्ली: कान्सेप्ट पब्लिशिंग कंपनी।
- प्रभु,आर.के, तथा राव, यू.आर.(2002). *महात्मा गांधी के विचार*. नईदिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट।
- भारती,के.एस.(1991). द *सोशल फिलासफी ऑफ महात्मा गांधी*.नईदिल्ली:कान्सेप्ट पब्लिकेशन।
- दिवाकर,आर.आर.(1946). *सत्याग्रहः इट्स टेक्निक्स एंड हिस्ट्री*. बॉम्बे:हिंद किताब।
- प्यारेलाल(1969). *गाँधीयन टेक्निक्स इन द मॉडर्न वर्ल्ड*. अहमदाबाद:नवजीवन प्रकाशन मंदिर(पुनमुर्द्रण)।
- धर्माधिकारी,दादा(1962). *अहिंसक क्रांति की प्रक्रिया*. वाराणसी:अखिल भारतीय सर्वसेवा संघ।

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई 3 : एकादश व्रत

इकाई रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 एकादश व्रत
3.3 सारांश
3.4 बोध प्रश्न
3.5 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आप-

- एकादश व्रतों की जानकारी प्राप्त करेंगे और उन्हें व्याख्यायित कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

विगत कुछ समय से अकादमिक विद्वानों में गांधीजी को लेकर उत्सुकता बढ़ी है। इसका कारण है कि वर्तमान समय में हम जिन समस्याओं से जूझ रहे हैं उन पर गांधीजी ने नई दृष्टि –*कहना चाहिए अहिंसा दृष्टि* – से विचार किया। एक ऐसे समय में जब लोकतंत्र और अहिंसा को वैश्विक स्वीकृति मिल गई है गांधी विचार के विभिन्न आयामों पर पुनर्विचार हो रहा है। वर्तमान समय का सबसे बड़ा संकट व्यक्ति और समाज के बीच की बढ़ती दूरी है। व्यक्ति की वैयक्तिकता इतनी प्रबल होतीजा रही है कि वह सामाजिक मूल्यों से दूर होता जा रहा है। आत्मकेंद्रिता इतनी अधिक हो रही है कि व्यक्ति अपने से इतर व्यक्ति, दृष्टिकोण एवं भावनाओं को अस्वीकार कर रहा है। सामाजिक जीवन में उसकी भागीदारी लगातार कम होती जा रही है। यह समय एक तरह से सामाजिक भागीदारी एवं उत्तरदायित्व के क्षरण का समय है।

गांधीजी ने आधुनिक सभ्यता पर अपने विचार व्यक्त करते हुए इस प्रवृत्ति को देख लिया था। उन्होंने इस आधुनिक सभ्यता को इंग्लैंड प्रवास के दौरान अनुभव भी किया था। दक्षिण अफ्रीका एवं बाद में भारत आकर उन्होंने एक पारस्परिक जीवन के आधार पर वैयक्तिकता और सामाजिकता का सम्मिश्रण करते हुए व्रतों की कल्पना की। 1930 में प्रकाशित 'मंगल प्रभात' नामक पुस्तक में गांधीजी ने एकादश व्रत का विस्तार से उल्लेख किया है, जिनमें सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, अस्वाद, अभय, शरीर श्रम, स्वदेशी, अस्पृश्यता निवारण, सर्वधर्म समभाव आदि हैं।उन्होंने अपने तथा आश्रमवासियों के लिए कुछ व्रत (आदर्श) बना रखे थे, जिनका पालन करना हर आश्रमवासी का कर्तव्य था। ये व्रत गांधी जी के "एकादश व्रत" के नाम से जाने जाते हैं। ये एकादश व्रत सामाजिक एवं वैयक्तिक उत्थान के मार्ग निर्देशक हैं।

3.2 एकादश व्रत

गांधी जी सच्चे प्रयोगवादी थे। सत्य एवं अहिंसा को आधार बनाकर उन्होंने ऐसे सिद्धांत प्रतिपादित किए जो समाज के नवनिर्माण के लिए प्रेरणास्पद थे। अपनी प्रयोगधर्मिता के कारण उन्होंने एकादश व्रतों की संकल्पना को प्रस्तुत किया। ऐसा नहीं है कि ये व्रत गांधीजी की देन है अपितु इनमें से कुछ व्रत तो पहले से ही भारतीय जन मानस में धार्मिक मूल्यों के रूप में प्रतिष्ठित थे। बौद्ध एवं जैन दर्शनों में पांच व्रतों का उल्लेख है जिनका पालन धार्मिक मतावंलबी काफी समय से करते आए हैं। हिंदू धर्म के अनुयायी भी इनमें से कई व्रतों का पालन करते रहे हैं। परंतु बहुतहद तक यह व्रत पालन एक धार्मिक परिधि में था। व्यक्तिगत उत्थान के लिए था।

गांधीजी की यह विशेषता थी कि उन्होंने इस वैयक्तिक उत्थान के माध्यम को समाज परिवर्तन का माध्यम बनाने का प्रस्ताव दिया। एकादश व्रतों में उन्होंने वैयक्तिक उत्थान एवं सामाजिक उत्थान का समन्वय किया। व्रतों की अवधारणा का धार्मिक परिधि बंधन तोड़कर इसे सामाजिक बदलाव के सूत्र के रूप में प्रस्तावित किया। हालांकि यह व्रत आश्रम निवासियों के लिए अभिव्यक्त किए गए थे परंतु हम इसमें सामान्य जनता के लिए आह्वान आसानी से सुन सकते हैं।

इन व्रतों में पांच व्रतों के साथ उन्होंने अस्पृश्यता उन्मूलन, स्वदेशी, शरीर-श्रम, अभय, सर्वधर्म समानत्व आदि का समावेश किया। हम देख सकते हैं कि ये सभी व्रत गुलाम भारत के जनमानस में अहिंसक क्रांति का घोष करने के सिद्धांत है। उनके एकादश व्रत उनके जीवन का निचोड़ कहे जा सकते हैं।

यह ग्यारह व्रत है–

1. सत्य
2. अहिंसा
3. अस्तेय
4. ब्रह्मचर्य
5. अपरिग्रह
6. शरीर श्रम
7. अस्वाद,
8. सर्वत्र भय वर्जनं
9. सर्वधर्म समानत्वं
10. स्वदेशी
11. स्पर्श भावना

1. **सत्य** – सत्य ही परमेश्वर है। सत्य का अर्थ है अस्तित्व का स्वीकार। जैसा मैं हूँ , दूसरा भी वैसा ही है। मान्य व्यवहार में असत्य न बोलना या उसका आचरण न करना ही सत्य का अर्थ नहीं है। किन्तु सत्य ही परमेश्वर है, और उसके अलावा और कुछ नहीं है। इस सत्य की खोज और पूजा के लिए ही दूसरे सभी नियमों की आवश्यकता रहती है और उसीमें से उनकी उत्पत्ति है। इस सत्य का उपासक अपने कल्पित देशहित के लिए भी असत्य नहीं बोलेगा, असत्य का आचरण नहीं करेगा। सत्य के लिए वह प्रल्हाद के समान मातापितादि गुरुजनों की आज्ञा का भी विनयपूर्वक भंग करना अपना धर्म समझेगा।

2. **अहिंसा** – सत्य के साक्षात्कार का अहिंसा ही एक मार्ग एवं एक साधन है। अहिंसा के बगैर सत्य की खोज असंभव है।
   अहिंसा के पालन के लिए केवल हिंसा न करना ही पर्याप्त नहीं है। अहिंसा का व्यापक अर्थ है अपने से परे समस्त चराचर जगत के प्रति समभाव रखना। इस व्रत का पालन करने वाला घोर अन्याय करनेवाले के प्रति भी क्रोध नहीं करेगा, किन्तु उस पर प्रेमभाव रखेगा, उसका हित चाहेगा और करेगा। किन्तु प्रेम करते हुए भी अन्यायी के वश नहीं होगा, अन्याय का विरोध करेगा, और वैसा करने में वह जो कष्ट दे उसे धैर्यपूर्वक और अन्यायी से द्वेष किये बिना सहेगा ।

3. **अस्तेय (चोरी न करना)** – दूसरे की चीज़ को उसकी इजाजत के बिना लेना तो चोरी है ही, लेकिन मनुष्य अपनी कम से कम जरूरत के अलावा जो कुछ लेता या संग्रह करता है, वह भी चोरी ही है।इस व्रत के पालन के लिए यही काफ़ी नहीं है कि दूसरे की वस्तु उसकी अनुमति के बिना न ली जाय। वस्तु जिस उपयोग के लिए मिली हो, उससे ज्यादा समय तक उपयोग करना भी चोरी है। इस व्रत के मूल में सूक्ष्म सत्य तो यह छिपा हुआ है कि परमात्मा प्राणियों के लिए नित्य की केवल आवश्यक वस्तु ही रोज उत्पन्न करता है। उससे अधिक पैदा नहीं करता। इसलिए अपनी कम से कम आवश्यकता से अधिक, जो कुछ भी मनुष्य लेता है, वह चोरी में शामिल है।
4. **ब्रह्मचर्य** – इसका अर्थ है- ब्रह्म की, सत्य की खोज में चर्या, अर्थात् उससे संबंध रखने वाला आचार। इसका मूल अर्थ है- सभी इंद्रियों का संयम। ब्रह्मचर्य के पालन के बिना ऊपर के व्रतों का पालन अशक्य है। ब्रह्मचारी किसी स्त्री पर कुदृष्टि न करे केवल इतना ही पर्याप्त नहीं है, किन्तु वह मन से भी विषयों का चिन्तन या सेवन न करे। और विवाहित हो तो अपनी पत्नी या अपने पति के साथ भी विषयभोग न करे, किन्तु उसे मित्र समझकर उसके साथ निर्मल संबंध रखे। अपनी पत्नी या दूसरी स्त्री का अथवा अपने पति या दुसरे पुरुष का विकारमय स्पर्श या उसके साथ विकारमय भाषण या दूसरी विकारमय चेष्टा भी स्थूल ब्रह्मचर्य का अंग है। ब्रह्मचर्य वस्तुत: इंद्रियों के संयम के माध्यम से अपने स्व के विस्तार करने का आधार है।
5. **अपरिग्रह** – सच्चे सुधार की निशानी अधिक ग्रहण करना नहीं, बल्कि विचार और इच्छापूर्वक कम ग्रहण करना है। ज्यों-ज्यों परिग्रह कम होता जाता है- सच्चा सुख, संतोष और सेवाशक्ति -बढ़ती है। अपरिग्रह अस्तेय के अंतर्गत ही है । अनावश्यक वस्तु जिस तरह ली नहीं जा सकती, उसी तरह उसका संग्रह भी नहीं किया जा सकता । इसलिए जिस खुराक या साझोसामान की जरुरत न हो, उसका संग्रह करना इस व्रत का भंग है । अपरिग्रही दिनोंदिन अपना जीवन और भी सादा करता जाय ।
6. **शारीरिक श्रम** – जिनका शरीर काम कर सकता है, उन स्त्री-पुरुषों को अपने रोजमर्रा के खुद करने के लायक सभी काम खुद ही कर लेने चाहिए। बिना कारण दूसरों से सेवा नहीं लेनी चाहिए।मनुष्य मात्र शरीर निर्वाह शारीरिक श्रम से करे तभी वह समाज के और अपने द्रोह से बच सकता है। जिनका शरीर चल सकता है और जिन्हें समझ आ गयी है, उन सभी स्त्रीपुरुषों को अपना नित्य का सारा काम, जो स्वयं ही कर लेने योग्य हो, कर लेना चाहिए और दूसरे की सेवा बिना कारण नहीं लेनी चाहिए। किन्तु बालकों की अथवा पंगु लोगों की और वृद्ध स्त्रीपुरुषों की सेवा प्राप्त हो तो उसे करने की सामाजिक जिम्मेदारी को

उठाना प्रत्येक समझदार मनुष्य का धर्म है। इस आदर्श का अवलम्बन करके आश्रम में वही मजदूर रखे जाते हैं, जहाँ अनिवार्य हो, और उनके साथ मालिक नौकर का व्यवहार नहीं रखा जाता।

7. **अस्वाद** – मनुष्य जब तक जीभ के रसों को न जीते, तब तक ब्रह्मचर्य का पालन बहुत कठिन है। भोजन केवल शरीर पोषण के लिए हो, स्वाद या भोग के लिए नहीं। ऐसा अनुभव होने से कि मनुष्य जहाँ तक जीभ के रसों को नहीं जीतता, वहाँ तक ब्रह्मचर्य का पालन अति कठिन है, अस्वाद को अलग व्रत माना गया है। भोजन केवल शरीरयात्रा के लिये ही हो, भोग के लिये कभी नहीं। इसलिए उसे औषध समझकर संयमपूर्वक लेने की जरुरत है। इस व्रत का पालन करनेवाला, ऐसे मसाले वगैरह का त्याग करेगा, जो विकार उत्पन्न करें। मांसाहार, तंबाकू, भांग इत्यादि का आश्रम में निषेध है। इस व्रतमें स्वाद के लिए उत्सव या भोजन के समय अधिक खिलाने के आग्रह का निषेध है।
8. **अभय** – जो सत्यपरायण रहना चाहे, वह न तो जात-बिरादरी से डरे, न सरकार से डरे, न चोर से डरे, न बीमारी या मौत से डरे, न किसी के बुरा मानने से डरे। सत्य, अहिंसा आदि व्रतों का पालन निर्भयता के बिना असंभव है। और हाल में जहाँ सर्वत्र भय व्याप रहा है, वहाँ निर्भयता का चिन्तन और उसकी शिक्षा अत्यन्त आवश्यक होने से, उसे व्रतों में स्थान दिया गया है। जो सत्यपरायण रहना चाहता है, वह न जाति से, बिरादरी से, न सरकार से, न चोर से, न गरीबी से और न मौतसे डरता है।
9. **सर्वधर्म-समभाव** – जितनी इज्जत हम अपने धर्म की करते हैं, उतनी ही इज्जत हमें दूसरे के धर्म की भी करनी चाहिए। जहां यह वृत्ति है, वहां एक-दूसरे के धर्म का विरोध हो ही नहीं सकता, न परधर्मी को अपने धर्म में लाने की कोशिश ही हो सकती है। हमेशा प्रार्थना यही की जानी चाहिए कि सब धर्मों में पाये जाने वाले दोष दूर हों।आश्रम की ऐसी मान्यता है कि जगत में प्रचलित प्रख्यात धर्म सत्य को व्यक्त करनेवाले है। किन्तु उन सभी का अपूर्ण मनुष्य के द्वारा व्यक्त होने से, सभी में अपूर्णता अथवा असत्यका मिश्रण हुआ है। इसलिए हमें अपने धर्म के लिए जैसा मान हो, वैसा ही प्रत्येक धर्म के लिए रखना चाहिए।
10. **स्वदेशी** – अपने आसपास रहने वालों की सेवा में ओत-प्रोत हो जाना स्वदेशी धर्म है। जो निकट वालों को छोड़कर दूर वालों की सेवा करने को दौड़ता है, वह स्वदेशी धर्म को भंग करता है।स्वदेशी व्रत को उन्होंने महाव्रत के नाम से पुकारा था। गान्धीजी के अनुसार स्वदेशी व्रत राष्ट्र का एक महान विस्तृत धर्म है। गान्धी जी ने स्वदेशी शब्द का सम्बन्ध स्वधर्म से जोड़ दिया था जिसके लिये भगवान श्री कृष्ण ने पहले ही कहा है कि "स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः" गान्धी जी अपने स्वधर्म स्वरूपी स्वदेशी व्रत का न पालन करना भयावह ही नहीं आत्महत्या से भी अति निकृष्ट समझते थे।
11. **अस्पृश्यता निवारण** – छुआछूत हिन्दू धर्म का अंग नहीं है बल्कि यह उसमें छुपी हुई सड़न है, वहम है, पाप है। इसका निवारण करना ही प्रत्येक हिन्दू का धर्म है, कर्त्तव्य है।हिन्दू धर्म में अस्पृश्यता की रूढ़ि ने जड़ जमा ली है। इसमें धर्म नहीं किन्तु अधर्म है, ऐसी मान्यता होने के कारण अस्पृश्यता-निवारण को नियम में स्थान दिया गया है। अस्पृश्य माने जाते लोगों के लिए दूसरी जातियों के बराबर ही आश्रम में स्थान है।

3.3 सारांश

महात्मा गांधी ने एकादश व्रतों के जरिए वैयक्तिक एवं सामाजिक उत्थान के लिए एक मार्गनिर्देशी सिद्धांत का प्रतिपादन किया। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि व्यक्ति और समाज एक-दूसरे के पूरक बने और विकास में सहायक बने। इन व्रतों के जरिए गांधीजी ने समाज परिवर्तन को अहिंसक दिशा देने का प्रयास किया। इन व्रतों के माध्यम से गांधीजी का उद्देश्य लोगों एवं समाज को बदलाव के लिए तैयार करना और प्रयास करना था। समाज परिवर्तन में सभी लोग सहभागी बने और अपनी अपनी क्षमता अनुसार इस बदलाव में सहायक हो, एकादश व्रत इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए बनाए गए थे।

3.4 बोध प्रश्न

1. एकादश व्रतों को सविस्तार बताइए।
2. एकादश व्रतों की आवश्यकता पर प्रकाश डालिए।

3.5 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

- भारत सरकार. *सम्पूर्ण गांधी वांङ्मय*(खंड 81 व 88).नई दिल्ली:भारत सरकार ।
- प्रभु,आर.के, तथा राव, यू.आर.(2002). *महात्मा गांधी के विचार*. नईदिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट।
- गांधी.मो.क.(1958).*मंगल प्रभात(अनु.अ.ठा.नाणावटी)*.अहमदाबाद:नवजीवन मुद्रणालय।
- प्यारेलाल(1969). *गाँधीयन टेक्निक्स इन द मॉडर्न वर्ल्ड*. अहमदाबाद:नवजीवन प्रकाशन मंदिर(पुनमुर्द्रण)।
- धर्माधिकारी,दादा(1962). *अहिंसक क्रांति की प्रक्रिया*. वाराणसी:अखिल भारतीय सर्वसेवा संघ।

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई- 4 : सर्वोदय

इकाई की रूपरेखा

4.1 उद्देश्य
4.2 प्रस्तावना
4.3 सर्वोदय : अर्थ एवं संदर्भ
4.4 सर्वोदय का दर्शन
4.5 सर्वोदय का उद्देश्य
4.6 सर्वोदय की विशेषता
4.7 सारांश
4.8 बोध प्रश्न
4.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.1 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको निम्न बिन्दुओं में सक्षम बनाना है –

- सर्वोदय की अवधारणा को समझ पाने में।
- सर्वोदय केदर्शन के बारे में समझ विकसित कर पाने में ।
- सर्वोदय केउद्देश्य एवं विशेषताओंका वर्णन करने में।

4.2 प्रस्तावना

सर्वोदय गांधीय दर्शन की एक प्रमुख अवधारणा है। सर्वोदय समाजिक आदर्श का एक सम्प्रत्यय है जिसका प्रतिपादन गाँधी जी ने सत्य अहिंसा एवं अद्वैत के मूल भावना को साकार करने के लिए किया था। सर्वोदय वस्तुतः समाज के समस्त वर्गों के पुनरूत्थान का एक अद्वितीय प्रयास है। जिसका लक्ष्य एक ऐसे सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करना है जिसमें शोषण, संघर्ष एवं प्रतियोगिता के स्थान पर प्रेम एवं सहयोग, विषमता के स्थान पर समता, वर्गहित के स्थान पर सर्वहित की मंगल कामना निहित है। गाँधी सर्वोदय को जीवन दर्शन के मूलभूत सिद्धांत के रूप में स्वीकार करते हैं। गाँधी के इस धारणा का पोषण एवं व्यावहारिक रूप कालांतर में आर्चाय विनोवा भावे, जय प्रकाश नारायण आदि ने देने का प्रयास किया।

4.3 सर्वोदय : अर्थ एवं संदर्भ

सर्वोदय दो शब्दों के योग से बना है। पहला सर्व तथा दूसरा उदय। यहाँ सर्व का आशय है सभी का और सभी प्रकार से, जबकि उदय, उत्थान या कल्याण को इंगित करता है। यहाँ सभी का से तात्पर्य अमीर-गरीब स्त्री-पुरूष आदि सबसे है तथा 'सभी प्रकार का' से आशय जीवन के समस्त पक्षों अर्थात् सामाजिक, आर्थिक, नैतिक एवं धार्मिक पक्ष से है। इस प्रकार सर्वोदय का अर्थ समाज के सभी वर्गों के जीवन के सभी पक्षों के सर्वांगीण उत्थान से है। यहाँ जाति धर्म, वर्ण, समुदाय, लिंग, सम्पत्ति जन्म स्थान आदि के आधार पर

किसी भी प्रकार के भेद-भाव को स्वीकार नहीं किया गया है। यहाँ गरीब के उत्थान से तात्पर्य है, उनका भौतिक कल्याण जबकि अमीर के उत्थान का तात्पर्य इनके नैतिक एवं आध्यात्मिक उत्थान से है। सर्वोदय के इस अर्थ को स्पष्ट करते हुए दादा धर्माधिकारी कहते हैं कि सर्वोदय ऐसे वर्ग विहीन, जाति विहीन, शोषण विहिन समाज का स्थापना करना चाहता है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति तथा प्रत्येक समूह को अपने सर्वांगीण विकास के साधन एवं अवसर उपलब्ध होंगे।

सर्वोदय, अंग्रेज लेखक रस्किन की एक पुस्तक **अनटूदिसलास्ट** का गांधीजी द्वारा गुजराती में अनूदित एक पुस्तक है। 'अन्टू द लास्ट' का अर्थ है - **इस अंतवाले को भी**। सर्वोदय का अर्थ है - सबका उदय, सबका विकास।

महात्मा गांधी जान रस्किन की प्रसिद्व पुस्तक ''अन टू दिस लास्ट'' से बहुत अधिक प्रभावित थे। गांधी जी के द्वारा रस्किन की इस पुस्तक का गुजराती भाषा में सर्वोदय "शीर्षक से अनुवाद किया गया। इसमें तीन आधारभूत तथ्य थे-

1. सबके हित में ही व्यक्ति का हित निहित है।
2. एक नाई का कार्य भी वकील के समान ही मूल्यवान है क्योंकि सभी व्यक्तियों को अपने कार्य से स्वयं की आजीविका प्राप्त करने का अधिकार होता है, और
3. श्रमिक का जीवन ही एक मात्र जीने योग्य जीवन है।

गांधी जी ने इन तीनों कथन के आधार पर अपनी सर्वोदय की विचारधारा को जन्म दिया। सर्वोदय का अर्थ है सब की समान उन्नति। एक व्यक्ति का भी उतना ही महत्व है जितना अन्य व्यक्तियों का सामूहिक रूप से है। सर्वोदय का सिद्वान्त गांधी ने बेन्थम तथा मिल के उपयोगतिवाद के विरोध में प्रतिस्थापित किया। उपयोगितावाद अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम सुख प्रदान करना पर्याय माना। उन्होने कहा कि किसी समाज की प्रगति उसकी धन सम्पत्ति से नहीं मापी जा सकती, उसकी प्रगति तो उसके नैतिक चरित्र से आंकी जानी चाहिये। जिस प्रकार इंग्लैण्ड में रस्किन तथा कार्लाईल ने उपयोगितावादियों को विरोध किया, उसी प्रकार गांधी ने मार्क्स से प्रभावित उन लोगों के विचारों का खण्डन किया जो भारतीय समाज को एक औद्योगिक समाज में बदलना चाहते थे।

4.4 सर्वोदय का दर्शन

"सर्वोदय" का आदर्श है अद्वैत और उसकी नीति है समन्वय। मानवकृत विषमता का वह अंत करना चाहता है और प्राकृतिक विषमता को घटाना चाहता है। जीवमात्र के लिए समादर और प्रत्येक व्यक्ति के प्रति सहानुभूति ही सर्वोदय का मार्ग है। जीवमात्र के लिए सहानुभति का यह अपूत जब जीवन में प्रवाहित होता है, तब सर्वोदय की लता में सुरभिपूर्ण सुमन खिलते हैं। डार्विन ने कहा-"प्रकृति का नियम है, बड़ी मछली छोटी मछली को खाकर जीवित रहती है।" हक्सले ने कहा-जीओ और जीने दो।" सर्वोदय कहता है-"तुम दूसरों को जिलाने के लिए जीओ।" दूसरों को अपना बनाने के लिए प्रेम का विस्तार करना होगा, अहिंसा का विकास करना होगा और शोषण को समाप्त कर आज के सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन करना होगा।"

"सर्वोदय" ऐसे वर्गविहीन, जातिविहीन और शोषणमुक्त समाज की स्थापना करना चाहता है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति और समूह को अपने सर्वांगीण विकास का साधन और अवसर मिले। विनोबा कहते हैं-"जब हम सर्वोदय का विचार करते हैं, तब ऊँच-नीच भावशाली वर्णव्यवस्था दीवार की तरह समाने खड़ी हो जाती है।

उसे तोड़े बिना सर्वोदय स्थापित नहीं होगा। सर्वोदय को सफल बनाने के लिए जातिभेद मिटाना होगा और आर्थिक विषमता दूर करनी होगी। इनको मिटाने से ही सर्वोदय समाज बनेगा।"

"सर्वोदय ऐसी समाजरचना चाहता है जिमें वर्ण, वर्ग, धर्म, जाति, भाषा आदि के आधार पर किसी समुदाय का न तो संहार हो, न बहिष्कार हो। सर्वोदय की समाजरचना ऐसी होगी, जो सर्व के निर्माण और सर्व की शक्ति से सर्व के हित में चले, जिसमें कम या अधिक शारीरिक सामथ्र्य के लोगों को समाज का संरक्षण समान रूप से प्राप्त हो और सभी तुल्य पारिश्रमिक (इक्वीटेबल वेजेज) के हकदार माने जाएँ। विज्ञान और लोकतंत्र के इस युग में सर्व की क्रांति का ही मूल्य है और वही सारे विकास का मापदंड है। सर्व की क्रांति में पूँजी और बुद्धि में परस्पर संघर्ष की गुंजाइश नहीं है। वे समान स्तर पर परस्पर पूरक शक्तियाँ हैं। स्वभावत: सर्वोदय की समाजरचना में अंतिम व्यक्ति समाज की चिंता का सबसे पहले अधिकारी है।

सर्वोदय समाज की रचना व्यक्तिगत जीवन की शुद्धि पर ही हो सकती है। जो व्रत नियम व्यक्तिगत जीवन में "मुक्ति" के साधन हैं वे ही जब सामाजिक जीवन में भी व्यवहृत होंगे, तब सर्वोदय समाज बनेगा। विनोबा कहते हैं-"सर्वोदय की दृष्टि से जो समाज रचना होगी, उसका आरंभ अपने जीवन से करना होगा। निजी जीवन में असत्य, हिंसा, परिग्रह आदि हुआ तो सर्वोदय नहीं होगा, क्योंकि सर्वोदय समाज की विषमता को अहिंसा से ही मिटाना चाहता है। साम्यवादी का ध्येय भी विषमता मिटाना है, परंतु इस अच्छे साध्य के लिए वह चाहे जैसा साधन इस्तेमाल कर सकता है, परंतु सर्वोदय के लिए साधनशुद्धि भी आवश्यक है।"

सर्वोदय भारत का पुराना आदर्श है। हमारे ऋषियों ने गाया है-"सर्वेपि सुखिन: संतु"। सर्वोदय शब्द भी नया नहीं है। जैन मुनि समंतभद्र कहते हैं - **सर्वापदामंतकरं निरंतं सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव।** "सर्व खल्विदं ब्रह्म", "वसुधैव कुटुंबकं", अथवा "सोऽहम्" और "तत्त्वमसि" के हमारे पुरातन आदर्शों में "सर्वोदय" के सिद्धांत अंतर्निहित हैं।

4.5 सर्वोदय का उद्देश्य :

1. आत्म-संयम
2. शोषणहीन समाज
3. सर्वांगीण विकास
4. लोकनीति के आधार पर शासन
5. सत्ता का विकेन्द्रीकरण

गांधी कहते हैं किसमाजवाद का प्रारंभ पहले समाजवादी से होता है। अगर एक भी ऐसा समाजवादी हो, तो उसपर शून्य बढ़ाए जा सकते हैं। हर शून्य से उसकी कीमत दसगुना बढ़ जाएगी, लेकिन अगर पहला अंक शून्य हो, तो उसके आगे कितने ही शून्य बढ़ाए जाएँ, उसकी कीमत फिर भी शून्य ही रहेगी। इसलिए गांधी जी सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, अस्वाद, शरीरश्रम, निर्भयता, सर्वधर्मसमन्वय, अस्पृश्यता और स्वदेशी आदि व्रतों के पालन पर इतना जोर देते थे।

प्रमुख तत्व:

(1) पारिश्रमिक की समानता - जितना वेतन नाई को उतना ही वेतन वकील को। "अनटू दिस लास्ट" का यह तत्व सर्वोदय में पूर्णत: गृहीत है। साम्यवाद भी पारिश्रमिक में समानता चाहता है। यह तत्व दोनों में समान है।

(2) प्रतियोगिता का अभाव - प्रतियोगिता संघर्ष को जन्म देती है। साम्यवादी के लिए संघर्ष तो परम तत्व ही है। परंतु सर्वोदय संघर्ष को नहीं, सहकार को मानता है। संघर्ष में हिंसा है। सर्वोदय का सारा भवन ही अहिंसा की नींव पर खड़ा है।

(3) साधनशुद्धि - साम्यवाद साध्य की प्राप्ति के लिए साधनशुद्धि को आवश्यक नहीं मानता। सर्वोदय में साधनशुद्धि प्रमुख है। साध्य भी शुद्ध और साधन भी शुद्ध।

(4) आनुवंशिक संस्कारों से लाभ उठाने के लिए ट्रस्टीशिप की योजना - विनोबा कहते हैं किसंपत्ति की विषमता कृत्रिम व्यवस्था के कारण पैदा हुई है, ऐसा मानकर उसे छोड़ भी दें, तो मनुष्य की शारीरिक और बौद्धिक शक्ति की विषमता पूरी तरह दूर नहीं हो सकती। शिक्षण और नियमन से यह विषमता कुछ अंश तक कम की जा सकती। किंतु आदर्श की स्थिति में इस विषमता के सर्वथा अभाव की कल्पना नहीं की जा सकती। इसलिए शरीर, बुद्धि और संपत्ति इन तीनों में से जो जिसे प्राप्त हो, उसे यही समझना चाहिए कि वह सबके हित के लिए ही मिली है। यही ट्रस्टशिप का भाव है। अपनी शक्ति और संपत्ति का ट्रस्टी के नाते ही मनुष्यमात्र के हित के लिए प्रयोग करना चाहिए। ट्रस्टीशिप में अपरिग्रह की भावना निहित है। साम्यवाद में आनुवंशिकता के लिए कोई स्थान नहीं है। उसकी नीति तो अभिजात्य के संहार की रही है।

(5) विकेंद्रीकरण - सर्वोदय सत्ता और संपत्ति का विकेंद्रीकरण चाहता है जिससे शोषण और दमन से बचा जा सके। केंद्रीकृत औद्योगीकरण के इस युग में तो यह और भी आवश्यक हो गया है। विकेंद्रीकरण की यही प्रक्रिया जब सत्ता के विषय में लागू की जाती है, तब इसकी निष्पत्ति होती है शासनमुक्त समाज में। साम्यवादी की कल्पना में भी राजसत्ता तेज गर्मी में रखे हु घी की तरह अंत में पिघल जानेवाली है। परंतु उसके पहले उसे जमे हुए घी की तरह ही नहीं, बल्कि ट्रट्स्की के सिर पर मारे हुए हथौड़े की तरह, ठोस और मजबूत होना चाहिए। (ग्रामस्वराज्य)। परंतु गांधी जी ने आदि, मध्य और अंत तीनों स्थितियों में विकेंद्रीकरण और शासनमुक्तता की बात कही है। यही सर्वोदय का मार्ग है।

4.6 सर्वोदय की विशेषताएं

इस समय संसार में उत्पादन के साधनों के स्वामित्व की दो पद्धतियों प्रचलित हैं - निजी स्वामित्व (प्राइवेट ओनरशिप) और सरकार स्वामित्व (स्टेट ओनरशिप)। निजी स्वामित्व पूँजीवाद है, सरकार स्वामित्व साम्यवाद। पूँजीवाद में शोषण है, साम्यवाद में दमन। भारत की परंपरा, उसकी प्रतिभा और उसकी परिस्थिति, तीनों की माँग है कि वह राजनीतिक और आर्थिक संगठन की कोई तीसरी ही पद्धति विकसित करे, जिससे पूँजीवाद के "निजी अभिक्रम" और साम्यवाद के "सामूहिक हित" का लाभ तो मिल जाए, किंतु उनके दोषों से बचा जा सके। गांधी जी की "ट्रस्टीशिप" और "ग्रामस्वराज्य" की कल्पना और विनोबा की इस कल्पना पर आधारित "ग्रामदान-ग्राम स्वराज्य" की विस्तृत योजना में, दोनों के दोषों का परिहार और गुणों का उपयोग किया गया है। यहाँ स्वामित्व न निजी है, न सरकार का, बल्कि गाँव का है, जो स्वायत्त है। इस तरह सर्वोदय की यह क्रांति एक नई व्यवस्था संसार के सामने प्रस्तुत कर रही। सर्वोदय समाज अपने व्यक्तियों को इस तरह से प्रशिक्षित करता है कि व्यक्ति बडी से बडी कठिनाइयों में भी अपने साहस व धैर्य कसे त्यागता नहीं है। उसे यह सिखाया जाता है कि वह कैसे जिये तथा सामाजिक बुराइयों से कैसे बचे। इस तरह सर्वोदय समाज का व्यक्ति अनुशासित तथा संयमी होता है। यह समाज इस प्रकार की योजनाएं बनाता है जिससे प्रत्येक व्यक्ति को नौकरी मिल सके अथवा कोई ऐसा कार्य मिल सके जिससे उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। इस

समाज में प्रत्येक व्यक्ति को श्रम करना पडता है।सर्वोदय समाज पश्चिमीदेशों की तरह भौतिक संम्पन्नता और सुख के पीछे नहीं भागता है और न उसे प्राप्त करने की इच्छा ही प्रगट करता है, किन्तु यह इस बात का प्रयत्न करता है कि सर्वोदय समाज में रहने वाले व्यक्तियों जिनमें रोटी, कपडा, मकान, शिक्षा आदि है कि पूर्ति होती रहे। ये वे सामान्य आवश्यकताओं हैं जो प्रत्येक व्यक्ति की हैं और जिनकी पूर्ति होना आवश्यक है।

सर्वोदय की विचारधारा है कि सत्ता का विकेन्द्रकीकरण सभी क्षेत्रों में समान रूप में करना चाहिए क्योंकि दिल्ली का शासन भारत के प्रत्येंक गांव में नहीं पहंचु सकता। वे आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों में सत्ता का विकेन्द्रीकरण करने के पक्षधर है। इस समाज में किसी भी व्यक्ति का शोषण नही होगा क्योंकि इस समाज में रहने वाले व्यक्ति आत्म संयमी,धैर्यवान, अनुशासनप्रिय तथा भौतिक सुखों की प्राप्ति से दूर रहते है। इस समाज के व्यक्ति भौतिक सुखों के पीछे नही भागते, इसलिए इनके व्यक्तित्व में न तो संघर्ष है और ही शोषणता की प्रवृति ही । यह अपने पास उतनी ही वस्तुओं का संग्रह करते हैं, जितनी इनकी आवश्यकताएं है।गांधी का मत था कि भारत के गांवों का संचालन दिल्ली की सरकार नहीं कर सकती। गांव का शासन लोकनीति के आधार पर होना चाहिए क्योंकि लोकनीति गांव के कण कण में व्यापत है। लोकनीति बचपन से ही व्यक्ति को कुछ कार्य करने के लिए प्रेरित करती है और कुछ कार्य को करने से रोकती है। इस तरह व्यक्ति स्वत: अनुशासित बन जाता है। सर्वोदय का उदय किसी एक क्षेत्र में उन्नति करने का नहीहै बल्कि सभी क्षेत्रों में समानरूप से उन्नति करने का है। वह अगर व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कटिबद्व है तो व्यक्ति को सत्य, अहिंसा और प्रेम का पाठ पढाने के लिए भी दृढसंकल्प है।गांधी सर्वोदय समाज में सभी व्यक्तियों के श्रम करने पर बल देते है ताकि उनका आर्थिक विकास सुनिश्चत हो सके तथा उनमें निर्भरता का भाव समाप्त हो सके। गांधी नाई और वकील दोनों के श्रम की कीमत की महत्ता समान मानते है। वस्तुतः गांधी का मत्तव्य यह था कि शारीरिक एवं बौद्धिक श्रम में आर्थिक और सामाजिक विषमता स्थापित नहीं होनी चाहिए। गांधी जी भारतीय सन्दर्भ में कुटीर एवं लघु उद्योगों का समर्थन करते है। इसमें सभीव्यक्ति स्वावलम्बी बनकर अपना भौतिक एवं आध्यात्मिक उत्थान सुनिश्चत कर सकता है। गांधी जी सर्वोदय समाज की स्थापना के लिए पवित्र साधनों को स्वीकार करते है। यहां सर्वोदय के साधन के रूप में सत्य और अहिंसा पर आधारित सत्याग्रह, शुद्ध चित्त, भूदान, गा्रमदान आदि को स्वीकार किया गया है।

इस प्रकार सर्वोदय की अवधारणा में त्याग और हृदय परिवर्तन के तर्क द्वारा विचार परिवर्तन, शिक्षा के द्वारा संस्कार परिवर्तन एवं पुरुषार्थ के द्वारा स्थिति परिवर्तन के माध्यम से क्रांति करने पर जोर दिया जाता है। ऐसी क्रांति ही पूर्ण एवं स्थायी क्रांति होगी जो जीवन के समस्त पक्षों पर प्रभाव डाल सकती है। ऐसी क्रांति में प्रतिहिंसा के लिए कोई स्थान नहीं रहेगा, समाज में प्रेम और सहयोग का वातावरण तैयार होगा।

4.7 सारांश

सर्वोदय समाज गांधी के कल्पनाओ का समाज था, जिसके केन्द्र मे भारतीय ग्राम व्यवस्था थी। विनोवा के अनुसार सर्वोदय का अर्थ है - सर्वसेवा के माध्यम से समस्त प्राणियो की उन्नति। सर्वोदय के व्यवहारिक स्वरुप को हम बहुत हद तक विनोबा जी के भूदान आन्दोलन मे देख सकते है। दादा धर्माधिकारी के शब्दों में-

सुबहवाले को जितना, शामवाले को भी उतना ही-प्रथम व्यक्ति को जितना, अंतिम व्यक्ति को भी उतना ही, इसमें समानता और अद्वैत का वह तत्व समाया है, जिसपर सर्वोदय का विशाल प्रासाद खड़ा है।

4.8 बोध प्रश्न

प्रश्न 1: सर्वोदय को स्पष्ट कीजिये।

प्रश्न 2: सर्वोदय के दर्शन का वृहत वर्णन कीजिये।

प्रश्न 3: टिप्पणी कीजिये

1. सर्वोदय की विशेषता
2. सर्वोदय का उदेश्य

4.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

प्रभु, आर.के.एवं राव, यू.आर. (अनु. भवानी दत्त पंड्या) (1974). महात्मा गांधी के विचार. दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट.

मशरूबाला, किशोरलाल. (2001). गांधी विचार-दोहन. नई दिल्ली: सस्ता साहित्य मंडल.

सुमन, श्रीरामनाथ. (1967). सत्याग्रह : निष्क्रिय प्रतिरोध, असहयोग, सविनय एवं, सत्याग्रह बनारस: उत्तर प्रदेश गांधी स्मारक निधि.

आचार्य,नंद किशोर.(2004). सभ्यता का विकल्प. बीकानेर : वाग्देवी प्रकाशन.

सत्य और अहिंसा ही महात्मा गाँधी के सम्पूर्ण चिंतन एवं कर्म का केंद्र बिंदु है। *'ईश्वर सत्य है'* से *'सत्य ईश्वर है'*[1] की उनकी यात्रा दार्शनिक आधार लिए हुए है। लेकिन सत्य की कोई एक निश्चित और एकायामी धारणा स्वीकार नहीं की जा सकती है क्योंकि विभिन्न धर्मों एवं दर्शनों में सत्य को जानने, उसकी प्रक्रिया, अभिव्यक्ति में कई भिन्नताएँ हैं। गाँधीजी इसी विचार को स्पष्ट करते हुए सत्य के अनन्त रूपों को स्वीकार करते हैं और मानते हैं कि निरपेक्ष सत्य को जानना मनुष्य के वश की बात नहीं है। अत: मनुष्य के लिए यह आवश्यक है और यह कर्त्तव्य भी है कि सत्य जैसे उसे दिखाई दे, उसका अनुगमन करें एवं ऐसा करते हुए अहिंसा को अपनाएं-

"निरपेक्ष सत्य को जानना मनुष्य के वश की बात नहीं है। उसका कर्त्तव्य है कि सत्य जैसा उसे दिखाई दे, उसका अनुगमन करे और ऐसा करते समय शुद्धतम साधन अर्थात् अहिंसा को अपनाए।"[2]

अहिंसा के माध्यम से ही हम सत्य के विभिन्न रूपों के अस्तित्व को स्वीकार कर सकते हैं और विभिन्नताओं के बावजूद जीवन संचालित कर सकते हैं। साध्य एवं साधन के एकत्व के कारण सत्य का आग्रह एक प्रकार से अहिंसा का ही आग्रह हो जाता है। अहिंसा की इस अनुभूति का आधार अस्तित्व मात्र के एकत्व का विचार है। इस अहिंसा दृष्टि का सार *मम तथा ममेतर/ स्व और पर के बीच प्रेमपूर्ण एवं सृजनात्मक संबंधों* में निहीत है। इस *ममेतर/पर में केवल मनुष्य ही नहीं अपितु सम्पूर्ण सृष्टि* शामिल है। इस अहिंसा दृष्टि का व्यावहारिक आधार व्यक्ति द्वारा न केवल अन्य व्यक्ति अपितु सम्पूर्ण सृष्टि के साथ प्रेमपूर्ण

---

1 *यंग इंडिया*, 23/12/1931, पृ. 427-28

2 *हरिजन*, 24/11/1933, पृ. 6

संबंध स्थापित करना है। वस्तुत: गाँधीजी के जीवन का सार अहिंसा पर आधारित एक मानवीय सभ्यता का निर्माण करना है। 1931 में लंदन में भारतीय विद्यार्थियों की सभा में गाँधीजी द्वारा कहा गया निम्नलिखित कथन उनके समस्त विचारों को समझने का प्रस्थान बिंदु है-

> *"मुझे अपने देशवासियों की पीड़ाओं के निवारण से ज्यादा चिंता मानव-प्रकृति के बर्बरीकरण को रोकने की है।"*[3]

उपर्युक्त दार्शनिक प्रस्थापनाएँ ही गाँधीजी के समस्त चिंतन का विन्यास करती है। उनके लिए सत्य अहिंसा के रूप में अभिव्यक्त होता है। अत: उनके अनुसार एक आदर्श समाज-व्यवस्था और उसके प्रत्येक सदस्य के आचरण की कसौटी अपने सूक्ष्म एवं सकारात्मक अर्थों में अहिंसा हो जाती है। गाँधीजी एक ऐसी समाज व्यवस्था की कल्पना करते हैं जिसमें सत्ता के किसी भी रूप का केंद्रीकरण न हो क्योंकि यह हिंसक मनोवृत्ति है। उनकी समाज व्यवस्था में आदर्श इकाई स्वावलंबी मनुष्य व आत्मनिर्भर गाँव हैं।[4]

एक अहिंसक व्यक्ति के निर्माण के लिए वह एकादश व्रतों की धारणा प्रस्तुत करते हैं। इन एकादश व्रतों को निम्नानुसार बताया जा सकता है-

12. सत्य
13. अहिंसा
14. ब्रह्मचर्य
15. अस्तेय
16. अपरिग्रह
17. शरीर-श्रम
18. अस्वाद
19. अभय
20. सर्वधर्म समानत्व
21. स्वदेशी
22. स्पर्शभावना

ये व्रत व्यक्तिगत गुण ही नहीं बल्कि सामाजिक गुण भी है। इनका जीवन में प्रयोग न केवल व्यक्तिगत रूपान्तरण का अपितु सामाजिक रूपान्तरण का भी माध्यम बन सकता है। स्वयं गाँधीजी का जीवन इस बात का प्रमाण है कि इनमें से किसी भी एक व्रत का स्वीकार स्वमेव अन्य व्रतों को समाहित करता है। अहिंसा का उनका आग्रह उन्हें न केवल एक अहिंसक व्यक्तित्व बनाता है अपितु अहिंसा को सामाजिक क्षेत्र में लागू करने को भी प्रेरित करता है।

---

3 *यंग इंडिया*, 29/10/1931, पृ. 325

4 देखें, आचार्य,नंदकिशोर, 'नयी तालीम : अहिंसक व्यक्ति व समाज रचना का माध्यम', *बुनियादी तालीम* (सं. अरविंदाक्षन, ए., कुमार, मिथिलेश) राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ. 122-123

ज्ञान शांति मैत्री

यह स्पष्ट है कि गाँधीजी अपने समय के समाज के साथ एक व्यापक सत्याग्रह करते है। वह शोषण के विभिन्न रूपों की आलोचना करते हैं। एक स्वावलंबी मनुष्य का निर्माण करने हेतु श्रमाधारित आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक व्यवस्था बनाने का प्रयास करते हैं। वह ***सात सामाजिक पातकों (सोशल सिन्स)*** की बात करते हैं:[5]

1. *सिद्धांतहीन राजनीति*
2. *श्रमहीन संपत्ति*
3. *विवेकहीन सुख*
4. *चरित्रहीन ज्ञान*
5. *नीतिहीन व्यापार*
6. *दयाहीन विज्ञान*
7. *त्यागहीन पूजा*

इसे उनकी ***सामाजिक आचार संहिता*** भी कहा जा सकता है। गाँधी विचार के महत्वपूर्ण विद्वान प्रो. रामजी सिंह ने इन्हें ईसा मसीह के दस आदेशों के समान बताया है। [6]

ज्ञान शांति मैत्री

---

5 *सम्पूर्ण गाँधी वांङमय, खंड – 28*, पृ. 381

6 सिंह, प्रो.रामजी, *गाँधीजी और मानवता का भविष्य*, कामनवेल्थ पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2000, पृ. 148

खंड – 3
गांधीय समाज कार्य – 2

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई -1 साम्प्रदायिक सदभाव एवं गांधी

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 साम्प्रादायिकता: अर्थ एवं संदर्भ

1.3 गांधी जी एवं साप्रदायिक सदभाव

1.4 साम्प्रदायिक सदभाव के मार्ग में आनेवाली ऐतिहासिक एवं वर्तमान चुनौतियाँ

1.5 सांप्रदायिक सदभाव में समाज कार्य की भूमिका

1.6 सारांश

1.7 बोध प्रश्न

1.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको निम्न बिन्दुओं में सक्षम बनाना है –

- साम्प्रादायिकताकी अवधारणा को समझ पाने में।
- साम्प्रादायिकता के अर्थ एवं विभिन्न संदर्भों के बारे में समझ विकसित कर पाने में ।
- समाज कार्य द्वारा साम्प्रादायिकता को समाप्त करनेकी गांधीय प्रविधि का वर्णन करने में।

1.2 प्रस्तावना

मानवीय दुनिया विविधता से भरी है। यह विविधता भौतिक, जैविक एवं सामाजिक तीनों स्तर पर पायी जाती है। भाषा, खान-पान, वेश-भूषा, जीवन मूल्य के साथ-साथ धर्म एवं दर्शन में यह विविधता पायी जाती है। सामाजिक विविधता को सामाजिक सम्पन्नता का आधार माना जाता है। स्वामी विवेकानंद जी ने कहा था कि दुनिया में अनेक रंग होगे तभी दुनिया अच्छी लगेगी यादि दुनिया में सिर्फ एक रंग हो तो दुनिया अच्छी नहीं लगेगी जैसे तस्वीर में अनेक रंग होने के कारण ही तस्वीर अच्छी लगती है यदि तस्वीर में एक रंग हो तो तस्वीर अच्छी नहीं लगती। विवेकानंदकी यह उक्ति धार्मिक विविधता के समर्थन में मैं कही गई थी। धार्मिक विविधता को विषमता का दर्जा अपने-अपने दृष्टि से तब अलग-अलग लोग देते है तो वह साम्प्रदायिकता का हिस्सा बन जाता है। हिन्दू अपने धर्म को श्रेष्ठ बनाने के लिए, मुस्लिम अपने इस्लाम धर्म को श्रेष्ठ बनाने के लिए तथा ईसाई अपने धर्म को श्रेष्ठ बनानेके लिए दूसरे की तौहीनी एवं उपेक्षा करते हैं तो साम्प्रदायिकता की स्थिति पैदा होती है।

1.3 साम्प्रदायिकता का अर्थ एवं संदर्भ

साम्प्रदायिकता का सामान्य अर्थ धार्मिक रूप से एक सम्प्रदाय का दूसरे सम्प्रदाय से खुद को पृथक समझने के साथ-साथ खुद के हितों को भी विरोधी मानते हुए दुसरे सम्प्रदाय के हितों को नुकसान पहुँचाने की भावना रखना ही होता है। इस तरह से साम्प्रदायिकता एक ऐसी विचारधारा है। जो समाज में पृथकता की भावना को बढ़ावा देती है। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री प. नेहरू ने साम्प्रदायिकता के सम्बन्ध में कहा था कि यह बात कभी नही भूलना चाहिए कि भारत में साम्प्रदायिकता एक परवर्ती घटना है, जिसका जन्म हमारी आँखों के सामने ही हुआ है। कहा जा सकता है कि भारत में साम्प्रदायिकता ब्रिटीश काल में पैदा हुई जो पारस्पादिक हितों के भिन्नता से पैदा की गई और जिसका अंजाम विभाजन के समय हिंसात्मक संघर्ष के रूप में हुआ।

साम्प्रदायिक विकास की अवस्था:- साम्प्रदायिकता कि प्रथम अवस्था में एक खास समाज अथवा समुदाय को संस्कृति एवं परम्परा के आधार पर एकता की भावना महसूस होती है। साम्प्रदायिकता की द्वितीय अवस्था में समुदाय को अपनी संस्कृति एवं परम्परा दूसरे समुदाय के संस्कृति, परम्परा एवं इतिहास से भिन्न होने का पता चलता है। साम्प्रदायिकता के तृतीय सोपानमें एक समुदाय को दूसरे समुदाय से अपना हित परस्पर विरोधी पता चलता है। साम्प्रदायिकता के अंतिम एवं चतुर्थ सोपान में दोनों समुदाय आमने-सामने आकर साम्प्रदायिक हिंसा में रत हो जाते है। भारत में साम्प्रदायिकता को दूसरे सोपान से चौथा सोपान तक पहुँचाने में ब्रिटिश हुकुमत के साथ-साथ कुछ भारतीय सत्ता लोलुप थे।

साम्प्रदायिकताके मूल तत्व

1. साम्प्रदायिकता के मूल में धर्म को सर्वोपरि कारक माना जाता है।
2. साम्प्रदायिकता सामाजिक विविधता को अस्वीकृति एवं विषमता को स्वीकृति देने पर पैदा होती है।
3. साम्प्रदायिकता का राजनीतिकरण हिंसा को बढ़ावा देता है तथा सामाजिक विषमता को और मजबूत करना है।
4. साम्प्रदायिकता का मूल आधार धार्मिक मूल्य नही अपितु धार्मिक प्रतीक बनते हैं।

भारत में साम्प्रदायिकता का इतिहास :- भारत में मुगलों के आने के बाद भारत में इस्लाम धर्म का विस्तार हुआ। हिन्दु धर्म के साथ-साथ इस्लाम धर्म भी भारत में बढ़ा। अधिकांश रूप में इस्लाम धर्म का प्रचार धर्मांतरण के नाम पर कराया गया। भारत में अंग्रेज आये उन्होंने अपना साम्राज्य एवं उपनिवेश स्थापित करने के लिए भारतीय सामाजिक संरचना को भी समझने का प्रयास किया। 1857 से 1885 के बीच भारत में राष्ट्रवादी भावना पैदा हो गई थी। 1857 में प्रथम स्वतंत्रता संग्राम तथा 1885 में कांग्रेस की स्थापना की गई। अंग्रेजों को समझ में आ गया कि भारत में शासन करना है तो फूट डालोऔर राज्य करो की नीति को आगे बढ़ाना होगा। सबसे पहले भारत के क्षेत्रीय राज्याओं को आपस में लड़ाया और उन्हें कमजोर करके अपना शासन कायम किया। अब भारत की राष्ट्रीय एकता की भावना को कमजोर करके देश पर शासन करनेकी बात थी। उन लोगों ने मुस्लिम एवं हिन्दु समुदाय को अपना लक्ष्य बनाया और अधिप्रचार करना प्रारंभ किया कि मुस्लिम समुदाय अल्पसंख्यक है और उनका हित हिन्दु हितों से विपरीत है। इसको व्यावहारिक रूप प्रदान करने हेतु1905 में बंगाल का हिन्दु-मुस्लिम आधार पर विभाजन किया गया। 1906 में मुस्लिम लीग की स्थापना की गई। 1909 में मार्ले-मिन्टो सुधार के नाम पर 'पृथक मतदाता मण्डल' बनाया गया। फिर धीरे-धीरे भारत में मुस्लिम समुदाय राष्ट्रीय आंदोलन के धारा के विमुख होकर स्वयं के हितों को घोषित एवं संरक्षित

करने में लग गई। मुस्लीम लीगने राष्ट्रीय कांग्रेस के विरोध में निरंतर आग उगलना प्रारंभ किया। मुस्लीम लीग राष्ट्रीय कांग्रेस को हिन्दुवादी संगठन बताती थी जो हिन्दु हितों को पोषित करती है। इसके बाद राष्ट्रीय कांग्रेस से मुस्लिम नेता धीरे-धीरे मुस्लीम लीग में चले गये। अंत: जब स्वतंत्रता की घड़ी आई तो राष्ट्रीय कांग्रेस एवं मुस्लीम लीग के नेतृत्व में साम्प्रदायिकता के आधार पर पाकिस्तान एवं भारत राज्य का गठन किया गया। भारत आज 70 वर्ष की आजादी की यात्रा पूराकर चुका है पर आज भी साम्प्रदायिकता के नाम पर देश का कोई न कोई कोना जब उठता है।

साम्प्रदायिकता बनाम साम्प्रदायिक सदभाव

साम्प्रदायिकता पारस्परिक हितों के भिन्नता से पैदा होती है तो इसका अवनयन साम्प्रदायिक सदभावना के बढ़ोत्तरी से ही होता है। साम्प्रदायिक सदभाव से तात्पर्य धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक स्तर पर परस्पर विपरीत हितों के बावजूद भी एक-दूसरे के विचारों विश्वास एवं आस्था के प्रति सम्मान का भाव रखना ही साम्प्रदायिक सदभाव कहलाता है। यह साम्प्रदायिक सदभावना आत्मीयता के उत्स से ही निकला सकती है। विविधता संसार में स्वीकार्य है। इसकी बड़ी महत्ता है। विविधता को धार्मिक-सामाजिक,सांस्कृतिक स्तर पर भी स्वीकार्य करना होगा। जब धार्मिक एवं सांस्कृतिक सामुदायिक विविधता को सम्मान के दृष्टि से परस्पर सम्प्रदाय देखेगें तो यही साम्प्रदायिक सदभाव कहलाता है। यही साम्प्रदायिक सदभाव भारतीय समाज को मजबूत एवं समन्वयकारी बना सकता है।

1.4 गांधी जी एवं साप्रदायिक सदभाव

महात्मा गांधी साम्प्रदायिक सदभाव के अग्रदूत माने जाते थे। उन्होंने साम्प्रदायिक सदभावनाके हितार्थ अपना प्राण भी यौछावर कर दिया। गांधीजी अपने हिन्द स्वराज नामक पुस्तक में हिन्दू एवं मुस्लिम दोनों समुदायों के हितों को समान रखा ही है साथ-साथ यह भी इस पुस्तक में बताया कि किस प्रकार हिन्दु-मुस्लिम परस्पर विरोधी हितों के बावजूद भी आपस में समन्वय बनाकर रह सकते हैं वे हिन्दु एवं मुस्लिम समुदाय को अपनी दो आँखें कहते थे। उनका मानना था कि कंकड़ धड़े को फोड़ने में तब सफल होता है जब घड़ा कमजोर होता है। इसलिए भारत के सभी सम्प्रदाय के लोगों को आपस में एक साथ संगठित होने की आवश्यकता है ताकि कोई भारत को मात न दे सके।

हिन्द स्वराज में साम्प्रदायिक सदभाव :- महात्मा गांधी ने 1909 में अपनी पुस्तक 'हिंद स्वराज' लिखी थी। इस पुस्तक में उन्होंने अध्याय 9 एवं 10 में पाठक से कहलवाया है कि भारत में मुसलमान एवं हिन्दू में कट्टर बैर एवं विषमता है। मियां और महादेव की नहीं बनती है। मुसलमान हिन्दु को मुर्ति पृथक मानता है। हिन्दु मूर्ति को पूजता है तो मुसलमान मूर्ति को तोड़ता है। हिन्दु गाय को पूजता है तो मुसलमान गाय की हत्या करता है। इस प्रकार पग-पग पर हिन्दु एवं मुस्लिमों में विरोध है। इसे कैसे खत्म किया जा सकता है? गांधी जी इस परस्पर विरोधको उसी रूप में अपनी पुस्तक हिन्द स्वराज में पाठक के मुख्य से कहलवाया कि जैसा उस समय अंग्रेजों ने अधिप्रचार कर के इसी मत का विस्तार रहे थे। पर गांधी जी ने आगे साम्प्रदायिक सदभाव के दृष्टि से हिन्द स्वराज में ही हिन्दु-मुस्लिम एकता को स्पष्ट किया है। और बताया कि सहिष्णुता के साथ दोनों समुदाय एक साथ रह सकते हैं।

राष्ट्रीय आंदोलन में साम्प्रदायिक सदभाव :- महात्मा गांधी ने अपने पुस्तक हिन्द स्वराज में बड़ी अच्छी बात कही थी कि दुनिया के किसी भी हिस्से में एक राष्ट्र का अर्थ एक धर्म नहीं किया गया। अगर हिन्दु यह

माने की हिन्दुस्तान में केवल हिन्दु रहेगे और मुसलमान सोचे कि केवल मुस्लिम रहेंगे तो यह एकदम सपना है। भारत में हिन्दु, पारसी, सिख, ईसाई, मुसलमान सभी रहते हैं तथा सभी लोग भारत को अपनी मातृभूमि मान चुके है इसलिए आवश्यकता है कि ये सभी लोग आपस में मिल-जुल कर रहे। गांधीजी ने तो साम्प्रदायिक सदभाव के संदर्भ में कहा कि मैं यह नही कहता कि हिन्दू और मुसलमान कभी झगडेगें ही नही। दो भाई भी अगर साथ होते है तो उनमें तकरार होती है। 1917 में गांधी जी भारतीय राजनीति में प्रवेश किये। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद ब्रिटिश सरकार भारतवासियों से दो वादा पूरा करने की बात कही थी। प्रथम यह कि युद्धके उपरांत स्वरूप भारत को अधिकतम स्वायत्ता दी जायेगी। द्वितीय यह कि तुर्की के खलीफा का पद बरकरार रखा जायेगा जो दुनिया के मुसलमानों के लिए पूजनीय पद था। युद्ध में भारतीय जनमानसके अपना समर्थन दिया। युद्धके समाप्ति के पश्चात ब्रिटिश शासन अपने किये गये वादे से मुकर गया। अधिकतम स्वायत्ता के जगह रोलेर एक्ट जैसा दमनकारी कानून लाया गया वहीं तुर्की के खलीफा को अपदस्त करके वहाँ लोकतंत्र की बहाली करने की बात की गई। भारत में इसके खिलाफ गांधीजी ने मुस्लिमों द्वारा चलाये जाने वाले खिलाफत आंदोलन एवं असहयोग आंदोलन का एक साथ नेतृत्व किया। इसी समय बाल गंगाधर टिलक की मौत हो गई उनके अर्थी को खिलाफत आंदोलन के प्रमुख मुस्लिम नेता मौलाना शौक अली के कंधा दिया था। इस तरह से हिन्दू–मुस्लिम एकता एवं सदभाव का यह रूप भारत में स्वतंत्रता आंदोलन के समय देखने को मिला। जब देश का विभाजन हुआ एवं स्वतंत्रता प्राप्ति हुई उस समय भारत के पूरे नेता दिल्ली में थे जबकि महात्मा गांधी पश्चिम बंगाल के नोवाखली में हिन्दु–मुस्लिम दंगा को शांत करने में रत थे । गांधी के इस प्रयास को देखकर माउंटवेटन ने कहा कि जिस कार्य को पचास हजार सेना नही कर सकती थी उस कार्य को यह पचहत्तर साल का एक बूढ़ा व्यक्ति ने कर दिखाया इस तरह गांधीजी स्वतंत्रता संग्राम के समय हमेशा साम्प्रदायिक सदभाव के लिए प्रयास करते रहे।

1.5 साम्प्रदायिक सदभाव के मार्ग में आनेवाली ऐतिहासिक एवं वर्तमान चुनौतियाँ

भारत अनेक पंथों, संस्कृतियों, दर्शन का मिला जुला देश है। जो भी जातियाँ आई भारती संस्कृति में लय हो गई। मुस्लिम समुदाय भारतीय संस्कृति में पूर्णत: लय नही हो पाया इसके पीछे मुस्लिम एवं हिंदु दोनों समुदाय जिम्मेदार थे। ब्रिटिश जब आये तो उन्होंने हिन्दु एवं मुस्लिमों के बीच के खाई को अपने हित के लिए और चौड़ा साम्प्रदायिक भावना भड़काकर किया। इस प्रकार अनेक कारक जिम्मेदार है। जिनके कारण भारत में साम्प्रदायिक सदभाव खराब हुए है।

- महाराष्ट्र में गणेश पूजन एवं बनारस में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की जब स्थापना हुई तो कट्टर पंथी मुसलमानों एवं अंग्रेजों द्वारा हिन्दुत्व को बढ़ावा के नाम पर अधिप्रचार किया गया जो राष्ट्रीय आंदोलन के समय हिन्दु –मुस्लिम के बीच खाई पैदा किया।
- गांधी के 'रामराज्य' को आदर्श समाज की संकल्पना के जगह हिन्दुत्व के बढ़ावा से जोड़कर देखा गया जिसके कारण गांधी जी को मुस्लिम समुदाय विरोधी माना गया ।
- अंग्रेजों ने हिन्दू-मुस्लिम की कमजोरियों को जान लिया इसके बाद अपने फायदे के लिए दोनों समुदायों में फूट डालने का भरपूर प्रयास किया जिसके कारण मुस्लिम-हिन्दू समुदाय एक-दुसरे से

अलग हो गये और प्रतिफल स्वरूप भारत का विभाजन भारत, पाकिस्तान एवं बांग्लादेश जैसे तीन मुल्कों के रूप में हुआ।

- आज भी राजनीतिक शक्तियाँ राष्ट्रके अंदर की और बाहर की रूप ने फायदे के लिए भारत में निरंतर साम्प्रदायिक दुर्भावना फैलाने की कोशिश करती है।

1.6 सांप्रदायिक सदभाव में समाजकार्य की भूमिका

साम्प्रदायिक भावना मानवता के लिए अहितकारी है वही साम्प्रदायिक सदभाव मानवता के लिए हितकारी है। गांधीजी साम्प्रदायिक सदभाव को भारतीय समाज के लिए आवश्यक मानते थे। समाज कार्य के अंतर्गत व्यक्ति, समूह एवं समुदाय की समस्या का निदान एवं उपचार किया जाता है। धर्म व्यक्ति के जीवनमें अहम भूमिका निभाता है। व्यक्ति का दृष्टिकोण धर्म के प्रति व्यापक एवं सहिष्णुण होता है तो वह समाज में शांति स्थापित करने में सहयोग प्रदान करता है। समाज कार्यकर्ता को धर्म के मूल सिद्धांत का ज्ञान रखना चाहिए। उसकों इस बात का ज्ञान रखना चाहिए कि धर्म का मूल कोड सत्य,अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, दया, परोपकार एवं वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना होती है। सभी धर्म इन्हीं मूल्यों को अपने में समाहित किये हुए होते है। इसलिए व्यावसायिक समाज कार्यकर्त्ता को इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि वह धर्म के किसी सम्प्रदाय जाति, वर्ग से जोड़कर न देखें बल्कि समाज के हितों को देखते हुए सम्पूर्ण कार्य करें। व्यावसायिक समाज कार्यकर्ता को अपने धार्मिक मूल्यों एवं रीति-रिवाजों को कभी भी किसी दूसरे सम्प्रदाय के व्यक्ति, समूह अथवा समुदाय पर नही थोपना चाहिए। समाजकार्यकर्ता को दुसरे समुदायके धार्मिक मूल्यों का भरपूर सम्मान करना चाहिए। धर्म के नाम पर होने वाले साम्प्रदायिक हिंसा के समय समाज कार्यकर्ता को मानवता को सबसे बड़ा धर्म मानकर हिंसा ग्रस्त लोगों की सेवा करनी चाहिए वही धर्म के नाम पर जहाँ भी मानवाधिकारों का हनन हो रहा है उसके सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक विरोध भी करना होगा।

1.7 सारांश

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि साम्प्रदायिकता समाज के संकीर्ण मानसिकता के खिड़की से जन्म लेनेवाला विचार एवं व्यवहार है। भारत में साम्प्रदायिकता की जड़ें ब्रिटिश साम्राज्य के समय अंकुरित हुई जो अंग्रेजों ने अपने शासन एवं फायदे के लिए किया। यह भी सही है कि भारत में साम्प्रदायिकता की उर्वर भूमि तैयार थी जहाँ अंग्रेजों ने अपने फायदे के लिए साम्प्रदायिकता की फसल लगाई। मुसलमान भारत में आये और भारत में मुस्लिम धर्म को जो लोगों ने अपनाया उनको कभी हिन्दुओंने नही अपनाया और इस्लाम को सदैव अबुझ ही समझा। इस स्थिति को अंग्रेजों ने देखा तथा 1905 में बंगाल विभाजन, 1906 में मुस्लिम लीग की स्थापना तथा 1947 में विभाजन के द्वारा भारतीय उपमहाद्वीप पर साम्प्रदायिकता की गहरी जड़ों वाली फसल बो दिया। जिसके कारण आज भारतीय हिन्दू पाकिस्तान को आंतकवादी मुल्क समझते है और अपनी खुन्नस भारतीय मुसलमानों पर निकालते है। ऐसे में महात्मा गांधी की कौमी एकता सम्बन्धी विचार ही साम्प्रदायिक सदभाव को आगे बढ़ा सकते है तथा भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र कायम कर सकता है। समाज कार्यकर्ता को इस विचार को समझना एवं पूरे दिल से धारण करके मानवतावादी दृष्टि रखते हुए सर्वधर्म समभाव को कायम करने की आवश्यकता है।

ज्ञान शांति मैत्री

1.8बोध प्रश्न

प्रश्न 1: साम्प्रदायिकता को स्पष्ट कीजिये।

प्रश्न 2: साम्प्रदायिक सदभाव के गांधीय प्रविधि का वृहत वर्णन कीजिये।

प्रश्न 3: टिप्पणी कीजिये

2. साम्प्रदायिक सदभाव एवं समाजकार्य
2. साम्प्रदायिक सदभाव की चुनौतियाँ

1.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- प्रभु, आर.के.एवं राव, यू.आर. (अनु. भवानी दत्त पंड्या) (1974). महात्मा गांधी के विचार. दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट.
- मशरूबाला, किशोरलाल. (2001). गांधी विचार-दोहन. नई दिल्ली: सस्ता साहित्य मंडल.
- आचार्य,नंद किशोर.(2004). सभ्यता का विकल्प. बीकानेर : वाग्देवी प्रकाशन.

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई 2 ट्रस्टीशिप

इकाई रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 तार्किकता

2.3 चतुर्यामी प्रक्रिया

2.4 ट्रस्टीशिप सूत्र

2.5 आलोचना

2.6 सारांश

2.7 बोध प्रश्न

2.7 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आप –

- गांधीजी द्वारा प्रस्तुत ट्रस्टीशिप अवधारण को समझ सकेंगे।
- उसकी तार्किकता को रेखांकित कर सकेंगे।
- ट्रस्टीशिप सूत्र को व्याख्यायित कर सकेंगे।
- उसकी आलोचना एवं प्रत्युत्तर को प्रस्तुत कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

अपने श्रम-पूँजी संबंध के बारे में विचार प्रस्तुत करते हुए गाँधीजी दोनों के बीच सहयोग एवं पारस्परिकता की बात कहते हैं। एक आदर्श स्थिति के रूप में श्रम-पूँजी को एक-दूसरे का पर्याय बनाते हैं परंतु वास्तविक स्थिति में ऐसा नहीं होने पर उस आदर्श की ओर जाने हेतु उपाय भी प्रस्तावित करते हैं। ठीक उसी प्रकार स्वामित्व की समस्या पर विचार करते हुए ट्रस्टीशिप का सिद्धांत प्रस्तुत करते हैं। यह सिद्धांत उनके जीवन दर्शन से प्रसूत हैं जिसमें पूर्वी एवं पश्चिमी सांस्कृतिक विरासत है जो आध्यात्मिक एवं धार्मिक तथा अपनी प्रकृति में नैतिक एवं सामाजिक है।अपने गहन एवं विस्तृत अध्ययन से गाँधीजी ने स्वामित्व की समस्या का हल भगवत गीता और उपनिषद के जरिए प्राप्त किया।

गाँधीजी का तात्कालिक समय सामाजिक अन्याय, आर्थिक असमानता और आर्थिक संकेन्द्रण का था। यह समस्याएँ काफी हद तक ही पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था का परिणाम थी। इस व्यवस्था के परिवर्तन हेतु दो दृष्टिकोण प्रचलित थे-

एक - क्रांति के जरिए समूची व्यवस्था को बदलने का विचार करता था; इसके लिए हिंसा का रास्ता भी वरेण्य था।

दूसरा - इसमें अभिजात्य वर्ग यथास्थिति बनाए रखना चाहता था जो उनकी आर्थिक व राजनीतिक स्थिति को मजबूत करती थी।

यह दोनों दृष्टियाँ अतिरेकपूर्ण थी। गाँधीजी ने इस संदर्भ में एक नवीन दृष्टि **''ट्रस्टीशिप''** प्रदान की। गाँधीजी ने व्यक्ति और समाज के निरंतर विकसनशील सिद्धांत को स्वीकार किया। ट्रस्टीशिप का सिद्धांत सत्य–अहिंसा को आधार बनाकर स्वामित्व की पुनर्रचना कर समाज में महत्वपूर्ण परिवर्तन को जन्म देता है। गाँधीजी ने स्वामित्व के विचार को भ्रामक एवं हिंसापूर्ण बताते हुए उसमें सुधार किया। तात्कालिक स्वामित्व विचार व्यक्ति को व्यक्ति और प्रकृति पर विशेषाधिकार प्रदान करते हुए मानवीय कानून और सामाजिक कायदों को अतिक्रमित करता है। यह अवधारणा समाज में शोषण, स्वार्थ, परिग्रह को आश्रय देते हुए संघर्ष को बढ़ाती है। अतएव उन्होंने इसे अहिंसक संघर्ष में तब्दील किया। उनका न्यासिता का सिद्धांत एक विकसनशील सिद्धांत रहा है।

2.2 तार्किकता

गाँधीजी द्वारा प्रस्तुत न्यासिता सिद्धांत की तार्किकता को हम निम्नानुसार बिन्दुओं के माध्यम से अभिव्यक्त कर सकते हैं-

1. *गाँधीजी न्यासिता को ''यज्ञ''* की अवधारणा के साथ जोड़ते हैं। उनके लिए यज्ञ का अर्थ है:

''कोई ऐसा कृत्य जो फल की कामना के बगैर दूसरों के कल्याण के लिए किया गया हो, यह कृत्य लौकिक या आध्यात्मिक किसी भी प्रकार का हो सकता है... इसके अलावा मौलिक त्याग कोई ऐसा कृत्य होना चाहिए जो अधिकतम व्यापक क्षेत्र के अधिकतम जीवों का अधिकतम कल्याण करने वाला हो और जिसे अधिकतम स्त्री–पुरुष कम-से-कम कष्ट उठाकर कर सकते हों। तदनुसार किसी तथाकथित ऊँचे उद्देश्य के लिए किया गया कृत्य यदि एक जीव को भी हानि पहुँचाने के उद्देश्य से किया गया हो तो वह यज्ञ नहीं कहला सकता, महायज्ञ तो और भी नहीं।'' (फ्राम यर्वदा मंदिर : आश्रम ऑब्जर्वेसेज)

यह उद्धरण इस बात की ओर इंगित करता है कि व्यक्ति स्वार्थ से ऊपर उठकर अन्य लोगों के हित में जब कार्य करता है तभी उसका कार्य त्यागपूर्ण होता है। स्मरण रखना होगा कि ''सर्वोदय''के सिद्धांत के अनुसार सबकी भलाई में ही स्वयं की भलाई निहित है। परंतु सबकी भलाई स्वयंमेव नहीं हो सकती। इसका आधार हर व्यक्ति द्वारा अपने त्यागपूर्ण कर्म में है। न्यासिता का आधार भी यही त्याग है।

2. गाँधीजी न्यासिता के आधार के रूप में *''ईशोपनिषद''*के मंत्र ''ईशावास्यमिदम सर्वम्'' की व्याख्या को प्रस्तुत करते हैं। वह कहते हैं-

''तेन त्यक्तेन भुंजीधा: ''- अपनी संपत्ति का त्याग करके तू उसे भोग। इसको जरा विस्तार से समझा कर कहूँ तो यह कहूँगा: *''तू करोड़ों खुशी से कमा। लेकिन समझ ले कि तेरा धन सिर्फ तेरा नहीं, सारी दुनिया का है, इसलिए जितनी तेरी सच्ची जरूरतें हों, उतनी पूरी करने के बाद जो बचे उसका उपयोग तू समाज के लिए कर।''* (*हरिजन*, 01/02/1942, पृ. 20)

गाँधीजी इस मंत्र द्वारा एक तरह के ''अनासक्त''स्वामित्व की अवधारणा लाते हैं।प्रो. नंदकिशोर आचार्य के अनुसार यज्ञ की अवधारणा और *''ईशावास्यमिदम सर्वम्''* के माध्यम से गाँधीजी स्वामित्व के सवाल का एक ऐसा समाधान प्रस्तुत करते हैं जो केवल व्यक्तिगत सदाशयता पर निर्भर नहीं रहता बल्कि

एक संस्थागत परिवर्तन बन जाता है। (आचार्य: 58) यह ''अनासक्त''स्वामित्व अपनी बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के पश्चात समाज के कल्याण हेतु तत्परता है।

3. गाँधीजी न्यासिता के आधार के रूप में ''अपरिग्रह एवं अस्तेय''के धार्मिक सिद्धांत को अर्थशास्त्रीय आयाम प्रदान करते हैं और उसे एक अहिंसक अर्थव्यवस्था की बुनियाद बनाते हैं। वह अपनी आवश्यकता से अधिक संग्रह करने को अपरिग्रह एवं अस्तेय में शामिल करते हुए इसे चोरी की संज्ञा देते हैं। वह इसे प्रकृति का बुनियादी नियम भी कहते हैं-

''अगर मैं कोई ऐसी चीज लेकर अपने पास रख लेता हूँ जिसकी मुझे तत्काल आवश्यकता नहीं है तो मैं किसी अन्य व्यक्ति से वह चीज चुरा रहा हूँ। प्रकृति का यह मौलिक नियम है, जिसका कोई अपवाद नहीं है कि वह हमारी दैनंदिनी आवश्यकताओं को पूर्ति के लिए जितना जरूरी है, ठीक उतना ही उत्पादन करती है; और यदि प्रत्येक व्यक्ति उसमें से सिर्फ उतना ही हिस्सा ही ले जितने की उसे जरूरत है और फालतू बिल्कुल न ले तो दुनिया में से कंगाली उठ जाएगी और कोई आदमी भूख से नहीं मरेगा।'' (स्पीचेज एंड राईटिंग्स ऑफ महात्मा गांधी: पृ. 377*)*

यहाँ यह स्पष्ट है कि यदि प्रकृति का यह नियम है कि वह हमारी आवश्यकता अनुसार उत्पादन करती है जिससे जरूरतें पूरी हो सकें तो एक वैज्ञानिक दृष्टि यह हो सकती है कि इसी नियम का पालन करते हुए हम सामाजिक कायदों का संचालन करें।

4. गाँधीजी सामाजिक न्याय को न्यासिता विचार की स्थापना में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करते हैं। एक राष्ट्र में उपलब्ध समस्त संसाधनों पर राष्ट्र के समस्त नागरिकों का समान अधिकार होना चाहिए। किसी एक व्यक्ति या समूह को यह अधिकार नहीं है कि वह इन संसाधनों का उपयोग- *या कहना चाहिए शोषण*- अपने हित एवं लाभ वृद्धि हेतु करें फिर चाहें इससे व्यापक समाज हित का नुकसान हो। यह स्थिति किसी भी तरह से उचित नहीं कही जा सकती है। वस्तुत: ऐसी दृष्टि नागरिकों के बीच असमानता का स्वीकार है और मूलत: सामाजिक न्याय की विरोधी है। सामाजिक न्याय व्यक्तियों के बीच हर तरह की समानता का स्वीकार है। इसमें हर व्यक्ति को अवसर की समानता, मानवीय गरिमा, अपने सर्वांगीण विकास हेतु उचित वातावरण निर्माण, लाभ में समान भागीदारी इत्यादि बातें शामिल है। हर व्यक्ति को अपनी आजीविका कमाने और काम के अवसर का समान अधिकार सामाजिक न्याय की पूर्व शर्त कही जा सकती है। वह कहते हैं-

''प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन-निर्वाह के लिए पर्याप्त काम उपलब्ध होना चाहिए। यह आदर्श सर्वत्र तभी प्राप्त किया जा सकता है जब जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं के उत्पादन के साधन आम जनता के नियंत्रण में हो। ये उसी प्रकार सबको मुफ्त रूप से उपलब्ध होने चाहिए जिस प्रकार ईश्वर की दी हुई वायु और जल है अथवा होने चाहिए; इन्हें दूसरों के शोषण का अवैध साधन नहीं बनाया जाना चाहिए। किसी भी देश, राष्ट्र या व्यक्ति समूह द्वारा इन पर एकाधिकार करना अनुचित है।'' (यंग इंडिया, 15/11/1928, पृ. 381*)*

5. हम सभी इस तथ्य से अवगत हैं कि कोई व्यक्ति समाज के उपलब्ध संसाधनों के आधार पर ही सबकुछ अर्जित करता है यानि समाज के द्वारा ही समस्त उपार्जित आय/सम्पत्ति प्राप्त करता है। बिना समाज की संपत्ति का उपयोग किए किसी भी प्रकार का संपत्ति निर्माण/आय सृजन संभव नहीं है। अत: जब आय/सम्पत्ति सृजन की प्रक्रिया ही सामाजिक है तो उसके लाभ भी सामाजिक होने चाहिए। वह व्यक्तिगत

ज्ञान शांति मैत्री

नहीं हो सकते। जिन सामाजिक आयामों की सहायता से व्यक्ति संपत्ति/आय सृजन करता है उन्हें भी लाभ समान रूप से प्राप्त होने चाहिए। प्रो. नंदकिशोर आचार्य[7] (2008: 76-78) ने न्यासिता को न्यायोचित ठहराते हुए यह तर्क देते हुए लिखा कि उत्पादन के प्राकृतिक वित्तीय ज्ञानात्मक एवं मानवीय संसाधनों पर किसी का वैयक्तिक स्वामित्व न्यायोचित नहीं ठहरता। साथ ही इस उत्पादन से होने वाले मुनाफे पर भी वैयक्तिक स्वामित्व स्वीकार करना न्याय की बुनियादी अवधारणा को भूलना है। इसमें आगे बढ़कर प्रो. आचार्य कहते हैं कि वर्तमान विकास की एक अवधारणा *अन्तर्संतति न्याय (इन्टरजेनरेशनल जस्टिस)* के नजरिए से भी वैयक्तिक स्वामित्व की अवधारणा न्यायोचित नहीं रहती है।

गाँधीजी कहते हैं कि जब सामूहिक उत्पादन है तो उसके लाभ वितरण भी समान होने चाहिए। यहाँ समान वितरण का तात्पर्य हर एक की बुनियादी जरूरतें पूरी होना है। हर व्यक्ति की बुनियादी जरूरतें पूरी होना ही समाज की प्राथमिकता है। इस समान वितरण का तात्पर्य हर एक के पास समान धनराशि का वितरण होना नहीं है बल्कि उसकी जरूरत के मुताबिक आवश्यक संसाधन उपलब्ध कराना है। यह भी सामाजिक न्याय का ही एक अंग है जो न्यासिता पूरा करता है।

उपर्युक्त आधारों पर यह स्पष्ट है कि गाँधीजी समाज में विद्यमान असमानता को समाप्त करने हेतु एक अहिंसक आधार उपलब्ध कराते हैं। अपनी अहिंसा दृष्टि के जरिए वह स्वामित्व की अवधारणा में सार्थक बदलाव का रचनात्मक प्रयास करते हैं।

2.3 चतुर्यामी प्रक्रिया

गाँधीजी द्वारा प्रस्तुत न्यासिता सिद्धांत एक चतुर्यामी कार्यक्रम है-

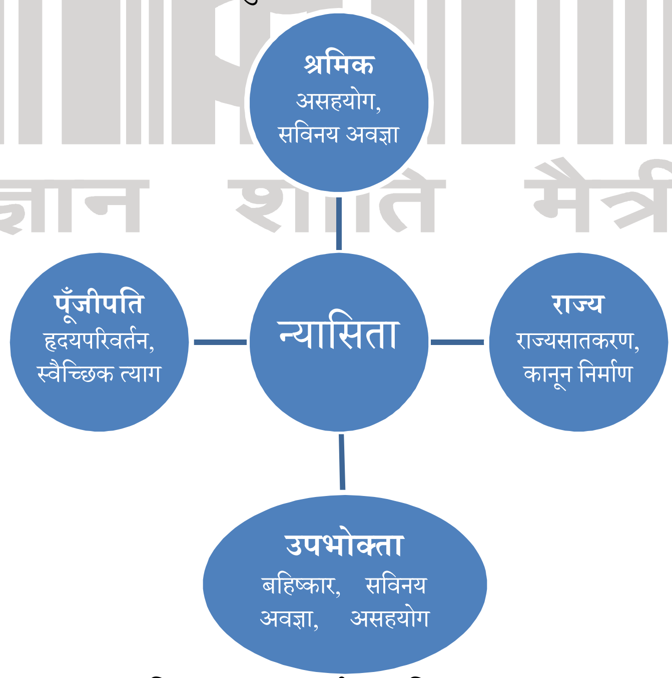

चित्र 4.2 चतुर्यामी प्रक्रिया

स्रोत: जोशी (2018)

ज्ञान शांति मैत्री

[7] आचार्य नंदकिशोर, *सत्याग्रह की संस्कृति,* वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, 2008, पृ. 76-78

गाँधीजी पूँजीपतियों, मिलमालिकों से यह उम्मीद करते हैं कि उन्हें एक न्यासी की तरह कार्य करना चाहिए। अपनी पूँजी को न्यास में तब्दील कर उसका प्रयोग समाज के हित में करना चाहिए। वह पूँजीपतियों से आह्वान करते हैं-

'मैं उन व्यक्तियों को जो आज अपने आप को मालिक समझ रहे हैं न्यासी रूप में काम करने के लिए आमंत्रित कर रहा हूँ अर्थात् यह आग्रह कर रहा हूँ कि वे स्वयं को अपने अधिकार की बदौलत मालिक न समझें, बल्कि उनके अधिकार की बदौलत मालिक समझें जिनका उन्होंने शोषण किया है।"(यंग इंडिया, 26/11/1931, पृ. 369)

ऐसा कहते हुए वह पूँजीपतियों कौ नैतिक रूप से प्रश्नांकित कर रहे होते हैं कि उनकी संपत्ति मूलत: शोषण का पर्याय है। साथ ही वे पूँजीपतियों को अपरिग्रह/स्वैच्छिक गरीबी अपनाने को कहते हैं। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि स्वैच्छिक गरीबी का स्वीकार बुनियादी जरूरतों के पूरे होने के पश्चात की अवस्था है जहाँ व्यक्ति बुनियादी जरूरतों के बाद ऐसी जीवन-शैली अपनाए जो समाज के अधिकांश लोगों के साथ साम्य बिठा सके। साथ ही वह पूँजीपतियों को भी शरीर-श्रम पर आधारित जीवन शैली का प्रस्ताव करते हैं। जैसाकि पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है कि गाँधीजी पूँजीवाद का नाश चाहते हैं, पूँजीपति का नहीं।

यह महत्वपूर्ण है कि गाँधीजी पूँजीपतियों के हृदय परिवर्तन के जरिए उनके नैतिक उत्कर्ष की आकांक्षा रखते हैं। इसके पीछे यह तर्क है कि हिंसा केवल शोषित को ही क्षति नहीं पहुँचाती बल्कि शोषक के प्रति पहले हिंसक होती है यानि शोषण स्वयं पहले अपनी मनुष्यता त्यागकर अपने प्रति हिंसक होता है तब अन्य के प्रति हिंसक होता है अतएव किसी भी प्रकार की हिंसा सर्वप्रथम अपने प्रति हिंसा है। गाँधीजी इस तर्क के आधार पर पूँजीपतियों को यह अवसर देते प्रतीत होते हैं कि वे स्वयं तथा दूसरों

न्यासिता सिद्धांत के पूँजीपति के बने रहने के पीछे यह भी तर्क है कि उनके अनुभवों का लाभ उठाया जाए। जैसा कि हम सभी जानते हैं कि साम्यवादी रूस में भी 1917 की क्रांति के बाद राज्य उत्पादन व्यवस्था में मैनेजर पद का उदभव हुआ जो उत्पादन व्यवस्था को देखता था। गाँधीजी चाहते थे कि पूँजीपति अपने कौशल एवं अनुभव का प्रयोग जनता के हित में करे। सबसे महत्वपूर्ण बात की ओर इंगित करते हुए वह अपनी चिर-परिचित शैली से अलग चेतावनी देते हुए अंदाज में कहते हैं-

''आज के धनवानों को वर्ग-संघर्ष और स्वेच्छा से धन के ट्रस्टी बन जाने के दो रास्तों में से एक रास्ता चुना लेना होगा।" (हरिजन, 31/03/1946, पृ. 63-64)

पूँजीपतियों का हृदय-परिवर्तन का विचार गाँधी विचार की विशिष्टता है इसका मूल इस अहिंसा दृष्टि में है कि प्रत्येक व्यक्ति सदगुण सम्पन्न है। कोई व्यक्ति ऐसा नहीं है जो सुधार से परे हो। गाँधीजी की दृष्टि में मानव का स्वभाव परिवर्तित किया जा सकता है। मगर यह परिवर्तन हिंसक नहीं बल्कि अहिंसक प्रक्रिया द्वारा लाया जाना चाहिए।

इस बिंदु पर यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि श्रमिक उस दिन की प्रतीक्षा करें कि कब पूँजीपतियों का हृदय परिवर्तन होगा और कब वे न्यासिता को स्वीकार करते हुए न्यासी बनेंगे? गाँधीजी श्रमिकों से यह अपील करते हैं कि उन्हें पूँजीपतियों के हृदय परिवर्तन की अनंतकाल तक इंतजार करने की आवश्यकता नहीं है। यदि उन्हें ऐसा प्रतीत हो कि पूँजीपति उनके जायज हकों को स्वीकार नहीं कर रहा है तो वे बिना किसी परिवर्तन की प्रतीक्षा किए असहयोग, सविनय अवज्ञा का प्रयोग करते हुए सत्याग्रह की शुरूआत कर

सकते हैं। सत्याग्रह किसी भी अन्याय के विरुद्ध अहिंसक संघर्ष का कारगर उपाय है। स्वयं गाँधीजी ने इसका प्रयोग कर अन्याय के विरुद्ध संघर्ष किया। श्रम संगठनों के संबंध में जब गाँधीजी शिक्षा की बात करते थे, वहाँ उनका अर्थ असहयोग व सविनय अवज्ञा की शिक्षा से भी था।

असहयोग की व्याख्या करते हुए गाँधीजी उसे एक व्यापक अर्थ प्रदान करते हैं-

''मैं नॉन को-आपरेटर (असहयोगी) हूँ।... लेकिन मैं असहयोग इसलिए करता हूँ कि सहयोग कर सकूँ।... यह किसी पर उपकार नहीं करता; यह असहयोग बुराई करने वालों के साथ नहीं, बल्कि बुराई के साथ एक बुरी प्रणाली के साथ है।''(यंग इंडिया, 20/08/1925, पृ. 285)

श्रम-पूँजी संबंधों में श्रमिकों की शक्ति उनके असहयोग में निहित है। इस असहयोग का मतलब है पूँजीपतियों द्वारा किए जाने वाले शोषण में भागीदारी से मना करना या दूसरे शब्दों में असहयोग का अर्थ है एक समतापूर्ण सहयोग की शुरूआत। ऐसा सहयोग जिसमें श्रम-पूँजी एक समान हो। गाँधी इसे और स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि-

''एक बड़ा जानदार शब्द है, यह अंग्रेजी में भी है, फ्रेंच में भी है और विश्व की सभी भाषाओं में है- यह शब्द है- नहीं। जो रहस्य हमें हाथ लगा है वह यह है कि जब पूँजीपति यह चाहें कि श्रमिक ''हाँ'' कहें तो श्रमिक को, यदि उसका मन्तव्य ''न'' है तो पूरे जोर के साथ ''नहीं'' कह देना चाहिए। इसके साथ ही श्रमिकों को यह बात समझ में आ जाएगी कि उनके सामने दो विकल्प हैं- जब ''हाँ'' कहना चाहें तो ''हाँ'' करने का, और जब ''ना'' कहना चाहे तो ''ना'' कहने का। जब ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाएगी तो श्रम पूँजी से स्वतंत्र हो जाएगा और पूँजी को श्रम की मनुहार करनी पड़ेगी।'' (यंग इंडिया, 14/01/1932, पृ. 17-18)

श्रमिक द्वारा किया जाने वाला यह अहिंसक असहयोग पूँजी को श्रम की महत्ता का भान करा सकेगा और शोषण मुक्ति को संभव बना कर समानतापूर्ण सहयोग की नई शुरूआत संभव हो पाएगी। गाँधीजी यह भी दर्शाते हैं कि पूँजी के साथ न्यासी होना अनिवार्य है तो श्रम को इससे कैसे मुक्त किया जा सकता है? इसका कारण है कि श्रम भी तो स्वयं में एक पूँजी का ही रूप है अत: श्रमिक को भी न्यासी होना होगा। क्योंकि वह श्रम रूपी संपत्ति का मालिक है। श्रमिक का न्यासीपन अपने अधिकार एवं कर्त्तव्यों की पूर्ति में संभव है जहाँ वह पूँजी के साथ सहयोग कर एक समाजोपयोगी उत्पादन में हिस्सा लेता है और जीवन की बुनियादी जरूरतें पूरी कर सकता है वहीं दूसरी ओर श्रम संगठन के जरिए अपने अधिकारों की पूर्ति कर समाज में एक बेहतर वातावरण निर्माण का मार्ग प्रशस्त करता है।

गाँधीजी ने देखा कि श्रम व पूँजी दोनों ही सत्ता के प्रकार हैं। यह सत्ता सृजनात्मक और विध्वंसात्मक दोनों ही दिशाओं में जा सकती है। उनका प्रयास था कि इन दोनों ही सत्ताओं का प्रयोग एक-दूसरे के सहयोग से पारस्परिक उन्नयन के लिए किया जाए जो व्यापक समाज के कल्याण को भी प्राप्त कर सके।

गाँधीजी उपभोक्ता को भी अपने न्यासिता सिद्धांत का हिस्सा बनाते हैं। उनके अनुसार श्रम- पूँजी आपस में एक-दूसरे का सहयोग करते हुए ''न्यासी'' बन जाए और समाज के कल्याण हेतु अपनी भूमिका अदा करे। दोनों मिलकर उपभोक्ता के न्यासी बने ताकि समाज में सबके हितों का कल्याण हो सके। गाँधीजी की दृष्टि में यदि औद्योगिक संबंध (श्रम-पूँजी संबंध) सामाजिक जीवन का ही एक भाग है तो वह व्यापक समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारी से नहीं भाग सकता है। वह कहते हैं कि-

''... सच तो यह है कि तब पूँजीपति और श्रमिक एक दूसरे के न्यासी बन जाएंगे और दोनों मिलकर उपभोक्ताओं के संयुक्त न्यासी बन जाएंगे। मेरा न्यासीपन का सिद्धांत; जैसाकि मैंने समझाया है, एक पारस्परिक और उभयपक्षी चीज है; इसमें प्रत्येक संबंधित पक्ष यही मानता है कि दूसरे पक्ष के हितों की रक्षा में ही उसका अपना सबसे अधिक हित है।'' (सम्पूर्ण गाँधी वांङमय, खंड – 67, पृ. 153)

इसके साथ ही वह यह भी अपेक्षा करते हैं कि इसी न्यासी भाव में लाभांश, मजदूरी और कीमतों के बीच सामंजस्य स्थापित हो जाए। यह तभी संभव है जब श्रम-पूँजी एक-दूसरे का सहयोग समाज की भलाई के लिए अपना लक्ष्य स्थापित करें-

''एक ऐसा वक्त जरूर आयेगा और वह जल्द आए उतना ही अच्छा होगा- जब भागीदारों के लाभांश, मजदूरों की मजदूरी और उपभोक्ताओं द्वारा अदा की जाने वाली कीमतों के बीच समुचित सामंजस्य स्थापित हो जाएगा।'' (सम्पूर्ण गाँधी वांङमय, खंड – 20, पृ. 508)

यह उद्धरण श्रम व पूँजी के उपभोक्ताओं के प्रति न्यासी बनने की प्रक्रिया का एक हिस्सा है। गाँधीजी के लिए उचित कीमत निर्धारण दोनों पक्षों का समाज के प्रति दायित्व है। साथ ही वह यह भी प्रस्ताव करते हैं कि उपभोक्ता भी इसी व्यवस्था का हिस्सा है तब वह अपने उत्तरदायित्वों से कैसे विमुख हो सकता है? उनके अनुसार यदि पूँजीपति का ''हृदय परिवर्तन'' न हो रहा हो, श्रमिक असहयोग, सविनय अवज्ञा आदि सत्याग्रह का प्रयोग कर रहा हो या न कर रहा हो, ऐसी स्थिति में उपभोक्ता का दायित्व है कि वह उन वस्तुओं का बहिष्कार करें जो शोषण से उत्पन्न की जा रही हो। अगर कोई वस्तु शोषण से उत्पन्न है तो उपभोक्ता का उस सम्पूर्ण व्यवस्था के प्रति सत्याग्रह करना कर्त्तव्य हो जाता है। ऐसे में उपभोक्ता एक सत्याग्रही उपभोक्ता हो जाता है। समाज की भी यह जिम्मेदारी है कि वह स्वस्थ औद्योगिक संबंधों को स्थापित करे। समाज अपनी भूमिका से पलायन नहीं कर सकता है। अत: यदि कोई भी पक्ष स्वस्थ औद्योगिक संबंधों की स्थापना में बाधा उत्पन्न करता है तो उसके प्रति सत्याग्रह उपभोक्ता सहित सम्पूर्ण समाज का भी दायित्व स्वयमेव हो जाता है। इस उत्तरदायित्व को प्रकट करते हुए वह कहते हैं-

*'शोषितश्रम द्वारा तैयार की गई वस्तुओं को खरीदने और इनका इस्तेमाल करना पापयुक्त है।'' (*यंग इंडिया, 13/10/1921, पृ. 325)

न्यासिता केवल व्यक्तिगत परितर्वन पर ही निर्भर नहीं है। यह उत्पादन की प्रक्रिया में परिवर्तन करता है, उसे स्वदेशी और लोगों के द्वारा वृहद उत्पादन में तब्दील करता है। बुनियादी जरूरतों को प्राथमिकता देते हुए उत्पादन करता है। उत्पादन में धनिक और श्रमिक एक समान आजीविका पाते हैं। यह न्यायोचित वितरण की बात करता है। स्वामित्व एक सामूहिक स्वामित्व को स्थापित करता है। आवश्यकता होने पर राज्य का हस्तक्षेप भी स्वीकार करता है।

गाँधीजी का प्रारंभ से ही विचार था कि पूँजीपति स्वेच्छापूर्वक न्यासिता को स्वीकार कर लें परंतु ऐसा न किए जाने पर वह राज्य के हस्तक्षेप को स्वीकार करते हैं। वह राज्य द्वारा कानून बनाकर न्यासिता कार्यक्रम को लागू करना प्रस्तावित करते हैं। वह कहते हैं-

'मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी अगर लोग न्यासी के रूप में आचरण करें, लेकिन यदि वह ऐसा नहीं कर पाते तो हमें राज्य के जरिए न्यूनतम हिंसा का प्रयोग करते हुए उन्हें उन की सम्पत्ति से वंचित करना होगा। इसीलिए मैंने गोलमेज सम्मेलन में कहा था कि प्रत्येक न्यस्त हित की जाँच-पड़ताल

की जानी चाहिए और जहाँ आवश्यक हो, राज्य सात्करण के आदेश दिये जाएं। जिनकी सम्पत्ति का राज्यसात्करण करना हो, उन्हें मुआवजा दिया जाये या नहीं, इसका निर्णय हर मामले की तफसील पर गौर करके किया जाये। मैं व्यक्तिगत रूप से इस बात को तरजीह दूँगा कि राज्य के हाथों में शक्ति के केन्द्रीकरण के बजाय न्यासिता की भावना का विस्तार किया जाए क्योंकि, मेरी सम्मति में, निजी स्वामित्व की हिंसा राज्य की हिंसा से कम हानिकारक है। लेकिन अपरिहार्य हो तो मैं न्यूनतम राज्य-स्वामित्व का समर्थन करूँगा।" (द मार्डन रिव्यू, अक्टूबर 1935, पृ. 412)

प्रो. नंदकिशोर आचार्य ने इस उद्धरण को व्याख्यायित करते हुए लिखा कि यह द्रष्टव्य है कि राज्य की मदद के बिना उद्योगवाद एवं पूँजीवाद का विकास संभव नहीं है। राज्य द्वारा प्रदान की गयी तमाम सुविधाओं के बलबूतें पर ही इनका विकास संभव हो पाता है। अत: राज्य अगर हिंसा न भी करे और केवल इनके साथ असहयोग करे तब भी पूँजीपतियों को न्यासिता सिद्धांत को मानना होगा। यह हिंसा नहीं होगी क्योंकि पूँजीपति हिंसा में राज्य का सहयोग लेने के नैतिक अधिकारी नहीं है। इस प्रकार प्रो. आचार्य के अनुसार गाँधीजी राज्य को एक सत्याग्रही राज्य होने को कहते हैं(1995:60)।

2.4 ट्रस्टीशिप सूत्र

न्यासिता सिद्धांत अपने मूल में जिन विचारों को समाहित करता है उसे न्यासिता सूत्र के जरिए समझा जा सकता है जिसे गाँधीजी ने कुछ संशोधनों के साथ स्वीकृत कर दिया था-

1. *न्यासिता समाज की वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था को समतावादी व्यवस्था में रूपान्तरित करने का एक साधन है। न्यासिता पूँजीवाद को बख्शती नहीं है, पर वह वर्तमान मालिक वर्ग को सुधार का एक अवसर प्रदान करती है। यह इस विश्वास पर आधारित है कि मानव प्रकृति कभी सुधार से परे नहीं होती।*
2. *यह निजी स्वामित्व के किसी अधिकार को नहीं मानती, सिवा उसके जिसकी अनुमति समाज अपने कल्याण के लिए दे।*
3. *यह धन सम्पत्ति के स्वामित्व और उपयोग के कानूनी विनियमन की वर्जना नहीं करती।*
4. *तदनुसार राज्य द्वारा विनियमित न्यासिता के तहत, कोई व्यक्ति अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए अथवा समाज के हितों की अनदेखी करते हुए अपनी सम्पत्ति को धारण करने अथवा उसका इस्तेमाल करने के लिए स्वतंत्र नहीं होगा।*
5. *जिस प्रकार एक समुचित न्यूनतम निर्वाह मजदूरी तय करने का प्रस्ताव है उसी तरह समाज में व्यक्ति की अधिकतम आय भी नियत कर देनी चाहिए। न्यूनतम और अधिकतम आयों के बीच जो अंतर हो वह युक्तिसंगत और न्यायोचित हो और उसमें समय-समय पर इस दृष्टि से परिवर्तन किया जाए कि अंतत: वह अंत मिट जाए।*
6. *गाँधीवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादन का स्वरूप, व्यक्तिगत सनक या लोभ द्वारा नहीं, बल्कि सामाजिक आवश्यकता द्वारा निर्धारित होगा। (हरिजन*, 25/10/1952, पृ. 301)

यह न्यासिता सूत्र पूँजीवाद को सिरे से खारिज करता है। गाँधीजी व्यवहार में कुछ वृहद उद्योगों की संभावना भी देखते हैं। लेकिन इन वृहद उद्योगों का स्वामित्व राज्य के जरिए जनता का होगा। तथा लोभ के स्थान पर प्रेम को कायम करना उनका उद्देश्य होगा। इसी के साथ गाँधीजी न्यासिता से जुड़े एक अन्य

पहलू को भी स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि ''न्यासी का कोई वारिस नहीं होता जनता ही उसकी वारिस होती है। (*हरिजन,* 12/04/1942, पृ. 116) साथ ही यह भी कि न्यासी को अपनी सेवा और समाज के लिए उसके मूल्य को देखते हुए कमीशन मिलेगा जिसकी दर का नियमन राज्य द्वारा किया जाएगा। उनके बच्ची को उनके स्थान पर न्यासी बनने की आज्ञा तभी मिलेगी जबकि वे स्वयं को इसके योग्य सिद्ध कर सकेंगे(*हरिजन,* 31/03/1946, पृ. 63-64)। साथ ही गाँधीजी का विचार था कि स्वतंत्र भारत में न्यासिता नीचे से यानि ग्राम पंचायत के स्तर से प्रारंभ होनी चाहिए। इसके लिए जनता के बीच इसका अर्थ ले जाना इसके अनुकूल वातावरण निर्माण करना होगा ताकि यह एक सामूहिक पहल के जरिए स्वेच्छा से कानून रूप में तब्दील हो सके। ऊपर से आरोपित होने पर यह बोझ जैसा महसूस होगा।

2.5 आलोचना

गाँधीजी द्वारा प्रस्तुत न्यासिता सिद्धांत आलोचना से परे नहीं है। गाँधीजी के समकालीन एवं परवर्ती विचारकों ने इस सिद्धांत की काफी आलोचना की। इसे एक धोखा और शोषण को बनाए रखने वाले सिद्धांत के रूप में बताया। विभिन्न आलोचनाओं को निम्नानुसार बताया जा सकता है-

1. गाँधीजी ने पूँजीपतियों के हृदय परिवर्तन की बात कहकर एक नैतिक क्रांति का आह्वान किया परंतु हकीकत में ऐसी क्रांति नहीं हो सकती और न्यासिता एक ऐसे समाज की कल्पना है जिसमें धनी दानशील हो ताकि गरीब कमजोर रह सकें। न्यासिता सिद्धांत बातें में क्रांतिकारी है परंतु व्यवहार में रूढ़िवादी है। न्यासिता इतना लचीता सिद्धांत है कि इससे घोर विषमता का भी औचित्य सिद्ध किया जा सकता है।

इस आलोचना के प्रत्युत्तर में कहा जा सकता है कि न्यासिता सूत्र स्पष्ट बताता है कि न्यासिता निजी माल्कियत को सिरे से खारिज करती है अत: जहाँ स्वामित्व की अवधारणा ही अस्वीकृत है वहाँ निजी मिल्कियत के वर्ग का उदय संभव ही नहीं है। यह सिद्धांत रूढिवादी इस अर्थ में नहीं है कि प्रत्येक के लिए शरीर-श्रम और बुनियादी जरूरतों की पूर्ति की बात कहकर एक श्रमाधारित समाज की नींव रखता है। हर वर्ग के व्यक्तियों के कौशल को सामाजिक हित में प्रयुक्त करता है। साथ ही आय की न्यूनतम एवं अधिकतम सीमा तय करने और उस अंतर को समाप्त करने की वकालत कर विषमता को समाप्त करता है।

2. इस सिद्धांत में पूँजीवाद की चारित्रिक विशेषताएँ मौजूद रहती है। उत्पादन संबंधी परिस्थितियाँ कमोबेश पुरानी ही रहती है। इसमें पूँजी का केंद्रीकरण और शोषण बना रहेगा। अर्थव्यवस्था में संपत्तिशालियों के दुर्गुण हृदय या सोच परिवर्तन से दूर नहीं हो सकते हैं।

उपर्युक्त आलोचना में कमी यह है कि वह न्यासिता के इस तर्क को समझ ही नहीं पायी कि न्यासिता का सीधा प्रहार पूँजीवाद पर ही है। यह पूँजीवाद को नकार कर ही अपना कार्य करती है। न्यासिता आधारित व्यवस्था में *प्रोडक्शन बाय मासेज (लोगों द्वारा वृहद उत्पादन)* है; वितरण में समतामूलक वितरण है; स्वामित्व में सामुदायिक स्वामित्व है निजी स्वामित्व का नकार है; इन विशेषताओं में से सभी पूँजीवाद की अस्वीकृति की परिचायक हैं।

3. न्यासिता सिद्धांत बुर्जुआ वर्ग की सहायता करने वाला है। संघर्ष के स्थान पर संवाद पर जोर देकर यह बुर्जुआ वर्ग की सहायता करता है।

इस आलोचना में दो शब्द महत्वपूर्ण हैं- *बुर्जुआ वर्ग* और *संघर्ष*। गाँधीजी के यहाँ संघर्ष नहीं है यह गलत दृष्टि है। वहाँ सक्रिय अहिंसक संघर्ष है जो सत्याग्रह के जरिए अभिव्यक्त होता है और संवाद उसका एक हिस्सा भर है। बुर्जुआ वर्ग के स्थान पर गाँधीजी सर्वहारा के पक्ष में ज्यादा खड़े प्रतीत होते हैं। वह भी *उत्पादन के साधनों पर (मार्क्सवादी शब्दावली में मिन्स एंड टूल्स ऑफ प्रोडक्शन पर) आम जनता का अधिकार* चाहते हैं। वह उत्पादन के साधनों, विकेंद्रीकरण एवं समतामूलक वितरण, सामुदायिक स्वामित्व द्वारा (अगर मार्क्सवादी शब्दों में कहें तो) सर्वहारा के साथ खड़े प्रतीत होते हैं। बुर्जुआ वर्ग के साथ वह संवाद करते हैं तो उसे बदलने एवं नैतिक आधार पर प्रश्नांकित करने के लिए। अगर बुर्जुआ वर्ग ऐसा नहीं करता है तो उसे सर्वहारा के सत्याग्रह का सामना करना ही है।

4. गाँधी धनिक वर्ग को क्षति नहीं पहुँचाना चाहते हैं। वह उनके खिलाफ होने वाले आंदोलन के विरुद्ध हैं। उनमें आर्थिक समानता के प्रति कोई जुनून नहीं है।

गाँधीजी संपत्ति के उत्पादन व स्वामित्व को प्रश्नांकित करते हुए पूँजीवाद को खत्म करना चाहते है। वह धनिक वर्ग को इसलिए समाप्त नहीं करना चाहते हैं कि वह पूँजीवाद की मूल समस्या का एक प्रकटीकरण मात्र है, ऐसा नहीं है और जैसाकि ऐतिहासिक साक्ष्य भी बताते हैं कि पूँजीपतियों के विनाश मात्र से समानता या वांछित लक्ष्य पूरा हो ऐसा आवश्यक नहीं है। गाँधीजी पूंजीवाद के प्रति न केवल सैद्धांतिक विरोध दर्ज कराते हैं अपितु अपने विभिन्न रचनात्मक कार्यक्रमों द्वारा उसके विरुद्ध कार्य भी करते हैं। अपने पूरे आर्थिक विचार में वह न्यायपूर्ण आर्थिक समानता के लिए संघर्षरत दिखाई पड़ते है।

5. न्यासिता सिद्धांत एक परम्परागत समाज में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन को रोककर उसे आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था में आने में बाधक है।

न्यासिता सिद्धांत भी सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन में विश्वास करता है और औद्योगिक व्यवस्था बनाता है परंतु उसकी प्रक्रिया व लक्ष्य भिन्न है। वह मनुष्य एवं उसकी मनुष्यता को बचाए रखते हुए सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन लाता है। लोगों को समतामूलक वितरण, श्रम आधारित समाज, आय की समानता, विकेंद्रीकरण आदि उपलब्ध कराकर क्रांतिकारी परिवर्तन लाता है। न्यासिता में भी औद्योगिक व्यवस्था है परंतु वह शोषण करने वाली नहीं अपितु सहयोगीमूलक है और राज्य के नियंत्रण में जिसका उद्देश्य अनियंत्रित मुनाफा कमाना नहीं बल्कि जन-कल्याण है।

6. गाँधीजी के मित्र कभी ट्रस्टी नहीं बने। पूँजीपति उनके पास अपने उद्देश्यों से आते थे। मगर गाँधीजी किसी भी पूँजीपति का हृदय परिवर्तन नहीं कर सके।

हालांकि इस आलोचना का जवाब स्वयं गाँधीजी अपने समय में दे चुके थे अगर कोई पूँजीपति न्यासिता को अपनाकर न्यासी नहीं बनता तो यह न्यासिता सिद्धांत की कमी नहीं है बल्कि वह पूँजीपति की सीमा एवं कमजोरी है। इससे न्यासिता सिद्धांत गलत सिद्ध नहीं होता। इसे एक उदाहरण से समझा जा सकता है कि एक व्यक्ति अपने जीवन में कभी अहिंसा को एक सिद्धांत जीवन दृष्टि के रूप में स्वीकारता है परंतु उनके द्वारा कोई हिंसा हो जाती है तो यह सिद्ध नहीं होता कि अहिंसा गलत थी बल्कि यह उस व्यक्ति की सीमा थी। न्यासिता के अनुसार पूँजीपतियों का न्यासी न बनना उनकी अपनी कमजोरी है, सिद्धांत की नहीं।

7. पूँजीपतियों को न्यासी बना देना और वंचितों को इस संबंध में कोई चुनाव न देना यथास्थिति स्वीकार करने को कहना एक तरह की जर्बदस्ती है।

गाँधीजी न्यासिता द्वारा यथास्थिति में परिवर्तन का प्रस्ताव करते हैं। वे एक ओर पूँजीपतियों को हिंसक क्रांति एवं न्यासिता में किसी एक को चुनने का प्रस्ताव करते हैं वहीं दूसरी ओर श्रमिकों को यह स्पष्ट हिदायत देते हैं कि ''हृदय परिवर्तन'' का कयामत के दिन तक इंतजार करने की आवश्यकता नहीं है। जिस क्षण उन्हें ऐसा लगे कि पूँजीपति इसके लिए तैयार नहीं है, शोषण को कायम रखना चाहता है श्रमिकों को यह पूरा अधिकार है कि वे उसके विरुद्ध सत्याग्रह कर दें। राज्य से भी कानून बना कर सम्पत्ति के राज्यसात्करण की बात कहते हैं।

8. एक अल्पकालिक समाधान के रूप में न्यासिता ठीक है। दमन नैतिक रूप से गलत है परंतु समाधान को संपत्तिशालियों के हृदय परिवर्तन पर छोड़ना ज्यादा कारगर नहीं है।

इस आलोचना का संबंध भी न्यासिता को हृदय परिवर्तन का पर्याय मानने का परिणाम है। न्यासिता में केवल हृदय परिवर्तन ही नहीं बल्कि सक्रिय अहिंसक संघर्ष, राज्यसात्करण और उपभोक्ता द्वारा किया गया बहिष्कार भी शामिल है। यह एक बेहतर समाज की रचना का दीर्घकालिक उपाय है।

9. यह सिद्धांत पूँजीवाद में वर्ग सत्ता (क्लास पॉवर) की समस्या को दूर नहीं करता। साथ ही यह सामाजिक श्रेणीक्रम को बनाए रखना चाहता है।

गाँधीजी प्रथमत: पूँजीवाद के मूल आधारों को ही समाप्त करने पर बल देते हैं। वह वर्ग विभाजन को स्वीकारते हैं परंतु इसमें अनिवार्यत: हिंसक वर्ग संघर्ष को स्वीकार नहीं करते हैं। साथ ही गाँधीजी पूँजीवाद के आधारों- अतिरिक्त मूल्य एवं उत्पादन साधनों पर पूँजीपति के अधिकार- इन दोनों को परिवर्तित करते हैं। अर्थव्यवस्था को स्थानीय और आवश्यकता आधारित बना कर वह विनिमय मूल्य एवं उपयोगिता मूल्य के अंतर को समाप्त करने का प्रयास कर अतिरिक्त मूल्य को ही समाप्त करते हैं और वृहद लोगों द्वारा उत्पादन संभव बनाकर वह उत्पादन के साधनों (मिन्स एंड टूल्स ऑफ प्रोडक्शन) पर आम जनता को अधिकार प्रदान कर उसका (मार्क्सवादी शब्दों में) सर्वहाराकरण करते हैं। स्वामित्व परिवर्तन का जिक्र हम कर ही चुके हैं। जहाँ तक बात सामाजिक श्रेणीक्रम को बनाए रखने की तो यह उचित नहीं है क्योंकि न्यासिता सभी को शरीर-श्रम पर आधारित अर्थव्यवस्था का अंग बनाता है। इसमें छुआछूत, अस्पृश्यता के लिए कोई स्थान नहीं है। वह श्रमाधारित समाज को जन्म देता है जो अपने मूल में समतामूलक है।

उपर्युक्त आलोचनाओं एवं उनके प्रत्युत्तरों के तलाशने के बाद हम यह कह सकते हैं कि अधिकांश आलोचनाएं निम्नलिखित दो कारणों से उत्पन्न होती है-

1. न्यासिता सिद्धांत को उसकी सम्पूर्णता में न समझकर उसे हृदय परिवर्तन तक ही सीमित करना।
2. इसकी अहिंसक प्रणाली।

सम्पूर्ण विवेचन यह दर्शाता है कि औद्योगिक संबंधों एवं श्रम संघवाद पर गाँधीजी ने एक सुव्यवस्थित सिद्धांत प्रस्तुत किया है जो सत्य एवं अहिंसा पर आधारित होने के कारण विशिष्ट है। इसीलिए वह कहते हैं-

''न्यासिता'' का मेरा सिद्धांत कोई कामचलाऊ सिद्धांत नहीं है- निश्चित रूप से यह कोई छद्मावरण नहीं है। मुझे पक्का विश्वास है कि अन्य सभी सिद्धांतों का लोप हो जाने के बाद भी यह सिद्धांत जीवित रहेगा।''

साथ ही एक व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाते हुए भी वह कहते हैं कि-

"यूक्लिड की बिंदु की परिभाषा की तरह पूर्ण न्यासिता भी एक अमूर्त विचार है और इसे प्राप्त करना भी उतना ही असंभव है। लेकिन अगर हम उसके लिए प्रयास करते रहें तो हम धरती पर समानता स्थापित करने की दिशा में अन्य किसी उपाय की अपेक्षा (न्यासिता के सिद्धांत पर आचरण करके) अधिक प्रगति कर सकते हैं।"(हरिजन, 16/12/1939, पृ. 376)

यह सिद्धांत अपने सत्य व अहिंसा के आधारों के कारण पूर्ववर्ती मार्क्सवादी एवं पूँजीवादी सिद्धांतों से पृथक हो जाता है। कहीं-न-कहीं इसका मूल आधार मनुष्य एवं उसके प्रयोजन की व्याख्या में निहित है। न्यासिता अहिंसक प्रक्रिया को माध्यम बनाकर स्वामित्व परिवर्तन की पहल करता है जो स्वयं में क्रांतिकारी विचार है।

2.6 सारांश

महात्मा गाँधी का ट्रस्टीशिप सिद्धांत सत्ता, सम्पत्ति तथा एकाधिकार के खिलाफ एक प्रकार के जनवादी आंदोलन का प्रतीक है। औद्योगिक क्षेत्र में महात्मा गाँधी न तो पूँजीवादी नियंत्रण के पक्ष में है और न तो राज्य नियंत्रण के बहाने नौकरशाही के क्योंकि दोनों का आधार शोषण एवं हिंसा है। गाँधीजी का न्यासिता सिद्धांत संपत्ति, मुद्रा, समय और कौशल के प्रति हमारे दृष्टिकोण को बदलता है। गाँधी विचार के विद्वान श्री मन्ननारायण (1973) ने ट्रस्टीशिप विचार की व्याख्या करते हुए इसमें सामाजिक अंकेक्षण (सोशल ऑडिट) की अवधारणा को जोड़ा। प्रो. जे.डी. सेठी के अनुसार न्यासिता के पीछे आधारभूत उद्देश्य एक अहिंसक एवं शोषणयुक्त संपत्ति संबंध बनाना है। यह संपत्ति या स्वामित्व का विरोधी नहीं है बल्कि सम्पत्ति की उत्पत्ति एवं प्रयोग के तरीकों पर ध्यान केंद्रित करता है। यह आवश्यकता आधारित उत्पादन, समानतापूर्ण वितरण और सामाजिक न्याय पर आश्रित है।

फ्रांसिस फ्रेंकल(1978) ने अपनी पुस्तक ''इंडियाज पॉलिटिकल इकानॉमी (1947-1977)'' में लिखा कि गाँधी दृष्टि में न्यासिता सिद्धांत अकेला नहीं है रचनात्मक कार्यक्रम उसके साथ संलग्न है। न्यासिता सिद्धांत और रचनात्मक कार्यक्रम आर्थिक व राजनीतिक सत्ता के वितरण के लिए क्रांतिकारी परिणाम प्रस्तुत करते हैं। न्यासिता अभिजात्य वर्ग के औचित्य के आधार में परिवर्तन लाने का कारक है। यह समूल परिवर्तन को बढ़ावा देने वाला है।

2.7 बोध प्रश्न

1. ट्रस्टीशिप की तार्किकता पर विचार कीजिए।
3. ट्रस्टीशिप की चतुर्यामी प्रक्रिया को स्पष्ट कीजिए।
4. ट्रस्टीशिप की आलोचना पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

2.7 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

- कुमारप्पा, भारतन(1949). *गांधी फॉर पेसिफिस्ट*. अहमदाबाद :नवजीवन. पृ. 147
- गाँधी,मो.क. (1957). *फ्राम यर्वदा मंदिर : आश्रम ऑब्जर्वेसेज* (अनु.वी.जी.देसाई). अहमदाबाद : नवजीवन पब्लिशिंग हाउस.पृ. 53-56
- सेठी, प्रो. जे.डी. (1979). द ग्रांड अल्टरनेटिव. *ट्रस्टीशिप*, (सं. भारतन, आर.के.). मद्रास : श्रीनिकेतन.पृ. 62
- नारायण, श्रीमन्न(1973). *गाँधीजी कान्सेप्ट ऑफ ट्रस्टीशिप : इट्स प्रेक्टिकल इम्पलिकेशन्स*. सेवाग्राम: सेवाग्राम आश्रम फाउंडेशन. पृ. 22
- प्रधान, वेणुधर(1980). द *सोशलिस्ट थॉट ऑफ महात्मा गांधी*(खण्ड-2). दिल्ली :श्री डी के पब्लिकेशन्स. पृ. 428
- सेठी, प्रो. जे.डी. (1986). ट्रस्टीशिप एंड द क्राइसिस इन इकानॉमिक थ्योरी , *ट्रस्टीशिप: द गांधियन अल्टरनेटिव*, (सं. सेठी ,प्रो. जे.डी.) . नई दिल्ली : गांधी पीस फाउंडेशन. पृ. 92
- गुप्ता,एस.एस.(1994). *इकानॉमिक फिलासफी ऑफ महात्मा गाँधी*. नई दिल्ली : कानसेप्ट पब्लिशिंग कंपनी.पृ.142
- आचार्य, नंदकिशोर(1995). *सभ्यता का विकल्प (गांधी दृष्टि का पुनरुविष्कार)*. बीकानेर : वाग्देवी प्रकाशन. पृ. 58
- आचार्य नंदकिशोर(2008). *सत्याग्रह की संस्कृति*. बीकानेर : वाग्देवी प्रकाशन. पृ. 76-78
- जोशी,शंभू(2018). अहिंसक श्रम दर्शन.बीकानेर:वाग्देवी प्रकाशन.

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई 3 स्वदेशी

इकाई रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 स्वदेशी का अर्थ एवं आयाम
3.3 सारांश
3.4 बोध प्रश्न
3.5 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आप-

- स्वदेशी की अवधारणा से परिचित हो सकेंगे
- गांधीजी द्वारा प्रस्तुत तकनीक विमर्श को रेखांकित कर सकेंगे
- स्वदेशी के अंतर्गत चरखा और खादी के महत्वपूर्ण स्थान को व्याख्यायित कर सकेंगे

3.1 प्रस्तावना

गांधीजी मानव जीवन के सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक जीवन को अलग-अलग नियमों से परिभाषित एवं संचालित नहीं करते है जैसा कि तात्कालीन समय में तथा आज भी किया जाता है। उनके लिए जीवन एक अखंड इकाई है और जीवन के समस्त क्रिया-कलापों का आधार प्रेम का नियम है जिसकी अभिव्यक्ति तत्प्रसूत अहिंसा के जरिए होती है। अत: गाँधीजी जब अपने आर्थिक विचारों को अभिव्यक्त करते हैं तब अहिंसा दृष्टि का विस्तार आर्थिक क्षेत्र में कर रहे होते हैं।

प्रो. रोमेश दीवान और सुशीला गिडवानी (1979)ने गाँधीवादी अर्थशास्त्र के छह मूल तत्व बतलाए हैं-

1. *स्वदेशी*
2. *शरीर-श्रम*
3. *अपरिग्रह*
4. *ट्रस्टीशिप*
5. *शोषणविहीनता*
6. *समानता*

प्रो.गोपीनाथ धवन(1946) ने गाँधीजी के आर्थिक दर्शन के निम्नलिखित चार आधार बताएं हैं –

1. *अस्तेय*
2. *अपरिग्रह*
3. *शरीर-श्रम (ब्रेड लेबर)*
4. *स्वेदशी*

गाँधीजी ने आधुनिक पूँजीवादी व्यवस्था में लालच, शोषण, सत्ता और हिंसा में सीधा संबंध देखा जो मानवीय समाज में अलगाव को बढ़ावा दे रहे थे। वह पाश्चात्य औद्योगिक, भौतिकवादी सभ्यता के कटु आलोचक थे । वह मशीनीकरण (Mechanization),व्यक्तित्वलोप (Depersonalization),तथा नौकरशाही (Bureaucracy) के विरोध में थे जो कि आधुनिक वृहद आर्थिक एवं सामाजिक संरचना के आयाम थे । उन्होंने औद्योगीकरण, प्रौद्योगिकी, केंद्रीकरण,पर्यावरण, सामाजिक रिश्तों, मानव के नैतिक व सांस्कृतिक कल्याण के प्रश्नों पर अपना ध्यान केंद्रित किया। गाँधीजी के आर्थिक विचारों में समानता का आधार समस्त श्रम के समान महत्व में है।

3.2 स्वदेशी का अर्थ एवं आयाम

किसी भी अर्थव्यवस्था में उसकी आर्थिक क्रियाओं का उद्देश्य उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं की पूर्ति करना होता है। वही अर्थव्यवस्था उचित कही जा सकती है जो उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं को सही तरीके से पूरी करती हो। वह तरीका अहिंसक होना चाहिए। आधुनिक अर्थशास्त्र इससे विपरीत स्थिति मानता है। उसके लिए उपभोक्ता एक मनुष्य नहीं बल्कि वस्तु हो जाता है। उसकी महत्ता तभी तक होती है जब तक वह उपभोग करता रहता है। अर्थव्यवस्था का मकसद यह जानना कभी नहीं होता कि उस उपभोग का उस उपभोक्ता, समाज और प्रकृति पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? आधुनिक अर्थव्यवस्था का विकास आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ कृत्रिम जरूरतों/आवश्यकताओं को पैदा करना भी है । अत: इस अर्थव्यवस्था में नई कृत्रिम माँगों को भी पैदा किया जाता है और उपभोक्ता को उपभोग हेतु मजबूर किया जाता है। हरबर्ट मारक्यूज ने हमारा ध्यान इस ओर आकर्षित किया है। यह अर्थव्यवस्था मनुष्य को मात्र उपभोक्ता मानने और लगातार उपभोग बढ़ाने के कारण सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में हिंसा को तो जन्म दे ही रही है बल्कि लगातार उपभोग बढ़ने के कारण प्राकृतिक संसाधनों और समस्त पारिस्थितिकी के प्रति भी हिंसक है। अतएव इस अर्थव्यवस्था में उपभोग भी हिंसक हो जाता है और इस हिंसक प्रक्रिया को समर्थन देने लगता है।

गाँधीजी इससे आगे बढ़कर सम्पूर्ण उत्पादन प्रणाली के ढाँचें को ही अहिंसक आधार देने की प्रस्तावना करते हैं। वह व्यक्तिगत प्रयास (अपरिग्रह) एवं संस्थागत परिवर्तन की ऐसी अहिंसक प्रक्रिया को जन्म देते हैं जिससे एक नैतिक एवं अहिंसक अर्थव्यवस्था का मार्ग प्रशस्त हो सके।

इसी प्रस्थान बिंदु से गाँधीजी उत्पादन पद्धति पर अपना ध्यान केंद्रित करते हैं। इस संबंध में गाँधीजी को मशीन विरोधी, अप्रगतिशील आदि कहा जाता है । गाँधीजी कभी मशीन के विरोधी नहीं रहे उनका आशय मशीन के मूल में निहित लोभ एवं अनियंत्रित लाभ कमाने की आकांक्षा को समाप्त करने से था। उद्योग मंत्रियों के सम्मेलन में भाग लेते हुए उन्होंने मशीन की तीन विशेषताएँ बतायी-

1. *मैं इस शब्द का व्यापक अर्थ में प्रयोग नहीं कर रहा हूँ, बल्कि एक उपकरण के रूप में कर रहा हूँ जो मानव अथवा पशु के श्रम का पूरक होने या उसकी कार्यकुशलता को बढ़ाने के बजाए उसको विस्थापित करने का कार्य करता है। मशीन का यह पहला भेदमूलक लक्षण है।*

2. *इसका दूसरा लक्षण है कि इसकी वृद्धि या विकास की कोई सीमा नहीं है । यह बात मानव श्रम के बारे में नहीं कही जा सकती ।*

3. *उसके ऊपर अपनी ही इच्छा अथवा प्रतिभा सवार मालूम होती है । वह मानव श्रम की विरोधी है।*

... लाखों-करोड़ों लोगों का दमन और शोषण करने के लिए मशीन एक ऐसा दैत्य है जिसका कोई जवाब नहीं है। यदि समाज में सभी लोगों को बराबरी का दर्जा दिया जाना है तो मानव अर्थव्यवस्था में मशीन का कोई स्थान नहीं हो सकता ।" (हरिजन, 25/08/1946, पृ. 281)

मशीनों के संबंध में उनकी दृष्टि बिल्कुल स्पष्ट थी कि मशीन का प्रयोग मनुष्य को विस्थापित करता है, अत: उसका विरोध होना चाहिए। वह मानव को सर्वोपरि मानते हैं और मशीन को उससे नीचे स्थान प्रदान करते हैं। वह चाहते हैं कि मशीन के जरिए मनुष्य को मशीन में परिवर्तित कर दिया है, वह मनुष्य को पुन: अपने मूल स्थान पर प्रतिष्ठित करना चाहते हैं।

अपनी स्थिति को और अधिक स्पष्ट करते हुए वह कहते हैं कि-

"मेरा विरोध यंत्रों के लिए नहीं है, बल्कि यंत्रों के पीछे जो पागलपन चल रहा है उसके लिए है । समय और श्रम की बचत तो मैं भी चाहता हूँ परंतु वह किसी खास वर्ग की नहीं, बल्कि सारी मानव जाति की होनी चाहिए। यंत्रों के पीछे जो प्रेरक कारण है वह श्रम की बचत नहीं है, बल्कि धन का लोभ है। आज की इस चालू अर्थव्यवस्था के खिलाफ मैं अपनी तमाम ताकत लगाकर युद्ध चला रहा हूँ... मेरा उद्देश्य तमाम यंत्रों का नाश करने का नहीं बल्कि उनकी हद बाँधने का है।" (हिंद स्वराज :14)

गाँधीजी इसीलिए यह स्पष्ट करना चाह रहे थे कि इस प्रौद्योगिकी के बारे में लगातार सतर्क रहना जरूरी है और यह आवश्यक हो जाता है कि इसे नियंत्रण में रखा जाए और मनुष्य को केंद्र में रखा जाए । जब वह यंत्रों के पीछे पागलपन के आधार पर तथा यंत्रों के मूल में लोभ की प्रेरणा को आधार बनाकर प्रौद्योगिकी का विरोध कर रहे होते हैं और मानवीय श्रम को उसका उचित स्थान प्रदान करने की बात कह रहे होते हैं तब इसी प्रौद्योगिकीय निर्धारणवाद को नकार रहे होते हैं । न केवल प्रौद्योगिकीय निर्धारणवाद को बल्कि मनुष्य को उपभोक्ता मात्र बना देने, हिंसक उत्पादन व्यवस्था और केंद्रीकरण को भी अस्वीकार कर रहे होते है । यही दृष्टि उन्हें इस बात की ओर ले जाती है कि क्या वास्तव में ऐसी कोई प्रौद्योगिकी संभव हो सकती है जो अहिंसक समाज की ओर ले जा सके? प्रो.नंदकिशोर आचार्य (1995) के अनुसार इस संदर्भ में गाँधीजी मार्क्स से अधिक नैतिक एवं वैज्ञानिक हो जाते हैं। मार्क्स अपनी मानवीय संवेदनाओं के बावजूद भी एक हिंसक एवं केंद्रीकृत उत्पादन प्रणाली (कहना चाहिए पूँजीवादी बेस) पर साम्यवादी समाज (सुपरस्ट्रक्चर)

खड़ा करना चाहते थे जबकि गाँधीजी ने अपने साध्य-साधन एकत्व के आधार पर एक अहिंसक एवं न्यायपूर्ण तकनीक के बेस के आधार पर एक अहिंसक एवं न्यायपूर्ण समाज को खड़ा करने का प्रस्ताव किया। अतएव गाँधीजी ऐसी तकनीक को चुनते हैं जो स्वतंत्रता, मानवीय गरिमा, पर्यावरण एवं समाज को पुष्ट करने वाली हो।

इस प्रौद्योगिकी के विचार में गाँधीजी वृहद उत्पादन की अवधारणा को प्रश्नांकित करते हैं :

> *"मैं पक्के तौर पर अपनी राय जाहिर करना चाहूंगा कि विशाल पैमाने के उत्पादन का उन्माद विश्व–संकट के लिए उत्तरदायी है। एक क्षण के लिए अगर मान भी लें कि मशीनें मानव जाति की सभी आवश्यकताओं को पूरा कर सकती है तो भी इनका कार्य उत्पादन के विशिष्ट क्षेत्रों पर ही केंद्रित होगा और आपको वितरण का नियमन करने के लिए एक जटिल व्यवस्था अलग से करनी होगी। इसके विपरीत, जिस क्षेत्र में जिस वस्तु की आवश्यकता है, अगर वहीं उसका उत्पादन एवं वितरण दोनों किए जाएं तो इनका नियमन स्वयमेव हो जाता है और उसमें धोखाधड़ी की गुंजाइश कम रहती है तथा सट्टेबाजी की तो बिल्कुल ही नहीं।" (हरिजन,* 02/11/1934, पृ. 301-302)

गाँधीजी इस उद्धरण के जरिए पुन: अपनी बात को दृढ़ता से रखते है कि वृहद उत्पादन, लगातार बढ़ती अनावश्यक जरूरतें, वितरण हेतु जटिल व्यवस्था – *एक शब्द में कहें तो उद्योगवाद* - विश्वशांति के लिए ही खतरनाक है। औद्योगीकरण की घोर आलोचना की।

गाँधीजी अपनी प्रौद्योगिकी में मनुष्य–मनुष्य तथा मनुष्य–प्रकृति के बीच एक अहिंसक संबंध की स्थापना का प्रयास करते हैं। वह प्रौद्योगिकी का भी विरोध करते हैं जो श्रम को विस्थापित करती है:

> *"मैं ऐसी मशीनों का कतई हिमायती नहीं हूँ जो या तो बहुत-से लोगों को गरीब बनाकर मुट्ठी भर लोगों को अमीर बनाती है या अनेक लोगों के उपयोगी श्रम को अकारण विस्थापित कर देती है।" (हरिजन,* 22/06/1935, पृ. 146)

ज्ञान शांति मैत्री

मानव की तथा मानव श्रम की प्रतिष्ठा ही वह मुख्य बिंदु है जो प्रौद्योगिकी विरोध का मुख्य आधार है। स्वयं गाँधीजी अपने समय में प्रौद्योगिकी के इस स्वरूप को देख चुके थे। जिसमें हजारों-लाखों लोग मशीन के कारण विस्थापित हो गये थे। प्रौद्योगिकी का नियम ही श्रम का विस्थापन है- इस मूल नियम को स्वीकार करके ही गाँधीजी इसकी आलोचना करते हैं। प्रौद्योगिकी और विकास तथा श्रम में विस्थापन की इस अवधारणा का नवीन रूप प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रो. विजय शंकर व्यास हमें बताते हैं। (आचार्य : 2008)उनके अनुसार वर्तमान विकास एक ***रोजगार विहीन विकास (जॉबलेसग्रोथ)*** की स्थिति में आ रहे हैं जहाँ उत्पादन में वृद्धि के जरिए आर्थिक विकास तो है परंतु रोजगार के अवसरों की उपलब्धता घट रही है। इसे निम्नानुसार भी समझा जा सकता है-

चित्र 3.1 रोजगार विहीन विकास (जॉबलेस ग्रोथ)

यह ऐसा दुष्चक्र है जिसमें वर्तमान विकास तेजी से फँसता जा रहा है। यह एक ओर प्रौद्योगिकीय नियतिवाद का परिणाम है, वहीं दूसरी ओर वर्तमान विकास के दर्शन की एकायामी सोच का भी। क्या वह अर्थव्यवस्था उचित कही जा सकती है जिसमें उसकी श्रमशील जनसंख्या लगातार अपने श्रम से वंचित हो तथा आगे चलकर उत्पादन व वितरण में अपनी भागीदारी खो दें? जब गाँधीजी प्रौद्योगिकी संबंधी अपना चिंतन स्पष्ट करते हैं तो वर्तमान अर्थशास्त्र एवं उसके विकास के दुष्चक्र का पूर्वाभास हमें उनके चिंतन में दिखाई देता है। इसलिए गाँधीजी स्वदेशी एवं शरीर-श्रम की वकालत करते हैं-

> *"रोटी के लिए श्रम का अर्थशास्त्र जीती-जागती जीवन पद्धति है। इसका मतलब यह है कि हर आदमी को अपनी रोटी-कपड़े के लिए शारीरिक श्रम करना होगा। अगर मैं लोगों को रोटी के लिए श्रम का महत्व और उसकी आवश्यकता समझा सकूँ तो रोटी-कपड़े की कमी कभी नहीं पड़ेगी।" (हरिजन*, 07/09/1947, पृ. 316)

अपने प्रौद्योगिकी विमर्श में गाँधी जिस प्रौद्योगिकी को प्रस्तुत करते हैं वह स्वदेशी की अवधारणा है। स्वदेशी की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए कहते हैं-

> *"स्वदेशी वह भावना है जो हमें दूर-दराज के इलाकों को छोड़कर अपने समीपस्थ क्षेत्रों का उपयोग करने और उनकी सेवा करने तक सीमित करती है।... जहाँ तक आर्थिक क्षेत्र का संबंध है मुझे उन चीजों का इस्तेमाल करना चाहिए जिनका उत्पादन मेरे समीपस्थ पडौसी करते हैं और यदि मुझे वहाँ के उद्योगों में कोई कमी दिखाई देती है तो मुझे उन्हें अधिक कार्य-कुशल और पूर्ण बनाने के लिए उनकी सेवा करनी चाहिए।"(स्पीचेज एंड राइटिंग्स ऑफ महात्मा गांधी*, जी.ए. नटेसन एंड कंपनी, मद्रास, 1933, पृ. 336-44)

यह उद्धरण स्वदेशी के अंतर्गत सर्वप्रथम स्थानीयता को महत्व प्रदान करता है। आर्थिक क्षेत्र में इसका आशय है कि स्थानीय स्तर पर उत्पादन एवं उपभोग हो। एक प्रश्न यहाँ उपस्थित होता है कि क्या ऐसा करना या मानना संकीर्णता नहीं कहा जा सकता? यह प्रश्न गाँधीजी के सम्मुख भी था अतएव उन्होंने कहा कि-

ज्ञान शांति मैत्री

"मेरा इस सत्य में अडिग विश्वास है कि व्यक्ति एक ही साथ अपने पडौसियों और मानवता की सेवा कर सकता।" (हरिजन, 23/07/1947, पृ. 79)

वस्तुत: वह यह मानते हैं कि मानवता की सेवा कहीं भी रह कर की जा सकती है। एक भौतिक शरीर होने के कारण हर व्यक्ति की मर्यादा होती है परंतु वह अपने पडौसी की सेवा कर इस कार्य की शुरुआत कर सकता है। सुदूर किसी व्यक्ति की सेवा कर मानवता की सेवा करने के अमूर्त दर्शन की तुलना में स्वदेशी सिद्धांत ज्यादा प्रासंगिक है।

इसके साथ गाँधीजी स्वदेशी की भावना को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि -

'स्वदेशी का यह अर्थ लगाना उसकी व्याख्या को संकुचित करना होगा कि हमें प्रत्येक विदेशी वस्तु का त्याग कर देना चाहिए। '' (यंग इंडिया, 17/06/1926, पृ. 218)

वह स्वदेशी की व्याख्या सेवा के सिद्धांत के रूप में करते हुए बताते हैं कि –

'स्वदेशी का अभियान घृणा फैलाने का अभियान नहीं है। यह निस्स्वार्थ सेवा का सिद्धांत है जिसकी जड़ में विशुद्ध अहिंसा अर्थात् प्रेम है।'' (फ्राम यर्वदा मंदिर, पृ. 66)

इस प्रकार एक प्रौद्योगिकी के रूप में हम स्वदेशी को इस प्रकार बता सकते हैं- ***स्वदेशी वह प्रौद्योगिकी है जो स्थानीय स्तर पर स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति स्थानीय श्रम के द्वारा स्थानीय प्रौद्योगिकी एवं संसाधनों की सहायता द्वारा करती है।***

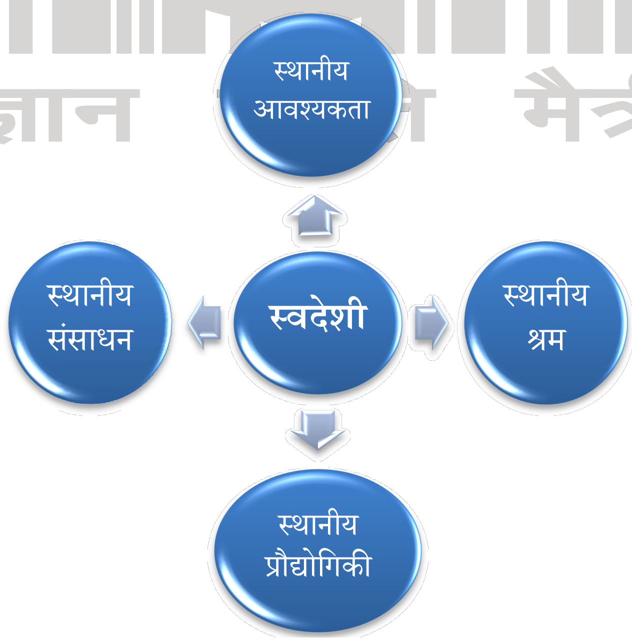

चित्र 3.2 : स्वदेशी की संकल्पना

स्वदेशी का अर्थ यहाँ भारतीय न होकर एक ऐसी विकेंद्रीकृत एवं स्थानीय अर्थव्यवस्था से हो जाता है जो स्थानीय आवश्यकता, श्रम, संसाधन एवं प्रौद्योगिकी द्वारा विकसित होती है। यहाँ विकेंद्रीकरण उत्पादन ,उपभोग दोनों का ही है जो आगे चलकर वितरण एवं स्वामित्व में भी लक्षित होता है।

जब गाँधीजी चरखे एवं खादी को स्वदेशी अर्थव्यवस्था के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत कर रहे होते हैं तो उसके पीछे उनका उद्देश्य शरीर-श्रम की स्थापना एवं विकेंद्रीकरण ही हो जाता है-

''चरखे का संदेश है, मानव जाति की सेवा; इस प्रकार जीना कि दूसरों को कष्ट न पहुँचे'' (यंग इंडिया, 17/09/1925, पृ. 321)

इस सादगी में शरीर-श्रम, अपरिग्रह अनिवार्य रूप से शामिल हो जाते हैं। चरखा सत्ता के केंद्रीकरण एवं शोषण का विरोधी है-

''मुट्ठीभर हाथों में धन और सत्ता के केंद्रीकरण तथा लाखों लोगों के शोषण के लिए मशीन तंत्र के संचालन को मैं पूरी तरह गलत मानता हूँ।... चरखे का अभियान मशीन को अनन्यता एवं शोषण की स्थिति से हटाकर अपने युक्तियुक्त स्थान पर बैठाने का ही एक संगठित प्रयास है।''(यंग इंडिया, 17/09/1925, पृ. 321)

''खादी की मानसिकता का अर्थ है जीवन की आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन और वितरण का विकेंद्रीकरण।'' (गांधी, मो.क.,1948)

इस प्रकार गाँधीजी की स्वदेशी अवधारणा में चरखा व खादी भी विकेंद्रीकरण के माध्यम होते हैं साथ ही वृहद जनता के रोजगार के साधन भी हो जाते हैं। स्वदेशी में चरखे के केंद्रीकरण के लिए भी स्थान नहीं है।यदि चरखे में भी कोई खराबी हो तो उसे स्थानीय स्तर पर ही ठीक किया जाना चाहिए। इस स्वदेशी योजना में बड़े उद्योगों की स्वीकृति है परंतु वह ग्राम आधारित उद्योगों के पूरक होंगे और उनकी सहायता करेंगे और इन पर राज्य का स्वामित्व होगा तथा जन हित में इनका संचालन किया जाएगा।

परमेश्वरी दयाल (2006) ने स्वदेशी के सिद्धांत के तीन आधारभूत तत्व बताएं हैं-

1. *हर वैयक्तिक उपभोक्ता द्वारा इच्छाओं में कमी करना।*

2. *उत्पादित होने वाली वस्तुओं के प्राथमिकता के क्रम में बदलाव ताकि वह पडौस में उत्पन्न हो सके।*

3. *उत्पादक एवं उपभोक्ता के बीच सहयोग एवं पारस्परिकता।*

इनमें से हम दो बिंदुओं की चर्चा ऊपर कर चुके हैं। स्वदेशी सिद्धांत के अंतर्गत अर्थव्यवस्था का विकेंद्रीकरण कर भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था के महत्व को स्वीकारना एवं उसे इस तरीके से पुनर्रचित करना है जिससे कि अहिंसक व्यवस्था बनायी जा सके। वह उत्पादन और उपभोग को आपस में संबंधित करते हुए कहते हैं-

"जब उत्पादन और उपभोग दोनों स्थानीकृत होते हैं तो उत्पादन में अंधाधुंध और किसी भी कीमत पर वृद्धि करने का लालच समाप्त हो जाता है । तब हमारे वर्तमान अर्थतंत्र की सभी अनंत कठिनाईयाँ और समस्याएँ समाप्त हो जाएंगी ।" (हरिजन, 02/11/1934, पृ. 302)

गाँधीजी ऐसे औद्योगीकरण की संकल्पना करते हैं जो सीमित, चयनित और सामाजिक रूप से नियंत्रित था । उसमें एक ओर वृहद पूँजी आधारित उद्योग थे जो राज्य के जरिए जनता द्वारा नियंत्रित थे दूसरी ओर छोटे स्तर के उद्योग थे जो पारिवारिक स्तर पर गाँवों में फैले हुए थे । यह मिश्रित औद्योगीकरण एक अहिंसक समाज की जरूरत है और लोगों की भौतिक एवं नैतिक प्रगति के लिए भी आवश्यक है। सामाजिक एवं आर्थिक विकेंद्रीकरण लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करता है। यह प्रक्रिया अलगाव को कम करती है। यह विकेंद्रीकरण वैयक्तिक स्वतंत्रता एवं सामाजिक उत्तरदायित्व का बेहतरीन सम्मिश्रण है । गाँधीजी के समक्ष भारत के सात लाख गाँवों के विकास की चिंता थी अत: वह उस प्रौद्योगिकी को स्वीकार करना चाहते हैं जो स्थानीय एवं श्रम को बचाने वाली हो-

"मैं ऐसे सीधे-सादे औजारों, उपकरणों और यंत्रों का स्वागत करता हूँ जो व्यक्ति के श्रम को बचाते हैं और लाखों झोपड़ियों के काम के बोझ को हल्का करते हैं।" (यंग इंडिया, 17/06/1926, पृ. 218)

अत: गाँधी ***आधुनिक प्रौद्योगिकी द्वारा वृहद उत्पादन (मॉस प्रोडक्शन) को लोगों द्वारा वृहद उत्पादन (प्रोडक्शन बॉय मासेज) में तब्दील करते हैं*** और इस प्रौद्योगिकी द्वारा स्वयमेव उत्पन्न केंद्रीकरण को स्थानीय प्रौद्योगिकी के जरिए विकेंद्रीकरण से प्रतिस्थापित करते हैं। उनकी दृष्टि में आधुनिक प्रौद्योगिकी द्वारा उत्पन्न उद्योगवाद मानव जाति के लिए अभिशाप है ।साथ ही आशा करते हैं कि इस उद्योगवाद को जन्म देने वाला एवं उससे प्रभावित होने वाला यूरोप इससे बचने का रास्ता निकाल लेगा और यह रास्ता सादगी एवं ग्राम जीवन को मजबूत करने की ओर ले जाएगा ।यहाँ स्पष्ट करना जरूरी है कि जब गाँधी ग्राम जीवन को मजबूत करने; उसे मान्यता प्रदान करने की बात कह रहे होते हैं जो उनका आशय शरीर-श्रम आधारित व्यवस्था से होता है।

ज्ञान शांति मैत्री

स्वदेशी से जुड़ी एक अन्य महत्वपूर्ण बात यह भी है कि इस प्रौद्योगिकी में अलगाव (एलिएनेशन) की भावना समाप्त होती है । कार्ल मार्क्स ने अलगाव की भावना को पूँजीवादी समाज व अर्थव्यवस्था के अनिवार्य परिणाम के रूप में देखा था। स्वयं गाँधीजी ने पूँजीवाद को एक बुराई के रूप में देखा था। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में श्रमिक उत्पादन प्रक्रिया में उत्पादित वस्तु के किसी एक अंश को बनाता है, यह प्रक्रिया बार-बार दोहराई जाती है, यंत्रीकरण की तरह; इस वस्तु के उपयोगकर्त्ता से उसका संबंध नहीं होता; इस वस्तु के उत्पादन, वितरण, कीमत इत्यादि को तय करने में उसकी कोई भूमिका नहीं होती। इन्हीं सभी प्रक्रियाओं का परिणाम अलगाव के रूप में सामने आता है। स्वदेशी प्रौद्योगिकी में व्यक्ति पूरी वस्तु का उत्पादन करता है; यह प्रक्रिया बार-बार दोहराई जाती है परंतु वह उसे सृजनात्मक संतुष्टि देती है; इस उत्पादित वस्तु के उपभोगकर्त्ता से उसका सीधा संबंध होता है क्योंकि उपभोग स्थानीय होता है; वस्तु के उत्पादन, वितरण, कीमत निर्धारण में उसकी मुख्य भूमिका होती है । इस प्रकार हम देख सकते हैं कि स्वदेशी अलगाव की समस्या का समाधान भी उसी उत्पादन व्यवस्था में स्थानीय प्रौद्योगिकी के प्रयोग से करती है। स्वदेशी का

एक अन्य पक्ष यह भी है कि स्थानीय संसाधन, श्रम एवं तकनीक के जरिए ही उत्पादन के साधनों पर आम जनता का वास्तविक नियंत्रण कायम रह सकता है। उत्पादन के साधनों को आम जनता के नियंत्रण में लाकर गाँधीजी वास्तव में एक विकेंद्रीकृत अर्थव्यवस्था, राजनीतिक एवं सामाजिक व्यवस्था की स्थापना कर रहे होते हैं। आगे चलकर ई.एफ. शूमाकर, इवान इलिच, एरिक फ्रॉम जैसे विद्वानों ने गाँधीजी को प्रेरणा स्रोत मानकर 'मध्यवर्ती', 'समुचित' प्रौद्योगिकी की बात कही।

शुमाकर के अनुसार स्थायित्व के अर्थशास्त्र- *कहना चाहिए अहिंसक अर्थशास्त्र*- के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी का पुनरभिविन्यास किया जाना चाहिए तथा ऐसी पद्धतियाँ और उपस्कर चाहिए जो-

1. *इतने सस्ते हों कि लगभग प्रत्येक व्यक्ति की पहुँच के भीतर हो;*
2. *छोटे पैमाने पर काम करने के लिए उपयुक्त हों; और*
3. *मनुष्य की सृजनात्मक वृत्ति के अनुकूल हो।*

इन्हीं तीन बातों से अहिंसा की और मनुष्य तथा प्रकृति के बीच ऐसे संबंधों की स्थापना संभव है जिसमें स्थायित्व सुनिश्चित हो सकेगा।

प्रसिद्ध विद्वान प्रो.डी.पी.मुखर्जी (1954) ने अपने लेख *'महात्मा गाँधीज व्यूज ऑन मशीन्स एण्ड टेक्नालॉजी'* में उनके विचारों को विश्लेषित करते हुए लिखा कि वह मशीन एवं मशीनी सभ्यता का विरोध करते हैं परंतु मशीन के 'उचित' उपयोग पर भी बल देते हैं। 'उचित' उपयोग का सकारात्मक अर्थ मानवता के लिए प्रेम था और नकारात्मक अर्थ में सत्ता केंद्रीकरण, शहरीकरण, बेरोजगारी, राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक शोषण की आलोचना से था। वह कहते हैं कि गाँधीजी क्रांतिकारी थे क्योंकि एक समाज विज्ञानी की तरह उन्होंने भारतीय वास्तविकता और इसकी स्वभावगत परिवर्तनशीलता को जान कर नये मूल्यों के निर्माण की बात कही। गाँधीजी अतीत में नहीं जाते, वह प्राच्यविद नहीं है वह केवल स्रोतों एवं उनकी जड़ों तक पहुँचना चाहते है क्योंकि जितनी गहराई में आप जाएंगे, उतने ही क्रांतिकारी आप होंगे।

ज्ञान शांति मैत्री

3.3 सारांश

स्वदेशी के जरिए गाँधी जी अर्थव्यवस्था में सम्पूर्ण उत्पादन ढांचे को बदल डालने का प्रस्ताव करते हुए एक आत्मनिर्भर एवं स्वावलंबी आर्थिक क्षेत्र को अपना उद्देश्य बनाते हैं जो अपने पड़ौसियों के साथ परस्परावलंबन का जीवन व्यतीत कर सके। स्वावलंबी गाँव आर्थिक विकेंद्रीकरण का ही रूप है जिसका आधार स्थानीयता एवं उस पर आधारित प्रौद्योगिकी संसाधन हैं। इसका उद्देश्य लोगों की सेवा करना है। इस व्यवस्था में उत्पादन, उपभोग स्थानीय होने के कारण मालिक, श्रमिक और उपभोक्ता तीनों एक ही हो जाते है। यही इसकी विशिष्टता है। गाँधीजी के लिए सत्य व अहिंसा जीवन का मूलभूत नियम होने के कारण आर्थिक विचार भी इसी उद्देश्य की प्राप्ति के साधन हो जाते हैं। एक नैतिक प्राणी के रूप में मनुष्य की कल्पना करने के कारण आर्थिक प्रक्रियाएँ भी नैतिक उत्कर्ष का साधन हो जाती है और श्रम को आधार बनाकर एक समतामूलक समाज की स्थापना में योगदान देती हैं।

3.4 बोध प्रश्न

1. स्वदेशी की संकल्पना को स्पष्ट कीजिए।
2. तकनीक पर गांधीजी के विचार का उल्लेख कीजिए।
3. स्वदेशी कं अंतर्गत चरखा और खादी के स्थान पर प्रकाश डालिए।
5. स्वदेशी की प्रासंगिकता को स्पष्ट कीजिए।

3.5 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

- दीवान, रोमेश एवं गिडवानी सुशीला.(अगस्त 1979). 'एलिमेंट्स इन गांधियन इकानॉमिक्स', *गांधी मार्ग*, खंड-1, अंक-5,पृ. 248-258
- धवन, प्रो.गोपीनाथ(1946).द *पॉलिटिकल फिलासफी ऑफ महात्मा गाँधी*. बॉम्बे:पाप्युलर बुक डिपो. पृ. 79
- दयाल, परमेश्वरी(2006).*गांधियन थ्योरी ऑफ सोशल रिकंस्ट्रक्शन*. नई दिल्ली:एटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स.पृ. 206
- मुखर्जी, डी.पी.(1954). महात्मा गांधीज व्यूज ऑन मशीन्स एण्ड टेक्नालॉजी. *इंटरनेशनल सोशल साइंस बुलेटिन*. यूनेस्को.खंड-5,अंक-3,पृ.411 – 424
- आचार्य, प्रो. नंदकिशोर(1995).*सभ्यता का विकल्प: गांधी दृष्टि का पुनराविष्कार*, बीकानेर:वाग्देवी प्रकाशन. पृ. 47
- देखें, आचार्य, नंदकिशोर(2008).*संस्कृति की आर्थिकी*. बीकानेर:सूर्यप्रकाशन मंदिर.पृ. 51-52
- गांधी, मो.क.,(1948) *कान्सट्रक्टिव प्रोग्राम इट्स मीनिंग एंड प्लेस*.अहमदाबाद:नवजीवन पब्लिशिंग हाऊस.पृ. 12

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई 4 बुनियादी शिक्षा

इकाई रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 बुनियादी शिक्षा का अर्थ एवं आयाम
4.3 सारांश
4.4 बोध प्रश्न
4.5 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप –

- महात्मा गांधी के शिक्षा संबंधी विचारों से परिचित हो सकेंगे।
- बुनियादी शिक्षा की अवधारणा को रेखांकित कर सकेंगे।
- बुनियादी शिक्षा के आयामों को व्याख्यायित कर सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

महात्मा गांधी को रूढ़ अर्थों में शिक्षाशास्त्री कहना कठिन है परन्तु शिक्षा जगत को उनकी देन 'बुनियादी तालीम' बहुत महत्वपूर्ण है। भारतीय आकांक्षाओं के मुताबिक एक नवीन शिक्षा पद्धति को प्रस्तुत करना उनकेसाहस का परिचय है। गाँधीजी के लिए भारत का अर्थ अन्य समकालीन विचारकों/राजनीतिज्ञों/प्रशासकों की तरह केवल शहरी भारत नहीं था अपितु भारत का अर्थ ग्रामीण भारत था। 'बुनियादी तालीम' के रूप में एक ऐसी शिक्षा पद्धति प्रस्तुत हुई जिसमें इस ग्रामीण भारत की आकांक्षाएँ एवं भागीदारी सुनिश्चित हुई, ग्रामीण भारत की यह भागीदारी ब्रिटिश शिक्षा पद्धति के कारण अभी तक नदारद थी।

1937 में बुनियादी तालीम का उद्भव एक अकस्मात घटना नहीं है अपितु यह गाँधीजी के सतत चिंतन का परिणाम है। 1937 के बुनियादी तालीम संबंधी अधिवेशन से बहुत पहले ही उन्होंने शिक्षा के बुनियादी प्रयोजन पर विचार करना प्रारंभ कर दिया था। उनकी आत्मकथा 'सत्य के मेरे प्रयोग अथवा आत्मकथा'(2003) में शिक्षा संबंधी उनकी बैचेनी एवं प्रयोगों को इसी संदर्भ में देखा जाना चाहिए। विशेषतः टॉलस्टॉय फॉर्म पर उनके शिक्षा संबंधी प्रयोग बुनियादी तालीम से जुड़े महत्वपूर्ण संदर्भ हैं।

4.2 बुनियादी शिक्षा का अर्थ एवं आयाम

गाँधीजी के शिक्षा संबंधी विचारों का सावधानीपूर्वक अध्ययन करने पर हम यह कह सकते हैं कि औपनिवेशिक शिक्षा की उन्होंने तीन प्रकार से आलोचना की :

1. **औपनिवेशिक ढाँचा** - उन्होंने शिक्षा के औपनिवेशिक ढाँचे की कड़ी आलोचना की। ब्रिटिश शिक्षा व्यवस्था मूलतः बाबूगिरी के लिए जवानों की फौज तैयार करती थी। प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा का पूरा ढाँचा इसी विश्वविद्यालय की शिक्षा के आधार पर तैयार किया गया था। इसी कारण बहुसंख्यक भारतीय जनता इस शिक्षा से वंचित रही। अंग्रेजों ने अपने शासन से पूर्व के शिक्षा के विकेन्द्रित एवं सशक्त ढाँचे को तोड़ा।

2. **औपनिवेशिक शिक्षा की अन्तर्वस्तु** - गाँधीजी ने लगातार इस शिक्षा के बुनियादी प्रयोजन की आलोचना की। यह स्पष्ट किया कि इस शिक्षा प्रणाली में भारतीयता को स्थान नहीं दिया गया था। सम्पूर्ण शिक्षा भारतीय संदर्भों एवं परिघटनाओं से दूर है। देश की समकालीन समस्याओं, अधिसंख्यक जनता के दैनिक जीवन की समस्याओं से इस शिक्षा का कोई लेना-देना नहीं है। इस शिक्षा की अन्तर्वस्तु वस्तुतः एक विशेष प्रकार की नौकरी के लिए विद्यार्थी को तैयार करती है। इस शिक्षा पद्धति से निकला विद्यार्थी अपने समाज से कटा और उसे हेय मानने वाला होता है। यह शिक्षा केवल पुस्तकीय ज्ञान तक अपने का सीमित करती है। पुस्तक केन्द्रिता के कारण यह केवल एकपक्षीय बौद्धिक कसरत रह जाती है। जबकि शिक्षा का वास्तविक अर्थ निरतंर शंका, शुद्ध जिज्ञासा, प्रज्ञा, भाव एवं चरित्र निर्माण से है।

3. **मानसिक गुलामी एवं हिंसा** - गाँधीजी ने ब्रिटिश शिक्षा पद्धति को इसके सम्पूर्ण रूप में मानसिक गुलामी के औजार बतौर देखा। अपनी शिक्षा पद्धति के जरिए ब्रिटिश - इवान ईलिच के शब्दों में कहे तो शिक्षा के गुप्त एजेंडे में -अपनी श्रेष्ठता तथा भारतीयों की हीनता को मानसिक तौर पर भारतीयों में भरना चाहते थे। गाँधीजी ने इस मानसिक गुलामी के घातक परिणामों को देखा था। साथ ही यह शिक्षा पद्धति में अनिवार्यतः श्रेष्ठता और हीनता का भाव निहीत होने के कारण यह हिंसा भाव को जन्म देती है। मनुष्य मात्र में विभाजन कर मनुष्य को मनुष्य के खिलाफ खड़ा करती है। अपनी दार्शनिक आधारभूमि साम्राज्यवादी होने के कारण प्रकृति के प्रति भी हिंसक है।

इन बिंदुओं से यह स्पष्ट है कि गाँधीजी के लिए यह शिक्षा पद्धति अस्वीकार्य थी। अतएव वह लगातार इसके विकल्प की खोज में थे। शिक्षा संबंधी उनके इस विकल्प पर विचार करने से पहले इसी विचार से जुड़ी अन्य बातों पर दृष्टिपात करना आवश्यक है। भारतीय संदर्भ में गाँधीजी की सशक्त उपस्थिति सर्वविदित है। अपने सत्य व अहिंसा के सिद्धांतों को आधार बना अपने व्यावहारिक उदाहरण प्रस्तुत कर इन सिद्धांतों को सार्वजनिक एवं व्यक्तिगत जीवन में उपयोगी सिद्ध किया। उनके लिए अहिंसा केवल भावनात्मक धारणा ही नहीं अपितु एक वैज्ञानिक एवं तार्किक सिद्धांत भी है। उनके अनुसार यदि सृष्टि का नियम प्रेम का नियम है- *जैसा कि वह है* - तो वैज्ञानिक दृष्टि से उचित यही है कि इस प्रेम के नियम के अनुसार ही जीवन संचालित किया जाए। इसी अहिंसा को सिद्धांत बना कर गाँधीजी ने दक्षिणी अफ्रीका में सत्याग्रह का सफल प्रयोग किया। वैज्ञानिक आधार एवं विभिन्न तर्कों से पुष्ट इसी अहिंसा को उन्होंने सार्वजनिक एवं व्यक्तिगत जीवन में लागू करने का प्रयास किया। यह अहिंसा दृष्टि ही राजनैतिक क्षेत्र में सत्याग्रह, आर्थिक क्षेत्र में स्वदेशी, सांस्कृतिक क्षेत्र में सर्वधर्म समभाव, सामाजिक जीवन में एकत्व तथा शिक्षा क्षेत्र में बुनियादी तालीम के रूप में सामने आती है।

इस अहिंसा दृष्टि का सार मम तथा ममेतर/ स्व और पर के बीच प्रेमपूर्ण एवं सृजनात्मक संबंधों में निहीत है। इस ममेतर/पर में केवल मनुष्य ही नहीं अपितु सम्पूर्ण सृष्टि शामिल है। इस प्रकार अहिंसा दृष्टि का व्यावहारिक आधार व्यक्ति द्वारा न केवल अन्य व्यक्ति अपितु सम्पूर्ण सृष्टि के साथ प्रेमपूर्ण संबंध स्थापित करना है। इसी

दृष्टि के आधार पर गाँधीजी के सत्याग्रह के दर्शन को समझा जा सकता है। वस्तुतः गाँधीजी के जीवन का सम्पूर्ण सार अहिंसा पर आधारित एक मानवीय सभ्यता का निर्माण करना है। 1931 में लंदन में भारतीय विद्यार्थियों की सभा में गाँधीजी द्वारा कहा गया निम्नलिखित कथन उनके समस्त विचारों को समझने का प्रस्थान बिंदु है -

'' *मुझे अपने देशवासियों की पीड़ाओं के निवारण से भी ज्यादा चिन्ता मानव-प्रकृति के बर्बरीकरण को रोकने की है।*''(उद्धृत,आचार्य:1995)

बुनियादी तालीम का यही वैचारिक आधार है या कहना चाहिए कि यही अहिंसा दृष्टि शिक्षा क्षेत्र में बुनियादी तालीम के रूप में सामने आई है।

गाँधीजी ने शिक्षा को सामाजिक पुनर्रचना के लक्ष्य को प्राप्त करने का साधन माना। भारतीय आकांक्षाओं के मुताबिक शिक्षा की नवीन पद्धति पर जोर दिया। उनका पूरा जोर शिक्षा को समाज की हकीकत के साथ जोड़ने का रहा। उन्होंने शिक्षा को गरीब व्यक्ति के नजरिए से देखा और इस बात पर गहराई से विचार किया कि भारत में ऐसी शिक्षा पद्धति लागू की जानी चाहिए जो समाजोन्मुखी, उपयोगी तथा सभी की पहुँच में हो। बुनियादी तालीम इसी का प्रत्युत्तर थी। गाँधीजी ने शिक्षा का व्यापक अर्थ लिया था। ब्रिटिश शिक्षा की भाँति वह शिक्षा को न तो साक्षरता मात्र मानते थे और न ही उसका अंतिम लक्ष्य नौकरी। जीवन को सम्पूर्णता में देखने के कारण ही उनके यहाँ शिक्षा भी इसी अहिंसामूलक, शोषणरहित एवं स्वतंत्र समाज की प्राप्ति का साधन हो जाती है।

गाँधीजी ने शिक्षा को स्वराज के साथ जोड़ कर देखा और 1905 में ही यह स्पष्ट कर दिया था कि शिक्षा के प्रति उनकी दृष्टि क्या है :

''*देश में सच्ची जरूरत शिक्षा की है। शिक्षा का अर्थ ककहरा सीख कर बैठ जाना नहीं है बल्कि यह जानना है कि हमारे अधिकार क्या हैं ,यह समझना कि अधिकारों के साथ हमारे उत्तरदायित्व और कर्त्तव्य क्या हैं।*'' (इंडियन ओपिनियन, 16.12.1905)

एक अन्य उदाहरण बुनियादी तालीम और स्वराज के बीच के गहरे संबंध को और स्पष्ट कर देता है:

''*सच्चा स्वराज मुट्ठी भर लोगों द्वारा सत्ता प्राप्ति से नहीं आएगा, बल्कि सत्ता के दुरूपयोग किए जाने की सूरत में, उसका प्रतिरोध करने की जनता की सामर्थ्य विकसित होने से आएगा। दूसरे शब्दों में, स्वराज जनता को सत्ता का नियमन तथा नियंत्रण करने की अपनी क्षमता का विकास करने की शिक्षा देने से आएगा।*''(यंग इंडिया, 29.01.1925)

इन दो उद्धरणों से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि बुनियादी तालीम की पृष्ठभूमि का आयाम कितना व्यापक है।शिक्षा का नजरिया एक स्वतंत्र, विवेकी एवं जिम्मेदार नागरिक का निर्माण करना है। भारतीय संदर्भ में यह आधार अपने आप में बहुत महत्वपूर्ण है। इसीलिए गाँधीजी ने जब बुनियादी तालीम की कल्पना की तब स्वराज के प्रति उसके संबंध उनके मन में बिल्कुल स्पष्ट थे कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो सत्याग्रही हो। बुनियादी तालीम का संबंध जहाँ एक ओर स्वराज की प्राप्ति एवं उसे बनाए रखना है वहीं दूसरी ओर इसका लक्ष्य ग्रामीण भारत - जो गाँधीजी के अनुसार वास्तविक भारत है - को शिक्षित करना भी है।

बुनियादी तालीम का गहन अध्ययन करें तो हम उसकी निम्नलिखित कुछ आधारभूत विशेषताओं को समझ सकते हैं :

1. 07-14 वर्ष समूह के बच्चे/बच्चियों हेतु मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा।

2. मातृभाषा के जरिए शिक्षण।

3. उपयोगी हस्तशिल्प/उद्योग के जरिए शिक्षा साथ ही साथ जहाँ तक संभव हो सके हस्तशिल्प/उद्योग

2 स्थानीय वातावरण के अनुकूल हो।

4. अनिवार्य शारीरिक श्रम।

6. शिक्षा का स्वावलम्बी होना।

7. व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास।

इन्हीं विशेषताओं के आधार पर बुनियादी तालीम का प्रारंभिक ढाँचा खड़ा किया गया, बाद में इसमें पूर्व-बुनियादी और उत्तर-बुनियादी तालीम पक्ष को भी शामिल किया गया।

गाँधीजी द्वारा प्रस्तुत बुनियादी तालीम एक मानवीय संस्कृति की आधारभूत जरूरत को पूरा करने का प्रयास करती है। वह मनुष्य की रचनात्मकता और समाज के मूलभूत उद्योग-धंधों के बीच करीबी रिश्ते को समझते थे। उनके अनुसार शिक्षा किसी विशेष वर्ग (Class) के लिए नहीं बल्कि जनसमुदाय (Masses)के लिए सर्वसुलभ होनी चाहिए। इसीलिए वह बुनियादी तालीम के अंतर्गत शिक्षा को मुफ्त एवं अनिवार्य बनाने के पक्षधर हैं।

मातृभाषा में शिक्षण पर गाँधीजी का प्रारम्भ से जोर रहा। हर शिक्षाशास्त्री इस तर्क को स्वीकार करता है कि बच्चे/बच्चियों का प्रारम्भिक शिक्षण मातृभाषा में होने से व्यक्तित्व विकास ज्यादा बेहतर तरीके से होता है। मातृभाषा शिक्षण दो तरीके से महत्वपूर्ण है :

1. मातृभाषा में शिक्षण विद्यार्थी को उसकी संस्कृति, समाज से सीधा जोड़ता है। यह जुड़ाव एक सामाजिक एकत्व को उत्पन्न करता है। विद्यार्थी अपनी समृद्ध विरासत से जुड़ता है। वह अनुभव करता है कि मातृभाषा में भी ज्ञानार्जन संभव है। यह उसमें आत्मसम्मान का भाव पैदा करता है।

2. मातृभाषा में शिक्षण कर विद्यार्थी मानसिक गुलामी के उस चंगुल से दूर होता है जिसमें विदेशी भाषा उसे अपने शिक्षण के जरिए निम्न या दोयम दर्जे का बनाने पर जोर देती है।

बुनियादी तालीम द्वारा शारीरिक श्रम की अनिवार्यता एवं उद्योग-धंधे द्वारा शिक्षा प्रदान करना गहरे स्तर पर भारतीय वातावरण की आवश्यकता थी। उद्योग/हस्तशिल्प द्वारा शिक्षा ग्रामीण भारत की एक हकीकत थी। बुनियादी तालीम में उद्योग/हस्तशिल्प द्वारा शिक्षा केवल उन्हीं की शिक्षा नहीं है बल्कि वह उस उद्योग से जुड़े तमाम ज्ञान को भी सीखता है। विद्यार्थी कताई-बुनाई के साथ-साथ कपास की खेती, खेती के लिए आवश्यक सामग्री- मिट्टी, नमी, प्रकाश, पानी, वातावरण इत्यादि, उत्पादन, वितरण, इतिहास, अर्थव्यवस्था, सामाजिक भूमिका,गणित इत्यादि का भी ज्ञान अर्जित करता है। बुनियादी तालीम के विद्यार्थी समाज में विद्यमान आस-पास के लोगों के पेशे के जरिए सीखते हैं। इस दौरान समाज की आवश्यकता,सामाजिक हितों, समाज के अन्तर्सम्बन्धों को जानता और सीखता है। प्रत्यक्ष अनुभव से अर्जित विद्यार्थी की यह सामाजिक भूमिका उसे समाज में एक सामाजिक रूप से बेहतर जिम्मेदार नागरिक बनाती है और सहयोगमूलक दृष्टिकोण प्रदान करती है। गाँधीजी ने उद्योग-धंधों के जरिए शिक्षा का प्रस्ताव कर पुस्तक-केन्द्रित प्रणालीको नकारा, वहीं समाज के यर्थाथ अनुभव को ज्यादा प्रामाणिक मानकर ज्ञान का स्रोत बताया। वस्तुतः बुनियादी तालीम में सिद्धांत और व्यवहार, अमूर्तता और वास्तविकता पर एक साथ जोर दिया गया है।

गाँधीजी द्वारा जब उद्योग-धंधे द्वारा शिक्षण को पाठ्यक्रम में अनिवार्य रूप से जोड़ा जाता है तब उन्हें मानवीय

प्रगति - विशेष तौर पर तकनीकी प्रगति - से पीछे की ओर मुड़ने वाला कहा जाता है। यह आलोचना इसलिए उचित नहीं की जा सकती क्योंकि गाँधीजी तकनीक के विरोधी नहीं थे। उन्होंने जीवन भर तकनीक संबंधी प्रयोग किए। यह अवश्य है कि उनके तकनीक संबंधी प्रयोग 'जनसमुदाय' के हितों से जुड़े होते थे। ग्रामोद्योग, हस्तशिल्प, खादी, चरखा,खेती, स्वास्थ्य इत्यादि में उन्होंने अनवरत प्रयोगों को प्रोत्साहित किया। इसके पीछे लक्ष्य बहुसंख्यक ग्रामीण जनता के हित संवर्धन हेतु तकनीक को ढालना एवं विकसित करना था जो कि स्थानीय जरूरतों को पूरा कर सके। बुनियादी तालीम में उद्योग/हस्तशिल्प के जरिए शिक्षण विद्यार्थियों को एक ओर वास्तविक सामाजिक जरूरतों को समझने योग्य बनाता है वहीं 'विकास', 'तकनीकी प्रयोग' इत्यादि विचारों की समाज सापेक्ष व्याख्या करने में सहायता करता है।

बुनियादी तालीम के अंतर्गत शारीरिक श्रम की अनिवार्यता इसके सामाजिक पुनर्रचना पहलू की सर्वाधिक सशक्त अभिव्यक्ति है। शारीरिक श्रम की अनिवार्यता बौद्धिक एवं शारीरिक श्रम के बीच के भेद को समाप्त करने का सशक्त साधन है। अभिजात्य तथा जनसाधारण के बीच के भेद को समाप्त करने का यह क्रांतिकारी साधन है। एक समतामूलक समाज की स्थापना को इस अवधारणा से बहुत बल मिलता है कि उसके सभी नागरिक समान रूप से शारीरिक श्रमपूर्ण जीवन यापन करें। बौद्धिक एवं शारीरिक श्रम के बीच का यह भेद समाप्त करना मानव समता के लिए बहुत बड़ी पहल थी। शारीरिक श्रम के प्रति सम्मान हर विद्यार्थी को भारत के मेहनतकश किसानों एवं मजदूरों के संघर्षों के प्रति संवेदनशील करता है।

यहाँ यह द्रष्टव्य है कि गाँधीजी शारीरिक श्रम को अनिवार्य बनाकर अपने आप को वामपंथी कहलाए जान के करीब ले आते हैं। वह इस अर्थ में वामपंथी कहे जा सकते हैं कि विभिन्न 'वर्ग' के सभी लोगों के लिए श्रम अनिवार्य है। मालिक-मजदूर के बीच भेद श्रम की हीनता से जुड़ा है, यह हीनता ही शोषण को जन्म देती है। तत्कालीन भारतीय समाज में यह दृष्टिकोण तो और भी ज्यादा क्रांतिकारी था। वर्ण-व्यवस्था जैसी घृणित संस्था के मूल में श्रम के प्रति हेय दृष्टि भी अपना कार्य करती है। शारीरिक श्रम करने वाला जनसमूह स्वयमेव ही निम्नजाति का और हेय हो जाता है। उनका श्रम चाहे सामाजिक दृष्टि से कितना भी महत्वपूर्ण क्यों न हो परन्तु शारीरिक श्रम के प्रति हेय दृष्टि उन्हें सामाजिक अनुक्रम में निम्न ही मानती है।गाँधीजी ने इस घृणित व्यवस्था के मूल में निहीत इस तथ्य को काफी बारीकी से जानाः

''*शारीरिक श्रम को शिक्षा से दूर रखने के कारण हम ग्रामीण उद्योग-धंधों को हलका समझने के अभ्यस्त हो गए हैं। शारीरिक श्रम को कुछ नीचे दर्जे का काम समझा जाने लगा और वर्णाश्रम की भीषण विकृति के कारण हम लोग कतैयों, जुलाहों,बढ़ई और मोचियों को नीची जाति का और सर्वहारा मानने लगे।*''(हरिजन, 18.09.1397)

अतएव गाँधीजी ने शारीरिक श्रम को अनिवार्य बनाया। जिससे सभी के मन में श्रम के प्रति सम्मान एवं संवेदनशीलता उत्पन्न हो तथा श्रम की गरिमा के अनुसार सम्मान हो। हम देख सकते हैं कि बुनियादी तालीम अपनी विशिष्टता के कारण सामाजिक पुनर्रचना का सशक्त औजार बनती है।

एक और बात महत्वपूर्ण है कि गाँधीजी द्वारा बुनियादी तालीम में शारीरिक श्रम को अनिवार्य किया गया, वहीं 20वीं शताब्दी के चीन के एक अन्य महत्वपूर्ण ऐतिहासिक व्यक्तित्व माओ ने भी जब अपने देश के मुताबिक शिक्षा पद्धति को प्रस्तुत किया तब शारीरिक श्रम को अनिवार्य बनाया। उनके यहाँ शारीरिक श्रम एक ओर स्थानीय जरूरतों के लिहाज से जरूरी था तो दूसरी ओर यह विद्यार्थियों में 'सर्वहारा' के प्रति

संवेदनशीलता जागृत करने के लिए भी आवश्यक माना गया। गाँधीजी और माओ के वैचारिक आधार चाहे जो भी हो परन्तु श्रम की गरिमा को इन दोनों ने अपने शिक्षा संबंधी विचारों में शामिल किया है।

जहाँ तक शिक्षा के स्वावलम्बी होने का प्रश्न है, इस पर गाँधीजी का विचार स्पष्ट था कि एक स्वावलम्बी शिक्षा ही स्वावलम्बी शिक्षार्थी का जन्म दे सकती है। यह तर्क उसी तरह है जैसे कि अहिंसक समाज की रचना अहिंसक साधनों द्वारा ही की जा सकती है। शिक्षा व्यवस्था के स्वावलम्बन का अर्थ बहुत गहरा है।
स्वावलम्बन का अर्थ किसी भी सत्ता से स्वतंत्रता की रक्षा हो जाता है। यह स्वतंत्रता ही किसी भी शिक्षा व्यवस्था के लिए मूलभूत जरूरत होती है। ब्रिटिश शासन के दौरान शिक्षण संस्थानों के सत्ता अधीन तथा केन्द्राभिमुखी होने के प्रत्यक्ष उदाहरण गाँधीजी के समक्ष थे। शिक्षा व्यवस्था के परावलम्बी होने के कारण वह सत्ता की पिछलग्गू एवं अनुचर बनी रही। गाँधीजी के अनुसार शिक्षा का व्यापक लक्ष्य एक स्वतंत्रचेता, विवेकी व्यक्तित्व का निर्माण करना है अतएव स्वयं शिक्षा व्यवस्था का स्वावलम्बी होना जरूरी है।
अहिंसक समाज की स्थापना करने के अपने लक्ष्य को पूरा करने के लिए गाँधीजी ने जीवन की सम्पूर्णता को दृष्टिगत रखते हुए सत्य एवं अहिंसा संबंधी प्रयोग कर नवीन सिद्धांतों का प्रतिपादन किया। शिक्षा समाज में मानवीय मूल्यों के प्रति सकारात्मक परिवर्तन ला कर ही सामाजिक पुनर्रचना को संभव बनाती है। इसीलिए बुनियादी तालीम में व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास - शिक्षार्थी के बौद्धिक, भावनात्मक एवं नैतिक विकास पर - बल दिया गया। जैसा कि सर्वविदित है कि गाँधीजी ने 3 R (Reading , Writing and Arithmetic) के स्थान पर 3 H (Heart, Head and Hand) को प्रस्तावित किया। साथ ही शिक्षा को दैनिक जीवन से जोड़ने का प्रयत्न किया। गाँधीजी के अनुसार :
''*मनुष्य न केवल बुद्धि है, न निपट पाशविक शरीर और न केवल हृदय अथवा आत्मा। समग्र मानव इन तीनों के उचित और सामन्जस्यपूर्ण योग से ही बनता है और शिक्षा की सच्ची योजना में इसी का समावेश होना चाहिए।*'' (हरिजन, 08.05.1937)

4.3 सारांश

बुनियादी तालीम इस मायने में क्रांतिकारी है कि यह समाज और विद्यालय के बीच की खाई को खत्म करती है तथा सामाजिक पुनर्रचना में भागीदारी करती है। यहाँ सारा समाज ही विद्यालय हो जाता है। बुनियादी तालीम में विद्यालय समाज के भीतर कोई अलग - थलग स्पन्दहीन अंग नहीं है बल्कि वह समाज को स्पन्दशील बनाने वाला अंग हो जाता है और समाज की पुनर्रचना अहिंसा के जरिए करने का साधन बनता है।
इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि बुनियादी तालीम महात्मा गाँधी की एक महत्वपूर्ण देन है। बुनियादी तालीम की सफलता के लिए जरूरी है कि उसे उसके मूलभूत आधारों के साथ सम्पूर्णता में लागू किया जाए। एक अहिंसक समाज यदि लक्ष्य है तो उसे प्राप्त करने का एक रास्ता बुनियादी तालीम से होकर गुजरता है। हमें यह तय करना है कि हम एक अहिंसक समाज को प्राप्त करना अपना लक्ष्य बनाते हैं या नहीं अगर हाँ तो हमें बुनियादी तालीम के अनुकूल अर्थव्यवस्था, राज्य सत्ता और सामाजिक वातावरण के लिए खुद को तैयार करना होगा।

4.4 बोध प्रश्न

1. पाश्चात्य शिक्षा पद्धति के दोष स्पष्ट कीजिए।
2. बुनियादी तालीम का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
3. बुनियादी तालीम के आयामों को अपने शब्दों में लिखिए।
4. क्या बुनियादी तालीम प्रासंगिक हैं?

4.5 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

- आचार्य, प्रो. नंदकिशोर(1995).*सभ्यता का विकल्प: गांधी दृष्टि का पुनराविष्कार*, बीकानेर:वाग्देवी प्रकाशन. पृ. 47
- देखें, आचार्य, नंदकिशोर(2008).*संस्कृति की आर्थिकी*. बीकानेर:सूर्यप्रकाशन मंदिर.पृ. 51-52
- धवन, प्रो.गोपीनाथ(1946).*द पॉलिटिकल फिलासफी ऑफ महात्मा गाँधी*. बॉम्बे:पाप्युलर बुक डिपो. पृ. 79
- दयाल, परमेश्वरी(2006).*गांधियन थ्योरी ऑफ सोशल रिकंस्ट्रक्शन*. नई दिल्ली:एटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स.पृ. 206
- विनोबा(1991). *शिक्षा विचार* (सं. भट्ट,मीरा). वाराणसी:सर्व सेवा संघ प्रकाशन.
- अरविंदाक्षन, ए., कुमार, मिथिलेश(सं.)(2013). *बुनियादी तालीम*.नई दिल्ली:राजकमल प्रकाशन.
- आर्यनायकम,श्री(1954). *वर्तमान शिक्षा की गंभीर स्थिति*. सेवाग्राम:हिन्दुस्तानी तालीमी संघ.
- कुमार, प्रो. कृष्ण(1998). *शैक्षिक ज्ञान और वर्चस्व*. नई दिल्ली:ग्रंथ शिल्पी.
- देवीप्रसाद (सं.)(1988).*नई तालीम का संदेश(नई तालीम की स्वर्ण जयंती*). नई दिल्ली: गांधी शांति प्रतिष्ठान एवं सेवाग्राम:नई तालीम समिति.
- प्रभु, आर.के., राव, यू.आर.(2001).*महात्मा गाँधी के विचार*. नई दिल्ली:एनबीटी.

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई-5 अस्पृश्यता उन्मूलन

इकाई की रूपरेखा

5.1 उद्देश्य
5.2 प्रस्तावना
5.3 अस्पृश्यता: अर्थ एवं संदर्भ
5.4 अस्पृश्यता निवारण एवं गांधी
5.5 अस्पृश्यता निवारण एवं भारतीय संवैधानिक उपलब्ध
5.6 अस्पृश्यता निवारण एवं समाज कार्य
5.7 सारांश
5.8 बोध प्रश्न
5.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.1 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको निम्न बिन्दुओं में सक्षम बनाना है –

- अस्पृश्यता की अवधारणा को समझ पाने में।
- अस्पृश्यता उन्मूलन के बारे में गांधीयसमझ विकसित कर पाने में ।
- अस्पृश्यता उन्मूलन हेतु समाज कार्य की प्रविधि का वर्णन करने में।

5.2 प्रस्तावना

अस्पृश्यता सामाजिक संरचना की एक ऐसी स्थिति है जिसके तहत व्यक्ति दुसरे व्यक्ति से खानपान, विवाह एवं व्यवहार में घृणा करता है तथा दूरिया कायम रखता है और रखना चाहता भी है। दुसरे दृष्टि से देखा जाये तो अस्पृश्यता मात्र व्यक्तियों के बीच न पाई जाकर दो समुदाय समाज अथवा देश के बीच भी पाई जा सकती है। अस्पृश्यता सामाजिक दूरी को पैदा एवं कायम करती है। इसके अंतर्गत दो तरह के लोग या समाज होता है। प्रथम खुद को श्रेष्ठ समझने वाला व्यक्ति अथवा समाज दुसरा वह व्यक्ति या समाज जिसे निकृष्ठ समझा जाता है। अपने जाति, धर्म कला अथवा परम्परा को श्रेष्ठ समझने वाला समाज दूसरे समाज के जाति, धर्म, कुल अथवा परम्परा को नीची नजर से देखताहै और छुआछूत जैसे सामाजिक गतिविधि को अंजाम देता है। इस प्रकार देखा जाये तो अस्पृश्यता सामाजिक मूल्यों एवं प्रतीकों को श्रेष्ठता बनानेएवं कायम रखनेकी चरम विचारधारा का प्रतिफल है। जिस समाज में जितना ही अस्पृश्यता की जड़े गहरी एवं विस्तृत होती है वह समाज उतना ही आंतरिक रूप से कमजोर, खण्डित एवं खोखला होता है। अस्पृश्यता की जड़ों में इतिहास एवं राजनीति की गहरी पैर होती है जो एकीकृत समाज के जगह खण्डित समाज को जन्म देती है। इसलिए कहना उचित होगा कि अस्पृश्यता समाज के लिए ऐसी रोग है जो उस अंदर ही अंदर खाती रही है, खा रही है और मानव समाज सचेत न हुआ तो खायेगी।

5.3अस्पृश्यता: अर्थ एवं संदर्भ

अस्पृश्यता के तत्व

i. अस्पृश्यता समाज को स्थाई रूप में विभाजित करती है।
ii. अस्पृश्यता समाज में गैर-बराबरी को जन्म देती है।
iii. अस्पृश्यता खण्डित समाज की चेतना है जिसमें एक वर्ग के फायदे तथा दूसरे वर्ग के नुकसान का भाव छिपा रहता है।
iv. जाति, धर्म, प्रजाति, रंग, संस्कृति एवं इतिहास आदि कारक ही समाज में अस्पृश्यता के आधार बनते हैं।
v. समाज में अस्पृश्यता सामाजिक आर्थिक,राजनैतिक प्रस्थिति एवं भूमिका को प्रभावित करती है।

अस्पृश्यता के मूल कारण

अस्पृश्यता के अनेक कारण है पर मूख्यत: दो है।

A. **प्राकृतिक कारण :-** इसके अंतर्गत प्रवृत्ति जनिक कारण आते है जो अंतिम रूप में अस्पृश्यता को जन्मदेते हैं। पृथ्वी के क्षेत्रीय भिन्नता के कारण मानवी शारीरिक बनावट भी भिन्न होती है। शरीर की लम्बाई, रंग, आंखों की बनावट, बालों की आकृति एवं कपाल सूचकांक अलग-अलग होते है। इसीलिए दुनियां में मानव समाज को कई प्रजातियों में बांटा गया है जैसे काक़ेशायड (यूरोपीय लोग), मंगोलायड (चीनी एवं पूर्वी एशिया) आस्ट्रेलायड (अफ्रीकी लोग), इण्डियन (भारतीय लोग)। जब समाज में भेदभाव अथवा अस्पृश्यता का अधार मानवीय प्रजातिगत भिन्नता होती है तो उसे प्राकृतिक कारण कहते है। यूरोप में काले और गोरे का भेद इसका प्रमुख उदाहरण है।

B. **सामाजिक कारण :-** दुनिया में प्रत्येक समाज अपने मनोवैज्ञानिक एवं भौतिक आवश्यकओं को पूरा करने के लिए कुछ पद्धतियों एवं नियमों का निर्माण करते है। यही पद्धति संस्कृति बन जाती है। हर समाज की अपनी संस्कृति होती है। जब कोई भी समाज अपने ही अंदर मूल्यों एवं नियमों का निर्माण विभेदी करण के साथ करता है तो उस समाज में जाति, धर्म, वंश जैसे मूल्यों पर कई वर्ग बन जाता है। इन वर्गों में जाति, धर्म, कुल, संस्कृति को लेकर श्रेष्ठता एवं हीनता की भावना पैदा होती है और पैदा की जाती है। प्रतिफल स्वरूप समाज में गैर-बराबरी की मनोवैज्ञानिक भावना कठोर होती जाती है। धीरे-धीरे यह परम्परा का रूप घर लेती है और फिर संबंधित समाज का अस्पृश्यता के आधार पर एवं खण्डित इतिहास हो जाता है। इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता है कि पराजित एवं विजित जातियों में जब आपसी सामाजिक ताना-बाना तैयार होता है तो गैर-बराबरी एवं अस्पृश्यता की स्थिति पैदा होती है।

C. **अस्पृश्यता के प्रभाव :-** अस्पृश्यता नकारात्मक सामाजिक परिस्थिति की प्रक्रिया एवं परिणाम दोनों है। इसके कारण समाज पर कई तरह का नकारात्मक प्रभाव पड़ते है जो निम्नलिखित है।

I. अस्पृश्यता समाज को विखण्डित करनेका प्रयास करती है।
II. अस्पृश्यता के कारण राष्ट्रवादी भावना कमजोर होती है।

III. अस्पृश्यता समाज में दमन एवं विद्रोह को पैदा करती है।

IV. अस्पृश्यता के कारण संगठनात्मक सामाजिक शक्ति का विकास नहीं हो पाता जिसके कारण समाज अपने संपूर्ण मानवीय संसाधन का सद्उपयोग नही कर पाता है।

V. समाज में गरीबी, पिछड़ापन एवं शोषण की प्रक्रिया के पीछे अस्पृश्यता की स्थिति भी जिम्मेदारी है।

VI. अस्पृश्यता समाज में संरचनात्मक एवं प्रकार्यात्मक हिंसा को बढ़ावा देती है।

विश्व समाज में अस्पृश्यता :- अस्पृश्यता की बीमारी सिर्फ भारत में नहीं है। इसकी मौजूदगी किसी-न-किसी रूप में पूरे विश्व में पाई जाती है। यूरोप में काले एवं गोरे कैथोलिक एवं यहूदी के नाम लम्बे काल से भेदभाव होता आया है। अस्पृश्यताकी बीमारी अमेरिका में भी भारी पैमाने पर पाई जाती है। वहाँ मूल अमेरिकी रिवासियों को रेड इण्डियन कहा जाता है तथा उन असभ्य माना जाता रहा है। यूरोप में 'क्रियोललिज्म' की संकल्पना अस्पृश्यता को पैदा करती है। क्रियोलिजम एक ऐसी विचारधारा हैं जिसमें यूरोप के बाहर पैदा हुए किसी भी व्यक्ति को यूरोपीय नहीं माना जाता ओर उसे शारीरिकएवं मानसिक रूप में यूरोपियनों के तुलना में कमजोर समझा जाता है। आस्ट्रेलिया एवं दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद के द्वारा अस्पृश्यता को बढ़ावा मिलता है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि अस्पृश्यता विश्व समाज के लिए बड़ा कलंक है।

भारतीय समाज में अस्पृश्यता :- भारत एक ऐसा समाज है जहाँ संस्कृति एवं सभ्यता का लम्बा इतिहास रहा है। अनेक जातियां यहाँ इतिहास के क्रम में आई और यही की हो गई। पर यह सामान्य अवधारणा है। सच यह भी है कि अलग-अलग विश्वक्षेत्र से जो जातियां आई और पहले से यहाँ जो जातियां विद्यमान थी वे आपस में कभी आत्मिक रूप से एकीकृत नही हो पाई जिसके कारण भारतीय समाज खण्डों में बंटता गया। इसका प्रतिफल यह हुआ कि भारत में अस्पृश्यता का गहरा रोग स्वार्थ, राजनीति एवं आत्म संकीर्ण के कारण लग गया। भारतीय समाज में अस्पृश्यता का जो रूप है वह विश्व समाज में अस्पृश्यता का जो रूप है वह विश्व समाज के अस्पृश्यता के रूप से सर्वथा भिन्न है। यहां जिस जाति को अस्पृश्य माना जाता है उसे अपने को श्रेष्ठ समझने वाली जाति खुद के साथ बैठकर खाना नही खाने देती, अपने घर में प्रवेशनहीं करने देती है और न ही अपनी किसी चीज को छूने देती है। सार्वजनिक रूप से जो पवित्र स्थान जैसे मंदिर हैं वहाँ पर अस्पृश्य जातियों का प्रवेश निषेध माना जाता है। इतिहास में ऐसा भी पाया गया है कि अस्पृश्य जातियों को कुछ मार्गों चर चलना भी निषेध माना जाता था। साथ ही साथ जब अस्पृश्य जातिया चलती थी तो पीछे झाडू बांधना आवश्यक होता था कि उनके द्वारा गंदा किया गया रास्ता पीछे से साफ हो जाये। देश में ऐसी में घटनाएं घटित हुई है जब अस्पृश्यता एवं श्रेष्ठता की भावना ने दलित बस्तियां का अग्निकांण्ड देखते-देखते पूरी दलित बस्ती कवलित हो गई। देश में अस्पृश्यता के विरूद्ध में संगठित कार्य अंग्रेजों के आगमन के साथ प्रारंभ हुआ जिसमें भारतीयों ने भी सहभागिता प्राप्त की।

5.4 अस्पृश्यता निवारण एवं गांधी

महात्मा गांधी अस्पृश्यता को समाज के लिए एक बड़ा कलंक मानते थे। उन्होंने अस्पृश्यता के दंश को झेलने वाले समाज को हरिजन शब्द से संबोधित किया। उनका मानना था। कि ये लोग हरि (ईश्वर) की संतान है इस लिए इनके साथ किसी भी प्रकार की जातिगत भेदभाव किया जाये। महात्मा गांधी राष्ट्र के निर्माण एवं

स्वतंत्रता के प्राप्ति हेतु सभी भारतीयों से अस्पृश्यता के खिलाफ खड़ा होने के लिए आवहन किया। गांधी जी ने अपने आश्रम में हरिजनोंको प्रवेश दिये थे। वे मदिरों में प्रवेश के लिए भूख हड़ताल भी किये। उनका कहना था कि यूरोप ने हड़ताल भी किये। उनका कहना था कि यूरोप ने खुद को विविध वर्ग (Class) में विभाजित कर रखा है वही भारत ने खुद को विविध जातियों में बांट रखा है जो मानव समाज के कल्याण के दृष्टि से अहितकर है। वे भारती (शुद्र) की संकल्पना को नकारते हुए कहा कि भारत आज तक इस सामाजिक कोढ़ को ढ़ोता आया है जो अब आवश्यकता है कि इसे त्याग कर स्वस्थ भारतीय समाज का निर्माण किया जा सके। गांधी जी इस बात को अस्वीकार्य करते है कि भारत में जाति प्रथा धर्म का हिस्सा है और धार्मिक विकास के लिए आवश्यक है। वे कहते है कि मैं यह नहीं जानता की यह कैसे हुई और मैं जानता भी नहीं चाहता पर इतना जरूर चाहता हूँ कि यह खत्म होना चाहिए क्योंकि यह भारतीय राष्ट्रीयता एवं आध्यात्मिक विकासकेलिए नुकसानदेह है। गांधीजी यह भी कहते है कि जीवन कर्तव्य का नाम है अधिकारों एवं विशेषधिकारों का नही। वह धर्म जो समाज को कठिन एवं खण्डित करे वह सच्चा मानव धर्म नही हो सकता। इस प्रकार कहना उचित है कि महात्मा गांधी ने भारत में विद्यमान छूआछूत (अस्पृश्यता) के उन्मूलन के लिए व्यावहारिक एवं सैद्धांत्तिक दोनों स्तरों पर कार्य किया।

5.5 अस्पृश्यता निवारण एवं भारतीय संवैधानिक उपलब्ध

देश अपनी स्वतंत्रता के साथ आगे बढ़ा। संविधान का निर्माण किया गया जिसमें देश की सामाजिक आर्थिक एंव राजनैतिक व्यवस्था को संचालित करने के लिए वैधानिक अबन्ध किया गया। इसी क्रम देश से अस्पृश्यता जैसी बुराई को खत्म करने के लिए भी भारतीय संविधान में उपबंध किये गये। इस प्रकार भारतीय संविधान एवं उससे जुड़े हुए कानून संसदीय स्तर पर बनाये गये जो अस्पृश्यता निवारण के लिए कार्य करता है।

I. **संवैधानिक स्तर पर उपलब्ध :-** भारतीय संविधान की 14 वी धारा विधि के समक्ष समानता की बात करती है। वहीं 15 वी धारा जाति, धर्म, लिंग, क्षेत्र के आधार पर भेदभाव का निषेध करती है। सबसे महत्वपूर्ण 17 वीं है जो अस्पृश्यता के खात्मा के लिए वचनबद्धक करती है।

II. **विधिक प्रावधान :-**

i. भारतीय संसद ने 1955 में अस्पृश्यता अपराध अधिनियम लायी जिसे 1976 में संशोधन करके 'सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम' कर दिया गया।

ii. 1989 में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाती अधिनियम के अंतर्गत 'उत्पीड़न' शब्द की व्यापक व्याख्या करके अस्पृश्यता को इसमें शामिल किया गया।

iii. 2015 में इस अधिनियम में संशोधन करके सख्ती वरती दी गई है ताकि अस्पृश्यता का निवारण किया जा सके।

5.6 अस्पृश्यता निवारण एवं समाज कार्य

समाज कार्य एक समस्या केन्द्रित अनुशासन है। जिसमें सामाजिक समस्याओं का निदान एवं उपचार किया जाता है। एक समाज कार्य को सदैव समाज में सामाजिक संरचना एवं प्रकार्य के अंतर्गत व्यक्ति केन्द्रित एवं

पर्यावरण केन्द्रित विधा के साथ समस्या का निदान करना पड़ता है। व्यक्ति केन्द्रित समस्या के निदान में समाज कार्यकर्ता व्यक्ति पर केन्द्रित होकर उसकी समस्या का निदान करता है। जबकि पर्यावरण केन्द्रित पद्धति में समाज कार्यकर्ता व्यक्ति के साथ-साथ उसके संपूर्ण वातावरण में परिवर्तन लाने का प्रयास करता है।
भारतीय समाज में अस्पृश्यता आज भी गहरी पैठ बनाई हुई है। जिसके पीछे राजनीतिक एवं सामाजिक हित भी झुपे हुए है। स्वतंत्रता के सत्तर साल बाद भी भारत अस्पृश्यता के बीमारी से छुटकारा नही प्राप्त किया है। ऐसी स्थिति में एक समाज कार्य का व्यावसायिक एवं नैतिक कर्तव्य बनता है कि जहाँ भी, जिस रूप में छुआछूत अथवा अस्पृश्यता दिखाई दे उसके खात्मा के लिए प्रयास करें। आज पूरी दुनिया आर्थिक विकास के दौड़ में संलग्न है। ऐसे स्थिति में भारत जाति पाति एवं अस्पृश्यता के जाल में फंसकर अपनी उर्जा क्षरित कर देगा तो आर्थिक विकास के क्षेत्र में देश पिछड़ा जायेगा। संगठित समाज ही संगठित स्पष्ट का निर्माण कर सकता है। और एक संगठित राष्ट्र ही अपने आर्थिक सामाजिक एवं वैज्ञानिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। इस लिए समाज कार्यकर्ता को भारत में स्थित अस्पृश्यता जैसी बीमारी से लड़ने एवं खत्म करने के लिए सदैव तत्पर होना चाहिए।

5.7 सारांश

'अस्पृश्यता' समाज में भेदभाव एवं गैर-बराबरी का प्रतीक है जो विश्व के प्रत्येक समाज में किसी न किसी रूप में पाया जाता है। भारतीय समाज में अस्पृश्यता गहरी पैठ बताये हुए है। खान-पान,बैठक, पूजा-स्थल, तीर्थ स्थल पर अस्पृश्यता का रंग दिख जाती है। आज भी भारत में ग्रामीण क्षेत्रों में 'अस्पृश्यता का गहन प्रभाव देखने का मिल ही जायेगा।
नागरीकरण एवं औद्योगीकरण ने अस्पृश्यता के रोग को काफी कुछ खत्म करने का प्रयास किया है। पर भारतीय ग्रामीण क्षेत्र इसके चंगुल से आज भी छुटकारा नहीं कर पाया है। महात्मा गांधी, भीमराव आंबेडकर, ज्योतिबा फूले जैसे महापुरूषों ने भारतीय समाज से अस्पृश्यता को खत्म करनेका प्रयास किया पर पूरी तरह खत्म नहीं कर पाये।
आज समाज कार्य एवं समाज कार्यकर्ताओं की यह जिम्मेदारी है की अस्पृश्यता जैसे सामाजिक बुराई की खत्म करने हेतु दृष्टि की खोज करें अस्पृश्यता के मौजूदगी में समाज को संगठित एवं विकसित नही किया जा सकता है।

5.8बोध प्रश्न

प्रश्न 1: अस्पृश्यता को स्पष्ट कीजिये।

प्रश्न 2: अस्पृश्यता निवारण के गांधीय प्रविधि का वृहत वर्णन कीजिये।

प्रश्न 3: टिप्पणी कीजिये

1. अस्पृश्यता निवारण एवं भारतीय संवैधानिक उपलब्ध
2. अस्पृश्यता निवारण एवं समाज कार्य

ज्ञान शांति मैत्री

5.9कुछ उपयोगी पुस्तकें

- प्रभु, आर.के.एवं राव, यू.आर. (अनु. भवानी दत्त पंड्या) (1974). महात्मा गांधी के विचार. दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट.
- मशरूबाला, किशोरलाल. (2001). गांधी विचार-दोहन. नई दिल्ली: सस्ता साहित्य मंडल.
- आचार्य,नंद किशोर.(2004). सभ्यता का विकल्प. बीकानेर : वाग्देवी प्रकाशन.

ज्ञान शांति मैत्री

खंड – 4
अहिंसक आंदोलन : गांधी के बाद

इकाई-1 भूदान और ग्रामदान आंदोलन

इकाई की रूपरेखा

1.1 उद्देश्य
1.2 प्रस्तावना
1.3 भूदान आंदोलन का प्रारम्भ
1.4 विनोबा भावे एवं भूदान और ग्रामदान आंदोलन
1.5 सारांश
1.6 बोध प्रश्न
1.7 कुछ सहयोगी पुस्तकें

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने से आप जान सकेंगे

- विनोबा के भूदान आंदोलन को जानेंगे
- विनोबा के अहिंसात्मक क्रांति के बारे में
- भूदान आंदोलन के द्वारा हुए समाज परिवर्तन के बारे में
- विनोबा एवं उनके भूदान संबंधित विचारों के बारे में

1.2 प्रस्तावना

आचार्य विनोबा भावे केवल राजनीति ही नहीं, किसी भी प्रकार के प्रचार-प्रसार से सदा दूर रहे। इतना ही नहीं, उन्होंने अपने आप को भारत की गहमागहमी से भी सर्वथा पृथक कर लिया था। यहाँ तक की समाचार पत्रों को भी पढ़ना छोड़ दिया था। परंतु क्या इन सब बातों से उनका महत्व कम होता है? बिसावों शताब्दी के महानतम व्यक्तियों में उनका नाम इसलिए लिखा जाता है कि उन्होंने जो कुछ इस देश की जनता के लिए किया, वह अब तक सर्वथा अछूता पड़ा था। उनके कार्य का महत्व इस बात से ही लगाया जा सकता है कि यह विशाल देश कृषि-प्रधान देश है। परंतु देश के असंख्य गवों में रहनेवाले अर्धनग्न किसानों में से अधिकांश के पास खेती के लिए एक गज जमीन का टुकड़ा भी नहीं था। विनोबा का ध्यान सबसे पहले इसी और गया और वे देश के बड़े-बड़े जमीदारों से उन गरीब किसानों के लिए भूमि का दान मांगने निकाल पड़े- जिसे भूदान आंदोलन का नाम दिया गया। उन्होंने हजारों एकड़ भूमि दान में लेकर भूमिहीन किसानों में बाँट दी और स्वयं अपने लिए फूंस की एक झोपड़ी भी नहीं बनाई और सारी आयु एक आश्रम में बिता दी।

ज्ञान शांति मैत्री

1.3 भूदान आंदोलन का प्रारम्भ

विनोबा भावे एक बार आंध्र प्रदेश के एक गाँव में हरिजनों की स्थिति देखने गए। वहाँ के हरिजन नक्सलवादी उग्रपंथियों के अत्याचारों के शिकार थे। हरिजनों ने विनोबा जी से प्रार्थना की कि उन्हें अस्सी एकड़ के करीब भूमि प्रदान की जाए जिससे वे अपने परिवारों को रोटी दे सकें। विनोबा जी ने शाम की प्रार्थना सभा में यह बात गाँव के लोगों के सामने रखी। उनकी बात का इतना प्रभाव पड़ा की एक समृद्ध किसान ने तुरंत उठकर अस्सी एकड़ की बजाय सौ एकड़ जमीन विनोबा को भेंट कर दी। बस, यहीं से भूदान आंदोलन प्रारम्भ हुआ। उन्होंने उसके बाद तेलंगाना में पदयात्रा करके हजारों एकड़ जमीन दान में प्राप्त की और हरिजनों तथा निर्धन किसानों को इस भूमि के पत्ते दिलवाए।

1.4 विनोबा भावे एवं भूदान और ग्रामदान आंदोलन

गुन्नार मिईल ने कहा था कि दक्षिण एशिया के दीर्घकालीन आर्थिक विकास की लड़ाई खेती में जीती या हारी जाएगी। भारत के लिए भी यह सच था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारतीय अर्थव्यवस्था की सबसे प्रमुख समस्या भूमि को लेकर थी। देश अन्न के मामले में स्वावलंबी नहीं था। जमीन-मालिकी की विषम रचना से न सिर्फ पैदावार पर प्रतिकूल असर पद रहा था, बल्कि उससे शोषण भी जारी रहता था। इसलिए जमीन का पुनर्वितरण निहायत जरूरी था। इसके तीन तरीके थे-

1. भू-स्वामियों से जबर्दस्ती जमीन छिन लिया जाय। लेकिन यह तरीका न ही उचित था और न ही व्यावहारिक।
2. सरकार कानून बनाकर इस समस्या का समाधान करे। लेकिन इसमें भी काफी दिक्कतें थी। संविधान में संपत्ति का अधिकार मूल अधिकार था।
3. जमीन मालिक खुसी से अपनी जमीन का एक हिस्सा भूमिहीनों को दे दें। जमीन मालिक द्वारा अपनी मर्जी से जमीन दान (देने) की प्रक्रिया 'भूदान' थी।

भूदान से न्यायोचित विवरण का एक नया तरीका सामने आया था। यह तरीका भारतीय संस्कृति और सभ्यता के अनुकूल था। इसमें मूल्य-परिवर्तन की असीम संभावनाएं थी। विनोबा ने इसी सूत्र के आधार पर भूदान को भूदान आंदोलन का एक रूप दिया।

यहाँ विनोबा ने भूदान में 'दान' शब्द का प्रयोग किया है, लेकिन उस शब्द का रूढ़ार्थ उनके मन में बिलकुल नहीं था। वे गरीबों का हक जताते हुए जमीन मांगते थे। उनका कहना था कि – 'जैसे हर एक को हवा चाहिए, पानी चाहिए, वैसे ही जमीन चाहिए क्योंकि जमीन भी जिंदा रहने का आधार है।'

भूदान के लिए विनोबा 'यज्ञ' शब्द का भी प्रयोग करते है। 'यज्ञ' शब्द के आशय को स्पष्ट करते हुए विनोबा कहते हैं कि – जिस काम में सब लोगों का सहयोग प्राप्त होता है, उसी को यज्ञ कहते हैं। जब देश पर कोई संकट आता है तो यज्ञ किया जाता है। अपने देश पर आज संकट मौजूद है। मजदूर और मालिक का भेद है, करोड़ों लोगों के पास कोई साधन नहीं है, हरिजन और दूसरों में छुआछूत पड़ी है। अनेक धर्म भेद के झगड़े भी मौजूद है। ऐसी हालत में देश को बचाने के लिए जब कोई यज्ञ शुरू होता है, तो अगर उसे कोई अकेला ही करेगा तो उससे कुछ नहीं होगा।

ज्ञान शांति मैत्री

इसलिए जब कोई सार्वजनिक यज्ञ किया जाता है तो इसमें हर एक को भाग लेना पड़ता है। इस भूमिदान यज्ञ में भी हर एक को दान देना चाहिए।

एक अन्य जगह भूदान यज्ञ को स्पष्ट करते हुए विनोबा कहते हैं कि वाणी का उपयोग गाँव में एकता स्थापित करने में, एक-दूसरे के दिल जोड़ने में, अज्ञानी को ज्ञान देने में, बच्चे को पढ़ने में किया जाए इसका नाम है भूदान यज्ञ। हाथ का उपयोग परिश्रम में, पड़ोसी की मदत करेने में, गाँव की भलाई करने में, जिनको जरूरत है उनको हाथों से भर-भरकर देने में करें, इसका नाम है भूदान यज्ञ। कान का उपयोग सर्वोदय की बात सुनने में, ग्राम चर्चा में अपना ज्ञान और दूसरों का ज्ञान बढ़ाने में करें, इसका नाम है भूदान यज्ञ। हम सब लोग पढ़ना-लिखना सीखें, इसका नाम है भूदान यज्ञ। गाँव में झगड़े न हो और कुछ मूरखों में झगड़े हों तो उसका फैसला गाँव के सज्जन करें, इसका नाम है भूदान यज्ञ। इस प्रकार गाँव को परिवार समझा जाय इसका नाम है भूदान यज्ञ।

भूदान आंदोलन कोई पूर्वनिर्धारित, सुनियोजित, परियोजना बद्ध कार्यक्रम नहीं था बल्कि काम के साथ विचार बढ़ता गया। इसकी शुरुआत आंदरपरदेश के 'पौचमपल्ली' गाँव से हुई और देखते ही देखते सम्पूर्ण भारत में एक हलचल पैदा कर दी। भूदान का लोगों ने दिल खोलकर स्वागत किया। पहले साल में ही 1,00,000 (एक लाख) एकड़ जमीन भूदान के लिए प्रापत्र हो गई।

यहाँ इस बात को समझ लेना आवश्यक है कि भूदान के माध्यम से सिर्फ जमीन बटोरना या गरीबों को जमीन देना, इतना ही विनोबा का मकसद नहीं था। वे चाहते थे कि जमीन मालिक विचार को समझकर, प्रेमपूर्वक जमीन दान दें। उनको (विनोबा को) जब कभी शंका आयी कि दान में राजस या तमस भाव है, वहाँ उन्होंने दान नहीं लिया। सात्विक दान, विचारपूर्वक दिया हुआ दान ही उन्हें अभीष्ट था। उकना कहना था कि हमारे तीन सूत्र है :

1. हमारा विचार समझने पर अगर कोई नहीं देता, तो उससे हम दुखी नहीं होते क्योंकि हम मानते हैं कि जो आज नहीं देता वह कल देगा, विचार बीज उगे बगैर नहीं रहता।
2. हमारा विचार समझकर अगर कोई देता है, तो उससे हमें आनंद होता है क्योंकि उससे सब और सद्भावना पैदा होती है। और
3. हमारा विचार समझे बगैर किसी दबाव के कारण कोई देगा तो उससे हमें दुख होगा। हमें किसी तरह जमीन बटोरना नहीं है, बल्कि साम्ययोग और सर्वोदय की वृति निर्माण करनी है।

इस प्रकार भूदान यज्ञ विनोबा के लिए अलग किस्म की चीज थी। भूमि समस्या का हल विनोबा के लिए भूदान का केवल एक बाय-प्रॉडक्ट, एक सहज प्राप्त परिणाम और प्रार्थमिक परिणाम था। इससे दुनिया को नया रास्ता मिल रहा है, अहिंसा को विकसित करने की कुंजी हाथ लगी है, यह बात विनोबा के लिए ज्यादा महत्वपूर्ण थी। भूदान-ग्रामदान के रहस्य को समझते हुए विनोबा ने लिखा है कि- 'जो लोग भूदान-ग्रामदान की तरफ भूमि समस्या के हल की दृष्टि से देखते हैं, वे उसकी महिमा ही नहीं जानते। उन्हें लगता है यह भूमि समस्या के निराकरन के लिए है। लेकिन वह तो एक प्रतीक मात्र है हम मूर्ति को गणेश मूर्ति बनाते है, उसमे मिट्टी प्रतीक होता है और गणेश अधिष्ठात्री देवता होता है। भूमि समस्या एक प्रतीक है और हमें अमूर्त की

सेवा करनी है। यह धर्म-संस्थापना का कार्य चल रहा है। अभी तक धर्म स्थापना के अनेक प्रयोग हुए, लेकिन उनसे धरण-संस्थापना हो नहीं आयी।'

विनोबा भूदान द्वारा समग्र परिवर्तन चाहते थे। उन्होंने एक जगह लिखा है आखिर यह सब मैं ही क्यों कर रहा हूँ? मेरा उद्देश्य क्या है? स्पष्ट है की मैं परिवर्तना चाहता हूँ। प्रथम ह्रदय परिवर्तन, फिर जीवन परिवर्तन और बाद में समाज रचना में परिवर्तन लाना चाहता हूँ। इस तरह का त्रिविध परिवर्तन, तिहरा इंकलाब मेरे मन में है।

यही कारण है की विनोबा भूदान-यज्ञ को एक किस्म का सत्याग्रह ही मानते थे। सत्याग्रह में कष्ट-सहनकर, नैतिक शक्ति से, नैतिक दबाव से प्रतिपक्षी की ह्रदय-ग्रंथियां खोली जाती है, उसे सोचने के लिए मजबूर किया जाता है। सत्या ग्रहण के लिए उसे समक्ष बनाया जाता है जिससे उसके साथ संयुक्त रूप से सत्या की खोज की जा सके। विनोबा के शब्दों में –'हम समझते हैं की भूदान-यज्ञ का कार्य एक अर्थ में सत्याग्रह ही है। हम लगातार जाड़े में, बारिश में और गर्मी में, हर हलम में घूमते है। निरंतर लोगों को समझते रहते हैं। दरिद्र लोगों से भी दान लेते है। क्यों? क्योंकि हम सत्याग्रह की ताकत खड़ी करना चाहते हैं। जब छोटे लोग देंगे, तभी यह सिद्ध होगा की मालिकी गलत है। फिर बड़े लोगों पर नैतिक दबाव आयेगा और फिर उनके ह्रदय में प्रवेश होगा। नैतिक दबाव सत्याग्रह का ही एक अंग है। जब हजारों गरीब दान देते हैं, तो वह भी एक किस्म का सत्याग्रह ही होता है। सत्याग्रह यानि सत्य पर चलना। उसमे शक्ति पैदा होती है जो असत्य पर चलते हैं, उनपर उसका परिणाम होता है।'

अभी भूदान अपनी शैश अवस्था में ही था कि एक अद्भभूत घटना घटी। उत्तर-प्रदेश के मंगरौह गाँव के सभी जमीन-मालिकों ने अपनी जमीन भूदान-यज्ञ में समर्पित कर दी और देश का पहला ग्रामदान बनाने का गौरव अर्जित किया। इस तरह भूदान अपनी स्थिति को मजबूत किए ही दूसरे चरण, ग्रामदान में प्रवेश कर गया।

भूदान कि तरह ग्रामदान भी कोई पूर्वनिर्धारित, सुनियोजित एवं परियोजन बद्ध कार्यक्रम नहीं था। ग्रामदान का अर्थ था – गाँव के जमीन-मालिकों द्वारा अपनी सब जमीन का दान और फिर उसका सम-वितरण। ग्रामदान के अर्थ को स्पष्ट करते हुए विनोबा कहते है कि – 'ग्रामदान का विकसित अर्थ है कि जिसके पास जो हो, वह उसे ग्राम को समर्पित करे। नहीं तो यह होगा की कुछ लोगों का धर्म देने का है और कुछ का धर्म लेने का। ऐसा नहीं हो सकता। धर्म वही है, जो सबको लागू होता है ग्रामदान का विचार इस तरह परिपूर्ण है।'

यहाँ यह बात गौर करने की है कि 'ग्रामदान का अर्थ गाँव का दान नहीं, गाँव के लिए दान है।

भूदान के शुरुआती काल में विनोबा कहते थे –'हमारे गाँव में भूमिहीन कोई नहीं रहेगा।' ग्रामदान के समय विनोबा कहने लगे- 'हमारे गाँव में भूमि-मालिक कोई नहीं रहेगा।'

ग्रामदान के माध्यम से विनोबा को ग्राम-स्वराज का एक रास्ता मिला। इसमें उन्हें ट्रष्टशिपि का वास्तविक स्वरूप दिखा, इसलिए विनोबा ने ग्रामदान की पुरजोर मांग की तथा सभी जमीन-मालिकों को अपनी सारी मिलकीयत दान करने को कहा। इसी क्रम में एक महत्वपूर्ण घटना तब घटी जब 1954 के बौद्धगया सम्मेलन में जयप्रकाश ने ग्रामदान के लिए जीवन दान देने की बात की।

यद्द्पि ग्रामदान की कल्पना उकृष्टमय थी। लेकिन वह लोगों से शायद बहुत ज्यादा मांगती थी। गाँव की जमीन बेची नहीं जा सकती थी, न रेहन राखी जा सकती थी। इससे शादी-ब्याह आदि मौकों पर कर्ज मिलने में दिक्कत आती थी। यही कारण था कि ग्रामदान की संकल्पना अपना व्यापक आधार तैयार नहीं कर सकी। यहाँ एक बात और गौतलब है कि जमीन मालिकों के संस्कार में दान का भाव था लेकिन समानता का भाव संस्कार में नहीं था। मिल्कियत का जो एक भाव मन में होता है वह इस बात की इजाजत नहीं देता कि सामने वाले को भी समान औहदा प्राप्त हो जाए। यह भी एक कारण था की ग्रामदान को अपेक्षित सफलता नहीं मिली। इसलिए ऐसे रास्ते की तलाश की गई जो ग्रामदान और वास्तविक स्थिति के बीच में एक मध्यम-मार्ग का कार्य कर सके और इसी क्रम में यह आंदोलन अपने तीसरे चरण में 'सुलभ ग्रामदान' का रूप धरण किया।

सुलभ ग्रामदान की निम्न विशेषताएँ थी-

1. जमीन के मालिक अपने जमीन का 20 वां हिस्सा गाँव के भूमिहीनों को दान में देगा।
2. जमीन की मालिकी ग्राम सभा की थी।
3. ग्राम सभा के अनुमति के बिना न तो जमीन बेची जाएगाई और न ही रेहन राखी जाएगी।
4. गाँव के विकास के लिए एक ग्राम कोश बनेगा। ग्राम कोश के लिए किसान उपज में प्रतिमान एक सेर अनाज और दूसरे उदद्योग-धंधे तथा नौकरी-नज़दूरी आदि में लगे लोग आय का 30 वन हिस्सा प्रतिवर्ष प्रदान करेंगे।
5. ग्राम सभा में सभी वयस्क लोग सम्मिलित होंगे। यह अपना काम सर्वसम्मति से करेगी।
6. 'ग्रामदान-घोषणा पत्र पर गाँव के 75% भूस्वामी का हस्ताक्षर हो।
7. गाँव की कुल भूमि का 51% भी अगर दान मिल जाता है तो उसे सुश्म ग्रामदान मान लिया जाएगा।
8. सुलभ ग्रामदान के लिए आवश्यक था कि गाँव के कुछ परिवारों में से 75% परिवार ग्रामदान में शामिल हो।

सुलभ ग्रामदान के अविभवि से कार्यकर्ताओं का उत्साह बढ़ा। कई लोगों ने इसे समझौता माना। लेकिन विनोबा के लिए यह समझौता नहीं था, यह एक सोची समझी राजनीति थी। विनोबा के अनुसार- 'जो प्रक्रिया कुछ लोगों के साथ जाकर कुछ समय बाद कुंठित हो जाती है, वह क्रांति की प्रक्रिया है या जो प्रक्रिया करोड़ों लोगों तक फ़ेल सकती है, वह क्रांति की प्रक्रिया है। हमे समझना चाहिए कि जिस प्रक्रिया में फैलाने की अधिक शक्ति भरी है, वह क्रांति की दृष्टि से अधिक ग्राह्य प्रक्रिया है।'

लेकिन इसके बावजूद भूदान-ग्रामदान-सुलभ ग्रामदान के मार्ग में कई कठिनाइयाँ थी जैसे- विनोबा के प्रभाव में आकार लोग संकल्प पत्र भर देते थे, लेकिन कानूनी कार्यवाही से समय मुकर जाते थे। यदि कानूनी कार्यवाही के समय भी हामी भर देते थे तो वास्तविक कब्जे के दौरान अपने वायदे से पीछे हट जाते थे। कभी-कभी तो यह प्रक्रिया हिंसक रूप धरण कर लेती थी। जैसे बिहार के मुरहरी गाँव में हुआ नक्सलवादी आंदोलन।

इस तरह एक बहुत अच्छी संकल्पना मंजिल पाये बगैर ही डैम तोड़ने लगी। 1974 तक आते-आते यह आंदोलन शिथिल हो गया तथा इसे भाग्य के भरोसे छोड़ दिया गया।

आंदोलन के परिणाम

विनोबा कहते थे कि मेरे लिए यह आंदोलन भी एक सत्याग्रह है जिसका उद्देश्य समाज में करुणा की भावना का संचार करना तथा उसके मध्यम से वास्तविक स्वराज की स्थापना करना था। इसमे राजनीति की जगह लोकनीति, असमानता की जगह समानता, अन्य के जगह न्याय शामिल करने की बात है। विनोबा का मानना था कि ज्यों-ज्यों यह आंदोलन आगे बढ़ेगा त्यों-त्यों लोगों में इन भावनाओं का संचार होगा। इस प्रकार विनोबा भूदान-ग्रामदान-सुलभ ग्रामदान आंदोलन के मध्यम से ग्रामोद्योग फरक, अहिंसात्मक समाज की स्थापना करना चाहते थे। यह उद्देश्य पूरा हुआ की नहीं, यह आंदोलन किस हद तक सफल हुआ। इन कारणों की जांच जरूरी है।

सफल किस हद तक –

इस आंदोलन ने बहुत सी सफलताएँ प्राप्त की है।

1. इस आंदोलन के बहुत से लोगों के मन को बदला।
2. इस आंदोलन के मध्यम से बहुत सी ज़मीनें प्राप्त हुई जो किसी भी सरकारी प्रयत्न की तुलना में काफी है।
3. इस आंदोलन में कुल 49 लाख एकड़ दान में प्राप्त हुई। इसमें 42 लाख एकड़ पर कब्जा हो सका जिसमें 25 लाख एकड़ भूमि भूमिहीनों को बांटी गयी।
4. ग्राम स्वराज की दिशा में इस आंदोलन में बहुत ही सराहनीय प्रयास किए गए।

भूदान ग्रामदान आंदोलन कितना सफल हुआ यह दिशा में दो महत्वपूर्ण शोध हुए है। एक जवाहरलाल नेहरू विचवविद्यालय, नई दिल्ली के प्रो. टी.के. उनैन ने राजस्थान को केस स्टडी बनाकर अध्ययन किया है। तथा दूसरा अनुग्रह नारायण संस्थान, पटना के प्रो. एच. प्रसाद ने 'मुशहरी' के संबंध में शोध कर इस बात का पता लगाने का प्रयास किया है कि यह आंदोलन कि हद तक सफल रहा।

प्रो. टी. के. उनैन ने जो शोध किया है उसके लिए उन्होंने कुछ संकेतकों (indicators) का चुनाव किया है। यह संकेतक व्यक्तिनिष्ट (subjective) न होकर वस्तुनिष्ट (objective) संकेतक है। जैसे –

इस आंदोलन के कारण आर्थिक संबंधों में परिवर्तन हुआ अथवा नहीं।

1. इससे शासन और राजनीति के सम्बन्धों में परिवर्तन हुआ अथवा नहीं।
2. इसके द्वारा स्थानीय नेतृत्व की गुणवत्ता बदली अथवा नहीं।
3. इस आंदोलन ने अहिंसात्मक समाज रचना के लिए लोगों की मानवीयता बदली अथवा नहीं।

इस अध्ययन के लिए उनैन ने राजस्थान के 4 ग्रामदानों एवं 3 गैर-ग्रामदानी गाँव का चयन किया। उनके निष्कर्ष निम्न थे –

1. आर्थिक सम्बन्धों में परिवर्तन को लेकर –उनैन ने अपने शोध के दौरान पाया कि भूमि को लेकर मिलकीयत की अवधारणा ए कोई परिवर्तन नहीं आया है। प्रो. उनैन के अपने आध्यान के दौरान यह भी पाया

कि ग्रामदानी गाँव में भूमि का वितरण समान नहीं हुआ है। इसके अतिरिक्त दान में मिली अधिकांश भूमि घटिया किस्म की थी या विवादास्पद थी।

इस प्रकार उनैन का निष्कर्ष था कि-

1. ग्रामदानी गाँव में भी व्यक्तिगत मिलकीयत का भाव मिटा नहीं
2. समूहिक मिलकीयत का भाव क्रियान्वित नहीं हुआ
3. कृषि संबंदों के सामंती ढांचे में कोई परिवर्तन नहीं हुआ

इस तरह आर्थिक परिवर्तन की दृष्टि से यह आंदोलन असफल रहा।

2. शासन और राजनीति के सम्बन्धों में परिवर्तन को लेकर –प्रो. उनैन ने अपने शोध के दौरान यह भी पाया कि participatory democracy का चलन नहीं हुआ है तथा ग्रामदानी गाँव में अब भी निर्णय प्रक्रिया में अल्पवर्ग का ही प्रभुत्व कायम है। इस प्रकार शक्ति या केन्द्रीकरण यहाँ भी हुआ है। विनोबा भूदान ग्रामदान के मध्यम से जो परिवर्तन लाना चाहते थे यानि राजनीति की जगह लोकनीति वैसा संभव नहीं हो सका।

इस प्रकार उनैन का यह निष्कर्ष था कि शासन और राजनीति के सम्बन्धों में परिवर्तन को लेकर भी यह आंदोलन असफल रहा।

3. स्थानीय नेतृत्व की गुणवत्ता को लेकर – प्रो. उनैन के अध्ययन का तीसरा आधार यह था कि इस आंदोलन ने स्थानीय नेतृत्व की गुणवत्ता में परिवर्तन किया है अथवा नहीं। अपने शोध के दौरान प्रो. उनैन ने पाया कि इस क्षेत्र में मिश्रित सफलता हाथ लगी है। गुणात्मक (चारित्रिक श्रेष्ठता) दृष्टि से ग्रामदानी गाँव के लोगों में सामान्य गाँव की अपेकषा चारित्रिक श्रेष्ठता पायी गयी। लेकिन इन नेताओं का दृष्टिकोण बहुत परंपरागत था और ये लोग कुछ भी नया करने के पक्षधर नहीं थे। इस प्रकार स्थानीय नेतृत्व यथास्थिति का पोषक था एवं उनैन का यह निष्कर्ष था कि स्थानीय नेतृत्व में जो क्रांतिकारी परिवर्तन की आशा थी उस दृष्टिकौन से भी यह आंदोलन असफल रहा।

4. मूल्य चेतना में परिवर्तन को लेकर – प्रो. उनैन ने मूल्य चेतना में परिवर्तन को तीन स्तरों पर बांटा है।

1.सैद्धान्तिक परिवर्तन 2. प्रवृतिगत परिवर्तन 3. व्यावहारिक परिवर्तन

अपने शोध के दौरान प्रो. उनैन ने पाया कि ग्रामदानी गाँव में व्यावहारिक परिवर्तन मूल्य चेतना को लेकर कम दिखता है लेकिन सैद्धान्तिक एवं प्रवृतिगत परिवर्तन स्पष्ट दिखते हैं जैसे –

अ. जाति प्रथा –गैर ग्रामदानी गाँव के 36.44% लोग जाति प्रथा को खराब मानते है। जबकि ग्रामदानी गाँव के 61.84% जाति प्रथा को बुरा मानते हैं। इस प्रकार जाति को लेकर प्रवृतिगत परिवर्तन दिखते हैं इसी तरह

आ. व्यक्ति की हैसियत जन्म के आधार पर या दूसरे आधार पर- इस विषय में भी ग्रामदानी लोग ज्यादा अच्छे दिखते हैं। गैर ग्रामदानी लोग जन्म को व्यक्ति की हैसियत का आधार मानते हैं जबकि ग्रामदानी लोग क्रम को हैसियत का आधार मानते हैं ।

इस प्रकार प्रो. उनैन का यह निष्कर्ष है कि ग्रामदानी लोगों में मूल्य चेतना में परिवर्तन दिखाता है एवं इस आधार पर यह आंदोलन सफल रहा है।

प्रो. उनैन के अतिरिक्त के एच प्रसाद ने भी मुशहरी के संबंध में शोध किया है उनके निष्कर्ष निम्नलिखित है-

1. शक्ति संतुलन मुख्यत अल्पसंख्यक वर्ग की ओर की झुका रहा
2. इससे सिर्फ मालिक ही और मजबूत हुए क्योंकि कमजोर वर्ग के मन में यह बात घर कर गई कि मेरी स्थिति में परिवर्तन सिर्फ मालिकों की कृपा से ही हो सकता है इस प्रकार मालिक मुक्तिदाता माने जाने लगे

इस प्रकार प्रो. उनैन एवं एच. प्रसाद के शोधों के आधार पर हम कह सकते हैं कि कि भूदान-ग्रामदान आंदोलन अपने तत्कालीन लक्ष्य से असफल रहा। विचार के स्तर पर यह कितना भी सुगठित एवं सफल दिखता हो, यह आंदोलन अपने तत्कालिक उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर सका इसलिए अब हम इस बात पर चर्चा करें कि आखिर क्यों यह आंदोलन सफल हो गया।

असफलता के कारण

गणेशमंत्री ने कहा है कि किसी भी आंदोलन की सफलता के लिए और अनिवार्यता का मेल होना चाहिए। अर्थात किसी वास्तविक ध्येय का होना एवं परिस्थितिगत अनिवार्यता, किसी भी आंदोलन की सफलता के लिए अनिवार्य तत्व माने जाते हैं। विनोबा के आंदोलन में इसकी कमी दिखती है वैचारिक दृष्टि से यह आंदोलन सही था किंतु परिस्थितिगत अनिवार्यता का तत्व इसमें समाहित नहीं था। इसका प्रमाण यह है कि भूदान-ग्रामदान के लिए जो अस्त्र (तरीके) अपनाए गये, वह पर्याप्त नहीं थे लोकशिक्षण, हृदय परिवर्तन, प्रेम करुणा आदि के अलावा और कोई उपाय इसमें नहीं अपनाए गये। जैसा कि लोहिया ने कहा कि-'साम्यवाद घृणा का सिद्धांत है किन्तु सर्वोदय प्रेम का अपर्याप्त सिद्धांत है।'

किसी भी आंदोलन में प्रेम और सात्विक रोष का मेल होना चाहिए। भूदान-ग्रामदान आंदोलन में इसका अभाव था इसलिए यह आंदोलन असफल हो गया।

बसंत नालवोकर का कहना है कि- इस आंदोलन में प्रत्यक्ष क्रिया के लिए कोई स्थान नहीं था। इसमें देने वाले को उच्चतर भूमि पर पाहुचा दिया जाता था जबकि लेने वाले में हीं भाव आ जाता था क्योंकि कि इसमें पाने वाले के आत्मा-सम्मान का स्थान नहीं था तथा सब कुछ मालिक की कृपा पर दिखाता था। इस कारण यह आंदोलन असफल हो गया।

इस आंदोलन की असफलता का एक कारण यह भी है कि सैद्धान्तिक रूप से क्योंकि यह सिर्फ समझाने-बुझाने पर आधारित था इसलिए वे सामाजिक संबंध नहीं बन सके जो बनाने चाहिए थे। खुद विनोबा स्वीकार करते हैं कि- 'मैं यह समझता था कि भूदान-ग्रामदान से सभी प्रकार के भेद समाप्त हो जाएंगे लेकिन इन भेड़ों ने ही ग्रामदान-भूदान को तोड़ दिया।'

एक और कारण जो इस आंदोलन की असफलता के लिए माना जाता है वह यह है कि इसने शासन (सरकार) का सहयोग प्राप्त किया। ऐसा कद्पी संभव नहीं है कि एक तरफ शासन के साथ सहकार किया जाए तथा

दूसरी और नीतियों का विरोध किया जाए। कहा भी गया है कि- 'कोई भी क्रांति शासन के कंधों पर चढ़कर नहीं लड़ी जा सकती।' इसका यह कारण है कि शासन का चरित्र दोहरा होता है। वह किसी का भी सहायो अपने फायदे के लिए करता है। और ऐसे में जनता में बहुत ही गलत संदेश जाता है। विनोबा ने भी बाद में स्वीकार किया कि – 'हमने भोलेपन में राज्य पर विश्वास कर लिया कि लोकतान्त्रिक राज्य को स्वयं से भी जन का अनुकरण करना पड़ेगा लेकिन ऐसा नहीं हुआ।'

भूदान-ग्रामदान आंदोलन की असफलता का एक कारण यह भी था कि इसका कानूनी पक्ष काफी कमजोर था। राज्य द्वारा बनाए गए कानून अपर्याप्त थे। ग्रामदान कानून कुछ राज्यों में बने लेकिन वे तब बने जब ग्रामदान आंदोलन उतार पर था। वे कानून खुले दिल से गावों को स्वशासन देना जरूरी मानकर समझ बूझकर नहीं बनाए गये थे। इसलिए उनका उतना फाइदा नहीं उठाया जा सका। हाय कोर्ट के पूर्वा मुख्य न्यायाधीश गजेन्द्र गड़कर ने भी कहा कि 'इस आंदोलन ने बहुत अच्छा वातावरण बना दिया है लेकिन राज्य को जो करना चाहिए था उसने वह नहीं किया।'

भूदान-ग्रामदान आंदोलन की असफलता का एक कारण यह भी था कि इसको कोई पृष्टपोषण (बैंकिंग) नहीं मिला। किसी आंदोलन को चलाने के लिए शिक्षण, प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है वह नहीं की गयी। स्वयं कार्यकर्ताओं का वैसा प्रशिक्षण नहीं हुआ था। यह कहना गलत होगा कि कार्यकर्ताओं में निष्ठा का अभाव था। अभाव स्वयं विचार करने का था। वह बौद्धिक तैयारी नहीं थी, जिसकी आवश्यकता थी।

एक और कारण जो इसकी असफलता का गिनाया जाता है कि इस आंदोलन ने वैकल्पिक विकास की कोई स्पष्ट अवधारणा प्रस्तुत नहीं की। मसलन इस आंदोलन ने केन्द्रीकरण, औद्योगीकरण का विरोध किया, लेकिन इसके विकल्प में क्या करना है इसपर पर्याप्त विचार नहीं किया।

ग्रामदान आंदोलन ने शहरों की उपेक्षा की, यह भी एक कमी मानी गयी। अन्नसहब सहस्त्रबुद्दे ने कहा कि – 'ग्रामदान आंदोलन समस्त: ग्रामों के लिए था। नगर इसकी परिधि के बाहर थे। किसी क्रांति में सार्वत्रिक प्रभावकारिता होनी चाहिए। अतः ग्रामदान स्वभावतः एक एकांकी आंदोलन रहा। मैं दृढ़ता पूर्वक कहूँगा कि यदि हर गाँव ग्रामदान की घोषणा कर दें तो भी भूमिक्रांति कामयाब न होगी।' यह आंकलन सही है क्योंकि भारत गवों में बसता है। एक romantic आग्रह है। आज केंद्र शहर हो गये है। इसलिए शहरों की उपेक्षा ठीक नहीं थी। कोई भी आंदोलन समाज के सभी अंगों को छूए बिना सफल हो ही नहीं सकता। भूदान-ग्रामदान ने ऐसा नहीं किया इसलिए यह असफल हो गया।

प्रसार माध्यमों (मीडिया) ने इस आंदोलन की अनदेखी की। यह भी असफलता का एक कारण माना गया। दरअसल, प्रसार माध्यमों के लिए समाचार मूल्य उसी का होता है, भड़कीला हो, सनसनीखेज हो। चूंकि भूदान-ग्रामदान की शांत क्रांति में वैसा कुछ नहीं था इसलिए मीडिया ने इसकी उपेक्षा की।

इसके अतिरिक्त यह आंदोलन बुद्धिजीवियों के भी उपेक्षा का शिकार बना। बुद्धिजीवियों की अनास्था के पीछे कई कारण थे। उनकी शिक्षा-दीक्षा आधुनिक सभ्यता के मूल्यों में हुई थी और उस सभ्यता में उनका निहित स्वार्थ भी था। ग्रामदान उनके स्वार्थो के प्रतिकूल था, इसलिए बुद्धिजीवियों ने इसकी उपेक्षा की।

ज्ञान शांति मैत्री

इस आंदोलन की असफलता का एक प्रमुख कारण इसका संगठनात्मक कमजोरी है। विनोबा असामान्य प्रतिभाशाली पुरुष थे। विचार दे सकते थे, प्रेरणा दे सकते थे, लेकिन वे मूलतः आध्यात्मिक दृष्टि के थे। संगठन करने की उनकी शक्ति नहीं थी। सच्चितनंद सिन्हा ने सही कहा है कि – 'विनोबा एक मार्क्स है, जिनहे भारतीय संदर्भ में एक लेलीन की जरूरत है।' विनोबा के पास कार्यकर्ताओं की कमी नहीं थी, कमी थी तो संगठनकर्ता की। जयप्रकाश जी में 'लोकनायक' बनाने की समता थी,'लोकसंगठक' बनाने की नहीं। इस तरह कोई भी नेता नहीं था जो कि अपने डैम पर ठोस संगठन तैयार कर सके।

भूदान-ग्रामदान आंदोलन की असफलता का एक कारण यह भी था कि बौद्धिक स्तर पर अन्य विरोधी विचारों को कोई चुनौती नहीं मिली। एक तरफ सामंतवादी परंपरा थी, तो दूसरी तरफ आधुनिक सभ्यता का आक्रमण था, जिसके पिचचे अंतरराष्ट्रीय पूंजी थी। एक तरफ मार्कस्वाद था तो दूसरी तरफ social democratic (सामाजिक जनतंत्र)। इन सब विचारों कि इस आंदोलन के मार्फत से कोई ठोस जवाब नहीं दिया गया।

अंत में यह सवाल उठता है कि सफलता-विफलता की क्या कसौटी होनी चाहिए। सर्व नारायण दास कहते है कि – 'किसी क्रांतिकारी विचार और कार्यक्रम की सफलता-विफलता की पहचान इन बातों से होती है ।

1. क्या मानव समाज को नवीन और उद्दांत ध्येय प्राप्त हुआ ?
2. क्या उस ध्येय की प्राप्ति के लिए मार्ग भी मिला ?
3. क्या वह मार्ग उत्तरोतर सुगम और प्रशस्त होता गया ?
4. क्या ध्येय कुछ करीब भी आया है ?'

उनका कहना है कि भूदान यज्ञ के संदर्भ में इन चारों का उत्तर 'हाँ' में मिलता है। अतः विचार रूप में यह आंदोलन पूर्णत सफल रहा, परिणाम कम या ज्यादा हो सकते है क्योंकि विचार कभी फेल नहीं होते हैं। वैसे परिणाम से भी (ही) किसी चीज का मूल्यांकन करना गलत होगा। मुख्य कसौटी यह चीज होनी चाहिए कि काम उचित है या अनुचित। अगर काम उचित है, तो वह अपने आप में मूल्यवान है।

इसलिए निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि-'ऊपर से भले ही यह दिखाता हो कि भूदान-ग्रामदान आंदोलन असफल हो गया क्योंकि इसे अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं हुए लेकिन गहराई से विचार करें तो पाएंगे कि यह आंदोलन असफल नहीं हुआ, वरन् पूरे सफल माने जाएगें । इसकी अमूतपूर्व ऐतिहासिक सफलता इस बात में है कि इसने अहिंसक क्रांति को राष्ट्र की दहलीज तक ला पहुंचाया और बिना संघर्ष वा टकराव की राह गये ही क्रांति आ सकती है, यह दिखला दिया। यह अलग बात है कि इस क्रांति के स्वागत की तैयारी न तो राष्ट्रनेताओं ने की, न तो बुद्धिमान माने जानेवाले वर्ग की और न कुल मिलकर देश की जनता की ही। आज जो दृश्य प्रस्तुत है वे उस क्रांतिदेवी की दहलीज पर से वापस लौट जाने के ही परिणाम है।'

1.5 सारांश

महात्मा गांधी के दर्शन एवं उनके विचारों को नयी ऊंचाई तक पहुंचाने की दिशा में उल्लेखनीय योगदान देने वाले विनोबा भावे उन सामाजिक विचारकों में थे जिन्होंने राष्ट्रपिता के विकास के माडल पर काम किया और भूदान आंदोलन के जरिए जमीन के पुनर्वितरण के लिए एक नयी दिशा दिखायी। विनोबा ने अपने आंदोलन को सफल बनाने के लिए पूरे भारत का पैदल ही भ्रमण किया। भूदान आन्दोलन आचार्य विनोबा भावे द्वारा सन् 1951 में आरम्भ किया गया स्वैच्छिक भूमि सुधार आन्दोलन था। विनोबा भावे की कोशिश थी कि भूमि का पुनर्वितरण सिर्फ सरकारी क़ानूनों के जरिए नहीं हो, बल्कि एक आंदोलन के माध्यम से इसकी सफल कोशिश की जाए। 20वीं सदी के पचासवें दशक में भूदान आंदोलन को सफल बनाने के लिए विनोबा भावे ने गांधीवादी विचारों पर चलते हुए रचनात्मक कार्यों और ट्रस्टीशिप जैसे विचारों को प्रयोग में लाया। उन्होंने सर्वोदय समाज की स्थापना की। यह रचनात्मक कार्यकर्ताओं का अखिल भारतीय संघ था। इसका उद्देश्य अहिंसात्मक तरीके से देश में सामाजिक परिवर्तन लाना था। इस आंदोलन ने ऐसे सामाजिक वातावरण का निर्माण किया जिससे देश में भूमि सुधार गतिविधि की शुरुआत हुई। इस आंदोलन ने बडी संख्या में लोगों के जीवन को प्रभावित किया और इसके तहत पूरे देश में करीब लाखों लाख एकड़ भूमि दान में मिली जिसे जरुरतमंद भूमिहीन गरीबों में वितरित कर दिया गया।

1.6 बोध प्रश्न

प्रश्न क्रमांक 1 - विनोबा भूदान के द्वारा क्या चाहते थे ?
प्रश्न क्रमांक 2 - भूदान संबंधित विनोबा के तीन सूत्र क्या थे ?
प्रश्न क्रमांक 3 - भूदान-ग्रामदान का वास्तविक अर्थ क्या है ?
प्रश्न क्रमांक 4 - सुलभ ग्रामदान की विशेषता बताइए ?

1.7 कुछ सहयोगी पुस्तकें

- शर्मा, विश्वमित्र. (2007). *20वीं सदी के 100 प्रसिद्ध भारतीय*. दिल्ली : राजपाल एंड सन्स.
- चोलकर, पराग. (1997). *भूदान-ग्रामदान आंदोलन:एक नजर*. वर्धा :आचार्यकुल प्रकाशन.
- भावे, विनोबा. (1956). *भूदान गंगा* खंड 1 से 8. वाराणसी :सर्वा सेवा संघ.
- भावे, विनोबा. (1957). *ग्रामदान*. वाराणसी :सर्वा सेवा संघ.

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई -2 सम्पूर्ण क्रांति

इकाई की रूपरेखा

2.1 उद्देश्य
2.2 प्रस्तावना
2.3 सम्पूर्ण क्रांति का अभिप्राय
2.4 सम्पूर्ण क्रांति और सर्वोदय
2.5 सम्पूर्ण क्रांति की पृष्ठिभूमि
2.6 सम्पूर्ण क्रांति का विमर्श
2.7 सम्पूर्ण क्रांति एवं समाज कार्य
2.8 सारांश
2.9 बोध प्रश्न
2.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.1 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको निम्न बिन्दुओं में सक्षम बनाना है –

- सम्पूर्ण क्रांतिकी अवधारणा को समझ पाने में।
- सत्य एवं अहिंसा के बारे में समझ विकसित कर पाने में ।
- सम्पूर्ण क्रांति की प्रविधि का वर्णन करने में।

ज्ञान शांति मैत्री

2.2प्रस्तावना

समाज छोटी-छोटी इकाइयों से मिलकर बनता है। सभी इकाई मिलकर समाज के कार्य के प्रकार्य को पूर्ण करती है। समाज की चेतना पूर्ण तभी बनती है जब सम्पूर्ण इकाई आपस में मिलकर काम करे। जब किसी व्यक्ति विशेष की विचार शक्ति इतना ताकतवर होती है कि समाज को प्रभावित बड़े पैमाने पर करती है तो व्यक्ति सामाजिक के परिवर्तन का अग्रदूत बन जाता है। समाज लम्बे समय तक सामान्य ढ़र्रे पर चलता रहता है। प्रभावशाली व्यक्ति समाज में अपने विचारों एवं कृत्यों से पूरा परिदृश्य बदल देता है तथा क्रांति कारी परिवर्तन करता है। क्रांति समाज में अमूलचूल परिवर्तन का वाहक होती है। दुनिया का हर समाज अपने जीवन यात्रा में क्रांति के दौर को भी देखा होता है। जिसका प्रभाव समाज पर स्पष्ट दिखाई पड़ता है। भारत गुलामी से निकल कर स्वतंत्रता की जीवन यात्रा 1947 से प्रारंभ किया। लगभग ढ़ाई दशकों के बाद गांधी के ही एक अनुयायी जयप्रकाश के नेतृत्व में 1975 के आस-पास एक क्रांति प्रारंभ की गई जिसे जयप्रकाश ने सम्पूर्ण क्रांति का नाम दिया।

2.3 सम्पूर्ण क्रांति का अभिप्राय

सम्पूर्ण क्रांति को समग्र क्रांति के नाम से भी जाना जाता है। जयप्रकाश नारायण ने सम्पूर्ण क्रांतिका अर्थ भ्रष्ट्राचार, कृशासन, कालाबाजारी, मुनाफाखोरी, जामखोरी एवं विद्यमान शिक्षा व्यवस्था में बदलाव को मानते थे जहाँ मालिक एवं मजदूर के बीच विभाजक रेखा खत्म हो जायेगी तथा सभी प्रकार के विवाद भी समाप्त हो जायेंगे। जयप्रकाश नारायण ने सम्पूर्ण क्रांति की प्राप्ति का मार्ग मार्क्सवादी न मानकर गांधीवादी माना। उन्होंने सत्य, अहिंसा सामुदायिक विकास के साथ-साथ सर्वोदय एवं सामाजिक लोकतंत्र की बात की। बदलाव की प्रक्रिया सम्पूर्ण क्रांतिमें अमूलचूल परिवर्तन लाती है ऐसा जयप्रकाश नारायण का विश्वास था।

2.4 सम्पूर्ण क्रांति और सर्वोदय

सम्पूर्ण क्रांति की अवधारणा जयप्रकाश नारायण ने दिया था वही सर्वोदय की अवधारणा महात्मा गांधी ने दिया था। व्याकरण के दृष्टि से देखा जाये तो एक क्रियात्मक तथा दुसरा संज्ञात्मक अर्थ को धारण करता है। जब स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश में राजनैतिक शिथीलता एवं व्यवस्था की बदहाली पैदा हो गई तो जयप्रकाश नारायण को गांधी के सर्वोदय के लक्ष्य का न पूरा होते हुए परिदृश्य दिखा। अत: सर्वोदय की प्राप्ति के लिए एक बार पुन: भारत में क्रांति हो इसलिए जयप्रकाश नारायण ने सम्पूर्ण क्रांति का नारा दिया। जयप्रकाश का मानना था कि सर्वोदय निर्वाचन पद्धति, दलीय संगठन में विश्वास न करके प्रत्यक्ष लोक तंत्रकी बात करता है जबकि देश आजादी पाने के बाद राजनैतिक तौर पर गुटतंत्र का शिकार हो गया। जिसे सम्पूर्ण क्रांति के द्वारा खत्म करके सामाजिक लोकतंत्र की स्थापना करनी होगी। जयप्रकाश नारायण मानते थे कि आधुनिक समाज में लोकतंत्र एक अपरिहार्य शर्त है पर इसकी उपयोगिता तब होगी जब ईमानदार एवं परार्थ भाव से कार्य करने वाले लोग आगे आकर कार्य करे। राजनैतिक शक्ति के वगैर की समाज के हित में कार्य किया जा सकता है इसलिए महात्मा गांधी कांग्रेस को एक समाज सेवी संस्था के रूप में बदलने की बात की थी। जयप्रकाश जी संगठित दबाव समूह के अस्तित्व को लोकतंत्र के लिए उपयोगी मानते थे जो वगैर राजनैतिक शक्ति के काम करेगा। जयप्रकाश नारायण यह भी मानते थे कि कल्याणकारी राज्य व्यवस्था में नौकर शाही भ्रष्ट चरित धारण कर लेती है। भारत में स्वतंत्रता के बाद राजनैतिक एवं नौकरशाही में परितर्वन हेतु की सम्पूर्ण क्रांति की बात जे.पी. ने की थी।

2.5 सम्पूर्ण क्रांति की पृष्ठिभूमि

इतिहास में उस समय को ज्यादा महत्व दिया जाता है जो परिवर्तनका सूचक रहा है। उसे भी बेहद सम्मान के साथ खुली आखों से देखना चाहिए जब परिवर्तन की बीज समय के गर्भ में बोई गई थी। 15 अगस्त, 1947 को भारत ने स्वतंत्रता के सौभाग्य एवं अधिकार दोनों को प्राप्त किया। देश की शासन की बागड़ोर पं. नेहरू ने प्रथम प्रधानमंत्री के रूप में संभाली तो चुनौतियाँ अपार मूँह बाये उनके सामने खड़ी थी। नेहरूजी के इरादों में नि: संदेह इमानदारी, कर्त्तव्यनिष्ठता एवं लोकतांत्रिक भावना का संगम विद्यमान था। भारत को कल्याणकारी राष्ट्र के रूप में पं. ने आगे बढ़ाना उचित समझा। दुर्भाग्य से कल्याणकारी राज्य का मॉडल भ्रष्ट नौकरशाही एवं शोषित औद्योगिक संस्थाओं का चेहरा धारण कर लिया। नेहरू के बाद लाल बहादुर शास्त्री प्रधान मंत्री बने लगभग दो वर्षके बाद उनके भी लौकिक जीवन का सूरज डूब गया। देश की बागडोर तृतीय प्रधानमंत्री के तौर पर जवाहर लाल की एक लोती पुत्री इंदिरा गांधीने संभाली। धीरे-धीरे इंदिरा

गांधी सत्तावादी नजरिये से ग्रस्त हो गई। एक तरफ देश में भ्रष्ट्राचार, बेरोजगारी, अशिक्षा, भूखमति शोषण की बीमारी देश की आत्मा को नील रही थी तो दूसरे तरफ प्रधानमंत्री के तौर पर इंदिरा गांधी निरंकुश शासकका चेहरा धारणकर चुकी थी। देश का नागर समाज समझ चुका था कि राष्ट्र भटकाव के रास्ते पर चल पड़ा है। इस समय में बीहारमें जयप्रकाश नारायण एक किरण के रूप में दिखे। बीहार छात्र संघर्ष समितिने जयप्रकाश नारायण से आंदोलन का नेतृत्व करने की बात की। जयप्रकाश नारायण दो शर्तों के साथ नेतृत्व करने की स्वीकृति दे रही। प्रथम शर्त आंदोलन अहिंसक होगा एवं दुसरी शर्त यह थी कि आंदोलन का आकार बिहार से बाहर भी होना। इस प्रकार जयप्रकाश के हाथों में आंदोलन की लगाम आते ही आंदोलन बड़ा रूप धारण कर लिया। अप्रैल, 1974 के मध्य में आंदोलनकारियों ने गुजरात विधानसभा के समान बिहार विधान सभा भंग कर राष्ट्रपति शासन लगाने की मांग की। 5 जून को गांधी मैदान में जयप्रकाश नारायण ने आजादी के सपनों पूरा करने के लिए 'संपूर्ण क्रांति' का नारा दिया। उन्होंने कहा कि आंदोलन की रह कंतकाकीरर्ण एवं बेहद संघर्षमय है फिर भी जीत सत्य की होगी। सम्पूर्ण क्रांति भ्रष्ट्राचार एवं पूँजीवादी व्यवस्था की जड़ों को उखाड़े के लिए आवश्यकहै। धीरे-धीरे पूरे देश में रेल हड़ताल बंदी एवं विरोध प्रारंभ हो गया। प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने पैतरा बदला एवं 1974 में परमाणु परिक्षण कराकर आंदोलन की आग को ढुँढी कर दिया पर यह आग कुछ दिनों एवं संदर्भों में ही ढंडी हो पाई। जयप्रकाश नारायण ने सामाजिक आर्थिक बदलाव के लिए मिश्रित अर्थव्यवस्था की मांग की। उनका बेछोड़ रूप से कहना था कि भारत मैं वर्ग व्यवस्था आजादी के सपनों पर पानी फेर देना। वर्गविहीन समाज भारत में हो एवं कोई नवीन बर्गन पैदा हो सके। जय प्रकाश नारायण ने अपने आंदोलन के समय लोगों को यह भी बताया कि शिक्षा के कभी के कारण 'सम्पूर्ण क्रांति' पाना असंभव है इसलिए शिक्षा एक ऐसी शर्ते है जो सर्व सुलभ हो। स्थितिया बदलती गई। प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी दबाव में आती गई। अन्तत: 25 जून, 1975 को आपातकाल की घोषणा करके पूरे भारत में आंदोलन को दबाने की कोशिश की।

2.6 सम्पूर्ण क्रांति का विमर्श

इतिहास के दहलीजपर हर ऐतिहासिक घटनाका दो तरह से अवलोकन होता है। एक यह कि संबंधित घटना ने क्या समाज एवं व्यवस्था के सापेक्ष पाया और क्या खोया। इस तरह सम्पूर्ण क्रांति के भी दो पक्ष उभरकर सामने आते है। प्रथम सकारात्मक पक्ष एवं द्वितीय नकारात्मक पक्ष -

I. **सकारात्मक पक्ष :-** 'सम्पूर्ण क्रांति' की नींव जयप्रकाश नारायण ने डाली और आगे बढ़ाया। जिसका आधार गांधी जी के दर्शन एवं सिद्धांत प्रमुख कारक थे। जयप्रकाश जी भी गांधी जी जैसे किसी राजनैतिक पद पर आसीन न होकर समाज के लिए सेवा एवं त्याग से कार्य करते रहे। यह बात उनके एक कविता से भी स्पष्ट होती है कि –

सफलता और विफलता की
पार्टभाषाएँ भिन्न हैं मेरी
इतिहास से पूछो की वर्षों पूर्व बन नही सकता था प्रधानमंत्री
किन्तु मुझ क्रांतिशोधक के लिए कुछ अन्य ही पक्ष मान्य थे,
पथ त्याग के, सेवा के, निर्माण के, निर्माण के और संपूर्ण क्रांति के

सम्पूर्ण क्रांति भूमिगत क्रांति थी। यह गांधी जी के रामराज्य के सपने के पूरा करने के लिए की गई थी। सम्पूर्ण क्रांति के द्वारा स्वराज के आदर्श रूप में को जयप्रकाश पुन: एक बार लाने की कोशिश किये। जिसके कारण तत्कालीन शासन सत्ता उखड़ गई और आज भी राजनैतिक गलियारे में भारतीय आवाम की कोशिश कायम रहती है।

सम्पूर्ण क्रांति समाजवाद की स्थापना की शंखनाद थी जो जयप्रकाश नारायण के त्याग एवं सेवा से प्रतिध्वनित हुई। राष्ट्र का युवा वर्ग इस क्रांति के दम पर अपनी शक्ति का अहसास कराया और सो रही राजनैतिक सत्ता को कर्त्तव्य पालन हेतु जगाया। इस क्रांति ने अपने गर्भ से कुछ ऐसे राष्ट्रीय नेताओं को पैदा किया जो आज भी भारतीय राजनीति में अपना एक विशेष स्थान रखते है। इस संपूर्ण क्रांति ने देश के दलित, कमजोर एवं पिछड़े वर्ग के लिगों को राजनैतिक रूप से जगा दिया और वे लोन अपनी उपस्थिति दर्ज कराना प्रारंभ किये। मगर दु:ख है कि कई कारणों वश सत्ता के गलियारे में सम्पूर्ण क्रांति का सपना खो गया।

II. **नकारात्मक पक्ष : -** सम्पूर्ण क्रांति के संदर्भ में एक खेमा भारतीय चिंतकों का ऐसा भी था जो उस समय जे. पी. आंदोलन की निंदा कर रहा था और आज भी करता है। उनका कहना है कि सम्पूर्ण क्रांति राष्ट्र विरोधी आंदोलन थी। यह क्रांति जनता के द्वारा दी गई जनादेश की अवहेलना करने वाली थी। इसके भारतीय संविधान एवं लोकतांत्रिक व्यवस्था को पूरी तरह नकारते हुए व्यक्तिवादी एवं गुटतंत्र की स्थापना करने की कोशिश की विरोधी के तौर पर तो यह भी कहा जाता है कि संघ ने इस क्रांति को आग दिया जो अखिल भारतीय विद्यार्थी संगठन के द्वारा आगे बढ़ायी गई। जयप्रकाश नारायण तो मात्र एक मुखौटा हो इसके पीछे हिन्दुवादी ताकते प्रमुख रूप से जिम्मेदार थी। इस क्रांति के संदर्भ में यह भी एक आक्षेप उठाया जाता है कि संपूर्ण क्रांति सिर्फ उन्नति भारतके उत्तर प्रदेश एवं बीहार प्रांत तक सीमित थी। इसका प्रभाव शेष भारत पर नगण्य था। जिसके कारण इस क्रांति का प्रभाव बहुत ज्यादा नही पड़ा। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि सम्पूर्ण क्रांति की स्थिति जयप्रकाश नारायणके नेतृत्व में उतना प्रभावकारी नहीं हो पाई जितना की इसे देखा जाता है।

ज्ञान शांति मैत्री

2.7 सम्पूर्ण क्रांति एवं समाज कार्य

सम्पूर्ण क्रांति का अर्थ समाज में अमूलचूल परिवर्तन से होता है। जहाँ समाज में समानता, सहभागिता, सामुहिक प्रयास, न्याय, एवं गैर-बराबरी के मूल्यों की स्थापना के लिए जयप्रकाश नारायण द्वारा सम्पूर्ण क्रांति की विगुल बटजाई गई। समाज कार्य का उद्देश्य भी समाज में कमजोर, दलित एवं असुरक्षित लोगों की सेवा तथा कल्याण करना होता असुरक्षित लोगों की सेवा तथा कल्याण करना होता है। उसके लिए समाज कार्य अपने व्यावसायिक सिद्धांतों एवं उपागमों का प्रयोग करता है।

समाज कार्य की रेडिकल विचारधारा का कहना है कि समस्था की पैदाइस समाज द्वारा की जाती है। इसलिए समाज में परिवर्तन लाये बगैर व्यक्ति, समूह एवं समुदाय की समस्या का निदान करना संभव नहीं होता है। संपूर्ण क्रांति भी इसी लाभांश बिन्दु से समाज को देखनेका कार्य करती है। जयप्रकाश नारायण को देखने का कार्य करती है। जयप्रकाश नारायणजी का पूर्ण विश्वास था कि सामाजिक संस्थाओं में परिवर्तन लाकर ही समाज के प्रकार्य को बदला जा सकता है। इसी लिए उन्होंने संपूर्ण क्रांति की बात की थी। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि एक समाज कार्य कर्त्ता को चाहिए कि वह पूरी तरह से समाज में परिवर्तन लाने के लिए संपूर्ण

क्रांति के सिद्धांतों एवं नियमों का अनुप्रयोग कर सके। संपूर्ण क्रांति इस सिद्धांत की पूरी तरह से तुक्ति करती है कि बदलाव भारत में अहिंसा, त्याग एवं सेवा के भावना से संभव है और इन मूल्यों के साथ ही समाज कार्य के उद्देश्य को पूरा किया जा सकता है।

2.8 सारांश

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि जयप्रकाश नारायण जी गांधी जी के परम शिवम एवं अनुयायी थे। वे समाज वादी की स्थापना के हिमायती थे। जीवन पर्यंत उन्होंने गैर-सरकारी, अन्याय, आलोकतांत्रि व्यवस्थातथा भ्रष्ट्राचार के विरूद्ध लड़ाई लड़ी।1947 में जयप्रकाश नारायण द्वारा प्रारंभ की गई क्रांति पूरी तरह से अहिंसक थी जिसमें किसानो, मजदूरों एवं छात्रों ने बढ़-चढ़ कर भाग लिया।इस क्रांति का ऐसा प्रभाव पड़ा कि एक क्षत शासन में रहने वाली कांग्रेस एवं इंदिरा सरकार धाराशायी हो गई। इस क्रांति ने भारतीय राजनेताओं को एक बार पुन: आत्म मंथन करने के लिए विवश की। जिसका परिणाम यह निकला कि भारत में दलित, पिछड़ा समाज की राजनीति भी प्रारंभ हो गई।

समाज कार्यकर्त्ता की दृष्टि से सम्पूर्ण क्रांति एक ऐसी दिशा प्रदान करती है जो मानती है कि संस्थागत एवं प्रकार्यवादी परिवर्तन के द्वाराही संपूर्ण समाज की कायापलट की जा सकती है। बगैर संमय, त्याग एवं अहिंसा के मूल्यों के स्थापना के समाज असहिष्णु एवं अराजक होगा। जहाँ सुख-चैन नहीं प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए समाज कार्यकर्ता को व्यावसायिक सिद्धांतों के साथ-साथ मानवतावादी सिद्धांतों के अनुप्रयोग करने की आवश्यकता भी है।

2.9बोध प्रश्न

प्रश्न 1: सम्पूर्ण क्रांतिक्या है? स्पष्ट कीजिये।

प्रश्न 2: सम्पूर्ण क्रांति एवं समाज कार्यपरवृहत वर्णन कीजिये।

प्रश्न 3: टिप्पणी कीजिये

1. छात्र आंदोलन 2.सम्पूर्ण क्रांति का नकरात्मक पक्ष
2.

2.10कुछ उपयोगी पुस्तकें

- प्रभु, आर.के.एवं राव, यू.आर. (अनु. भवानी दत्त पंड्या) (1974). महात्मा गांधी के विचार. दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट.
- मशरूबाला, किशोरलाल. (2001). गांधी विचार-दोहन. नई दिल्ली: सस्ता साहित्य मंडल.
- सुमन, श्रीरामनाथ. (1967). सत्याग्रह : निष्क्रिय प्रतिरोध, असहयोग, सविनय एवं, सत्याग्रह बनारस: उत्तर प्रदेश गांधी स्मारक निधि.
- आचार्य,नंद किशोर.(2004). सभ्यता का विकल्प. बीकानेर : वाग्देवी प्रकाशन.

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई 3सामाजिक आंदोलन की गांधीय प्रविधि

इकाई की रूपरेखा

3.1 उद्देश्य
3.2 प्रस्तावना
3.3 सामाजिक आंदोलन : अर्थ एवं संदर्भ
3.4 सामाजिक आंदोलन की गांधीय प्रविधि
3.5 सारांश
3.6 बोध प्रश्न
3.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप : -

- सामाजिक आंदोलन से परिचित हो पाऐंगे।
- सामाजिक आंदोलन की गाँधीय दृष्टिकोण को जान सकेंगे।

3.2 प्रस्तावना

भारत में, समाज कल्याण का बहुत समृद्ध व विस्तृत इतिहास है। समाज कल्याण के क्षेत्र में बहुत सी विचारधाराएँ व उसे करने के तरीके हैं। इनमें से समाज कार्य के गाँधीवादी उपागम का विशाल तंत्र है जिसमें गाँधीवादी संस्थाएँ व कार्यकर्ता सम्मिलित हैं। भारतीय परिपेक्ष्य में एक व्यावसायिक सामाजिक कार्यकर्ता इसे अनदेखा नहीं कर सकता क्योंकि यह देशज पद्दति को निरूपित करता है और यह पूर्णत: भारतीय दर्शन, संस्कृति व परमपराओं पर आधारित है। गाँधीवादी समाज कार्य की समझ एक व्यावसायिक सामाजिक कार्यकर्ता की भारतीय समाज के मानस व प्रकृति को समझने की अन्तर्दृष्टि प्रदान करता हैं जिसके परिणामस्वरूप अच्छी सेवाएँ प्राप्त की जा सकती हैं।

3.3 सामाजिक आंदोलन : अर्थ एवं संदर्भ

सामाजिक आन्दोलन एक प्रकार का 'सामूहिक क्रिया' है। सामाजिक आन्दोलन व्यक्तियों और/या संगठनों के विशाल अनौपचारिक समूह होते हैं जिनका ध्येय किसी विशिष्ट सामाजिक मुद्दे पर केंद्रित होता है। दूसरे शब्दों में ये ये कोई सामाजिक परिवर्तन करना चाहते हैं, उसका विरोध करते हैं या किसी सामाजिक परिवर्तन को समाप्त कर पूर्वस्थिति में लाना चाहते हैं।

राजनीतिक भागीदारी के संस्थागत दायरों के बाहर परिवर्तनकामी राजनीति करने वाले आंदोलनों को सामाजिक आंदोलनों की संज्ञा दी जाती है। लम्बे समय तक सामूहिक राजनीतिक कार्रवाई करने वाली ये आंदोलनकारी संरचनाएँ नागर समाज और राजनीतिक तंत्र के बीच अनौपचारिक सूत्र का काम भी करती हैं। हालाँकि ज़्यादातर सामाजिक आंदोलन सरकारी नीति या आचरण के ख़िलाफ़ कार्यरत रहते हैं, लेकिन स्वतःस्पूर्त या असंगठित प्रतिरोध या कार्रवाई को सामाजिक आंदोलन नहीं माना जाता। इसके लिए किसी

स्पष्ट नेतृत्व और एक निर्णयकारी ढाँचे का होना ज़रूरी है। आंदोलन में भाग लेने वालों के लिए किसी साझा मकसद और विचारधारा का होना भी आवश्यक है। क्या ये ख़ूबियाँ राजनीति के औपचारिक दायरों में काम करने वाले किसी राजनीतिक दल या दबाव समूह में नहीं होतीं? दरअसल, सामाजिक आंदोलन अपने बुनियादी चरित्र में अनौपचारिक नेटवर्कों की अन्योन्यक्रिया से बनते हैं। वे ऐसे मुद्दे चुनते हैं जिन्हें औपचारिक राजनीति अपनाने से इनकार कर देती है। साथ ही वे प्रतिरोध और गोलबंदी के ग़ैर-परम्परागत रूपों का इस्तेमाल करते हैं। सामाजिक आंदोलनों ने अल्पसंख्यकों, हाशियाग्रस्त समूहों और अधिकार-वंचित तबकों की राजनीति को बढ़ावा दिया है। इसी कारण से यह भी माना जाता है कि समकालीन लोकतंत्र अपने विस्तार और गहराई के लिए सामाजिक आंदोलनों का ऋणी है।

3.4 सामाजिक आंदोलनकी गाँधीय प्रविधि : विधियाँ एवं तकनीकें

गांधी ने जिस सामाजिक आंदोलन की नींव रखी, उसकी जड़ें सत्याग्रह के रूप में प्रस्फूटित हुई। 'सत्याग्रह' शब्द 'सत्य' और 'आग्रह' शब्दों से बना है जिसका अर्थ है सत्य के लिए दृढ़ता पूर्वक आग्रह करना।सत्याग्रह का शाब्दिक अर्थ है सत्य–आचरण हैं। सत्य को आत्मबल के रूप में भी समझा जाता है। यह हिंसा की उपेक्षा करता है। दक्षिण अफ्रीका में प्रवासी भारतीयों के अहिंसात्मक प्रतिरोध व अन्य लोगों के निष्क्रिय-विरोध में फ़र्क दिखलाने के लिए सत्याग्रह शब्द गढ़ा गया था। सत्याग्रह प्रेम पर आधारित है, घृणा पर नहीं। सत्याग्रह का आधार अपने विपक्षी को प्रेम करने और स्वयं कष्ट उठाकर उसका हृदय-परिवर्तन करने में है। सत्याग्रह पाप का प्रतिरोध है, पापी का नहीं। सत्याग्रह अनुशासन की मांग करता है, इसके परिणामस्वरूप व्यक्ति को आत्मबलिदान करना पड़ सकता है।

❖ **सत्याग्रही के लिए नियम**

गांधी जी ने सत्याग्रही के लिए कुछ नियम निर्धारित किये थे जिसका पालन सभी सत्याग्रही को करना चाहिए-

- सत्यरूपी ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास करना.
- अहिंसा में विश्वास.
- ब्रह्मचर्य का पालन
- आस्तेय का व्यावहारिक प्रयोग
- अपरिग्रह
- मादक द्रव्यों से दूर रहना.
- खादी पहनना.
- अस्पृश्यता का पालन करना.
- आत्मानुसरण व अनुशासन का पालन करना.

ज्ञान शांति मैत्री

❖ सत्याग्रह के चारित्रिक लक्षण

1) सत्याग्रही में सत्याग्रह करने से पहले उसके उद्देश्यों की सफलता का ज्ञान एवं निष्ठा होना आवश्यक है। इसे आत्मबल कहते हैं।
2) सत्याग्रही को प्रेम, सद्भावना एवं उत्साहवर्धक वातावरण का निर्माण करना चाहिए, ना कि भय या आतंक का। सत्याग्रह सामने वाले के हृदय एवं मस्तिष्क के परिवर्तन हेतु प्रयास करता है। इसे प्रेमबल कहते हैं।
3) सत्याग्रही को निडर होना चाहिए ताकि प्रतिद्वंदी पर भी भरोसा कर सके। प्रतिद्वंदी यदि उसे बार-बार धोखा देता है फिर भी सत्याग्रही को उस पर विश्वास करना चाहिए।
4) सत्याग्रही को हमेशा अपना पक्ष या विचार खुले रखना चाहिए ताकि उनका मूल्यांकन और पुनर्मूल्यांकन हो सके उनकी त्रुटियों का निराकरण किया जा सके।
5) सत्याग्रही के लिए कोई संघर्ष समय सीमा निश्चित नहीं है। सत्याग्रही को कष्ट या पीड़ा उठाने के लिए अपने आप को समर्थ बनाना चाहिए सत्याग्रह में हार के लिए कोई स्थान नहीं है।
6) एक बड़े उद्देश्य से किया गया सत्याग्रह इस बात पर निर्भर नहीं होता कि उसमें कितनी संख्या है किन्तु उसकी सफलता उसकी गुणवत्ता पर निर्भर होता है एक सच्चा सत्याग्रही किसी भी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए पर्याप्त है।
7) सत्याग्रह की अचार संहिता में कठोर ताकतों के सामने समर्पण करने का प्रावधान नहीं है। पीड़ा के कारण भी समर्पण नहीं होना चाहिए, न ही बंदूक के डर से समर्पण होना चाहिए।
8) सत्याग्रह सत्य को प्राप्त करने की एक अनर्थक प्रयास एवं निश्चय है।
9) सत्याग्रही को हमेशा ही संघर्ष के लिए तैयार रहना चाहिए और किंतु शांति हेतु भी उतना ही आतुर रहना चाहिए। शांति के हर अवसर का स्वागत करने को तत्पर रहना चाहिए। इसे न्यायबल कहते हैं।

❖ सत्याग्रह की सफलता के लिए निम्नलिखित शर्तें आवश्यक हैं।

अ) सत्याग्रह में विरोधियों के प्रति अपने में किसी प्रकार की घृणा या दुर्भावना नहीं होना चाहिए। प्रेम से ही विजय का लक्ष्य प्राप्त करना है।

आ) निश्चित रूप से सत्य एक समाज के कल्याण हेतु होना चाहिए, बहुजन हिताय बहुजन सुखाय। सत्याग्रही को अपने उद्देश्य की सफलता के लिए हर समय तैयार रहना चाहिए।

❖ सत्याग्रही के लिए आचार संहिता

गांधीजी ने सत्याग्रही के लिए निम्न आचार संहिता का पालन आवश्यक बताया है।

1) सत्याग्रही को ईश्वर में अटल विश्वास होना चाहिए।
2) उसका विश्वास सत्य एवं अहिंसा पर दृढ़ होना चाहिए। अपनी पीड़ा के माध्यम से मानवीय संवेदना एव ईश्वर के प्रति सच्ची निष्ठा होना चाहिए। ताकि सत्य एवं प्रेम को जागृत कर उन्हें प्रसारित किया जाए।

ज्ञान शांति मैत्री

3) उसका जीवन आडम्बर रहित होना चाहिए। साथ ही अपने उद्देश्य की सफलता के लिए सभी तरह का त्याग करने के लिए तत्पर रहना चाहिए।
4) उसके जीवन का आवश्यक उद्देश्य खादी पहनना एवं सूत कातना होना चाहिए।
5) सत्याग्रही को मादक द्रव्यों का उपयोग निषेध होना आवश्यक है ताकि वह अपने उद्देश्य के प्रति मानसिक रूप से संतुलित रहे।
6) सत्याग्रही को समय-समय पर बनाए गए नियमों का पालन एवं अनुशासित होना परम आवश्यक गुण है।

❖ सत्याग्रह की विधि

गाँधी एवं उनके अनुयायी द्वारा सत्याग्रह की निम्नलिखित पद्धतियाँ बताई गई है :

- **आग्रह या दबाव**

यह सत्याग्रह की सबसे नरम या कोमल विधि है। जोकि गलत नीतियों पर चोट करती है। सत्याग्रही का उद्देश्य गलत काम करने वालों को नीचा दिखाना न होकर उसका हृदय परिवर्तन करना होता है। सत्याग्रही का उद्देश्य सामने वाले का हृदय परिवर्तन करना है।

इसमें स्वयं कष्ट उठाकर विरोधी को जीतना होता है। बलपूर्वक विरोध के द्वारा किसी को अपने अधीन बनाना एवं पीड़ा पहुँचाना इसका उद्देश्य नहीं है। सत्याग्रही बल रहित एवं शांतिपूर्वक तरीके से अपनी बात मनवाने पर अपना ध्यान केंद्रित करता है।

- **उपवास**

उपवास सत्याग्रह की एक महत्वपूर्ण विधि है जिसका गाँधीजी निरंतर प्रयोग करते थे। उन्होंने अपने जीवन काल में इसका 17 बार उपयोग किया । ब्रिटिश साम्राज्य की अन्यायी प्रवृत्ति के विरूद्ध तीन बार, हरिजन एवं अछूतों के हित के लिए तीन बार, साम्प्रदायिक दंगों के दमन, अहिंसा एवं उपद्रवों के रोकथाम हेतु चार बार, आत्मशुद्धि एवं प्रायश्चित के लिए तीन बार एवं मिल कर्मचारियों की समस्याओं के लिए भी प्रयोग किया । गांधीजी ने अनुसार सत्याग्रह में उपवास एक सबल एवं सार्थक हथियार है जिसे हर कोई नहीं कर सकता है। गांधीजी के अनुसार सत्याग्रही में स्वार्थ, क्रोध एवं अधैर्य नहीं होना चाहिए। उसे दृढ़, सहनशील, ठोस इच्छा शक्ति, एवं शांत स्वभाव का होना अत्यंत आवश्यक है, तभी वह अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। सत्याग्रही उपवास को अंतिम अस्त्र के रूप में मानता है। जब सारे उपाय विफल हो जाते हैं तब उपवास की आवश्यकता होती है। उपवास में नकल एवं दिखावे के लिए कोई स्थान नहीं है।

- **बहिष्कार**

सत्याग्रह की एक महत्वपूर्ण विधि बहिष्कार भी है लेकिन गांधीजी इसे बहुत अच्छा उपाय नहीं मानते थे। किसी व्यक्ति या समूह का सामूहिक रूप से संबंध तोड़ना ही बहिष्कार कहलाता है। बहिष्कार निरस्त करने की शर्त है जिसके नियम बहुत कष्टदायी है । गाँधीजी ने बहिष्कार का प्रयोग मुख्यत: तीन प्रमुख संस्थाओं के

प्रति किया था। जो ब्रिटिश साम्राज्य को संगठित एवं शक्तिशाली बनाते थे। वे तीन संस्था, विधानसभा, न्यायालय और सरकार द्वारा संचालित शिक्षण संस्थाएँ थी। इसके विकल्प के रूप में उन्होंने ग्राम पंचायत, स्वदेशी एवं बुनियादी तालीम का नारा दिया था। ग्राम पंचायत के माध्यम से गांधी जी आत्म-निर्भर गांवों का प्रस्ताव रखते हैं जो अपनी मूलभुत जरूरतों के लिए किसी पर आश्रित नहीं होगा एवं जो सामुहिकता की भावना से प्रेरित होगा । स्वदेशी के माध्यम से उन्होंने विदेशी वस्तुओं के निषेध एवं घर में ही बनी वस्तुओं का प्रयोग सुझाया ताकि गृह उद्योग को संरक्षण मिल सके। बुनियादी तालीम के माध्यम से उन्होंने नैतिक एवं हस्त-कौशल को बढावा देने वाली शिक्षा पर जोर दिया ।

- **सविनय अवज्ञा**

गाँधीजी सविनय अवज्ञा को संवैधानिक आंदोलन का अचूक अस्त्र मानते थे। उनके अनुसार, सविनय अवज्ञा आंदोलन एक स्वस्थ प्रभावकारी संवैधानिक आंदोलन है। अवज्ञा एक ऐसा हथियार है जिसके लिए व्यक्ति में साहस एवं उत्साह होना अनिवार्य है। यह कार्य जन अवज्ञा, राजतंत्र या आपराधिक प्रवृत्ति के द्वारा संभव नहीं है। राज्य का चरित्र होता है कि वह अपराधों का दमन बलपूर्वक करते हैं। सत्याग्रही समाज के नियमों के तहत विवेकपूर्ण एवं शुद्ध आत्मा एवं दृढ़ इच्छा से इसे प्रयोग कर सकता है। सार्वजनिक आंदोलन के लिए सबसे अहम सिद्धांत है कि उसमें किसी हिंसा के लिए स्थान नहीं होना चाहिए। वह निश्चित व्यक्तियों या सामान्य जनमानस द्वारा किया जाना चाहिए, साथ ही राज्य या प्रतिपक्षी संस्था द्वारा उन्हें उकसाया नहीं जाना चाहिए। अत: यह स्पष्ट है कि सिविल अवज्ञा अहिंसात्मक होना चाहिए।

- **धरना**

धरना हिन्दी और उर्दू का शब्द है जिसे हम किसी के घर के सामने या आफिस के सामने बैठकर अपनी बात मनवाने का प्रयास करते हैं। गाँधी जी के अनुसार यह एक क्रूर कार्य होता है। इससे अपनी बात मनवाने के लिए प्रतिद्वंदी पर अनावश्यक दबाव दिया जाता है। गाँधी जी के अनुसार यह एक कायराना एवं तिरस्कृत कार्य है। इसे वह हिंसक कार्य कहते हैं।

ज्ञान शांति मैत्री

- **हड़ताल**

गाँधीजी के अनुसार सत्याग्रह की अन्य विधियों में हड़ताल भी एक कारगर अस्त्र या तरीका है। वह सामान्य या औद्योगिक ही क्यों न हो उसका भी आधार सत्य एवं अहिंसा पर होना चाहिए। उनके अनुसार हड़ताल की प्रकृति एवं लक्ष्य न्यायिक प्रक्रिया द्वारा ही होना चाहिए। अन्य प्रकरण जो सामान्य जनमानस या राजनैतिक दलों द्वारा लगाए जाते हैं। उनका भी स्पष्ट उद्देश्य होना चाहिए।

गाँधीजी के सामाजिक आंदोलनके प्रविधि की विशेषताएँ

गाँधीजी द्वारा किये गये सामाजिक आंदोलनोंका विश्लेषण करने के उपरांत, उनमें निम्नलिखित विशेषताएँ बताई जा सकती हैं।

- **देशज समाज कार्य का प्रारूप**

गाँधीजी भारत के पहले सामाजिक विचारक थे जिन्होंने भारतीय समाज को एक नये आदर्श रूप में प्रस्तुत किया उन्होंने प्रत्येक किया उन्होंने विषय पर अपने विचार दिये जैसे कि राज्य व प्रशासन की प्रकृति, सुरक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता, गृह शिक्षा, रोजगार, कमजोर वर्गों का विकास तथा समाज में व्याप्त बुराईयों जैसे अस्पृश्यता, नशा मुक्ति, गरीबी आदि।

- **सामाजिक दायित्वों का नया चिंतन**

यद्यपि, गाँधीजी ने स्वयं कहा है कि उनके मूल्य व सिद्धान्त उतने ही पुराने हैं जितना कि प्रकृति फिर भी उनकी संहिताबद्ध प्रस्तुतीकरण एक नवीनता लिए हुए है । यह उनकी सामाजिक व राजनीतिक गतिविधियों का अनुपम आधार है। गाँधीवादी चिंतकों द्वारा तैयार की गई आचार संहिता भी अनुकरणीय है।

- **व्यावहारिक चिंतन**

गाँधीजी केवल एक सैद्धांतिक चिंतक ही नही थे, उन्होंने जो कहा उसे व्यवहार में भी लाये। ये सब उनके विचारों एवं कार्यों से स्पष्ट परिलक्षित होता है। गाँधीजी का अठारह सुत्री रचनात्मक कार्यक्रम कथनी को करनी में बदलने का एक अच्छा उदाहरण है।

- **सामाजिक दायित्वों को पूरा करने की विधियों का अविष्कार**

गाँधीजी ने बड़े स्तर पर सामाजिक व राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सत्याग्रह का प्रयोग किया तथा इनकी उपयोगिता को नया आयाम/अर्थ प्रदान किया। असहयोग की अवधारणा गाँधीजी ने पाश्चात्य विचारक हैनरी डैविड़ थोरो से लिया, लेकिन सत्याग्रह उनकी अपनी खोज थी। उनके द्वारा सत्याग्रह का प्रयोग समाज शास्त्र के विद्यार्थियों के लिये विशेष अध्ययन का विषय रहा।

- **सामाजिक सुधार से सामाजिक विकास की ओर**

नि:संदेह गाँधी की सामाजिक क्रियाशीलता का प्रारंभ एक समाज सुधारक के रूप में हुआ। देश में वह समय समाज सुधार का ही था। लेकिन गाँधीजी ने दूसरों की तरह अपने आपको वहीं तक सीमित नही रखा बल्कि सामाजिक समस्याओं से पीडितों की भलाई के लिये अपने कार्य करते रहे। असल में गाँधीजी समाज में कुछ छुटपुट कार्यों में विश्वास नही करते थे वो बुरे तरीके, विकृत व टूटे समाज का पुन: निर्माण व नये समाज की रचना करना उनका उद्देश्य था।

- **कार्यकार्ताओं व संस्थाओं का राष्ट्रीय संगठन**

गाँधीजी ने अपने जीवन के अंतिम पड़ाव पर, काँग्रेस पार्टी को विघटित कर लोक सेवक संघ बनाने की सलाह दी जो राजनीतिक गतिविधियों से पूर्णत: मुक्त हो तथा जिसमें पूर्णकालिक सामाजिक कार्य हो। यद्यपि, यह विचार मूर्तरूप न ले सका तथापि गाँधीजी ने बड़ी संख्या में राष्ट्रीय स्तर पर सामाजिक कार्यकर्ताओं का

ज्ञान शांति मैत्री

जो संगठन खड़ा किया वह अपने आप में अद्भुत एवं अनुकरणीय है। ये सभी संस्थाऐं वर्तमान में गाँधीजी विचारधारा के अनुरूप कार्यकर रही है।

- **समाज कार्य में धर्मनिरपेक्षता के पक्षघर**

गाँधीजी आगमन के पूर्व भारत में अधिकतर सामाजिक कार्य धर्म के आधार पर गठित संगठनों द्वारा किये जा रहे थे। गाँधीजी ने सभी सामाजिक गतिविधियों को एक धर्मनिरपेक्ष व आध्यात्मिक आधार प्रदान किया। आज की धर्मनिरपेक्षता से भिन्न गाँधीजी ने धर्म को दरकिनार नही किया परन्तु सभी धर्मों से प्रोत्साहन देने वाले तत्वों का समावेश अपने दायित्व निर्वाह के दौरान किया।

3.5 सारांश

महात्मा गांधी बीसवीं सदी के एक ऐसे राजनीतिक एवं सामाजिक व्यक्तित्व के रूप में जाने जाते हैं जिन्होंने सिद्धांत को व्यवहार को एकीकृत करने के लिए अपना जीवन लगाया। समाज कार्य का उद्गम भले ही एक अनुशासन केरूप में पश्चिमी की देन हो लेकिन उसे एक व्यावहारिक एवं जनापेक्षी चरित्र, जिसे देशज समाज कार्य कहा जा सके,गांधी की देन मानी जा सकती है।

3.6 बोध प्रश्न

प्रश्न 1: सामाजिक आंदोलन को विस्तृत रूप से समझाएं।

प्रश्न 2: सामाजिक आंदोलनकी गांधीय प्रविधि क्या है ? स्पष्ट कीजिये।

प्रश्न 3: सामाजिक आंदोलनकी गांधीय प्रविधि की विशेषताओं को बताइये।

प्रश्न 4: टिप्पणी कीजिये-

1. धरना 2. हड़ताल

3 . सविनय अवज्ञा

3.7 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

- गांधीजी, (2014). *रचनात्मक कार्यक्रम*, अनु. काशीनाथ त्रिवेदी, अहमदाबाद : नवजीवन प्रकाशन मंदिर.
- --------, (2014). *आत्मकथा*, अनु. काशीनाथ त्रिवेदी, अहमदाबाद : नवजीवन प्रकाशन मंदिर.
- --------, (2015). *हिंद स्वराज*, अनुवादक, अमृतलाल ठाकोरदास नाणावटी, अहमदाबाद : नवजीवन प्रकाशन मंदिर.
- अहमद, एजाज़.(2008). *किनकी सदी, किनकी सहस्राब्दी?,* अनु. मनोज झा, मेरठ : संवाद प्रकाशन.
- आचार्य, नंदकिशोर. (2010*). सत्याग्रह की संस्कृति*, बीकानेर:वाग्देवी प्रकाशन.

- कालेलकर, काका एवं अन्य (सं.),(1966). *गांधी: व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव*, नई दिल्ली: गांधी स्मारक निधि तथा सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन.

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई - 4 नव सामाजिक आंदोलनएवं गांधी

इकाई की रूपरेखा

4.0 **उद्देश्य**

4.1 **प्रस्तावना**

4.2 **नव सामाजिक आंदोलन: अर्थ एवं संदर्भ**

4.3 **नव सामाजिक आंदोलन की विशेषताएं**

4.4 **पर्यावरणीय आंदोलन**

4.5 **अन्ना आंदोलन**

4.6 **जन सत्याग्रह मार्च**

4.7 **सारांश**

4.8 **बोध प्रश्न**

4.9 **कुछ उपयोगी पुस्तकें**

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको निम्न बिन्दुओं में सक्षम बनाना है –

- नव सामाजिक आंदोलनों के परिदृश्य और संरचना को समझ पाने में।
- पर्यावरणीय आंदोलनों को जान पाने में।
- अन्ना आंदोलन एवं जन सत्याग्रह के बारे में समझ विकसित कर पाने में ।
- नव सामाजिक आंदोलन की गांधीय प्रविधिका वर्णन करने में।

ज्ञान शांति मैत्री

4.1 प्रस्तावना

सामाजिक आंदोलनों को लंबे समय से चले आ रहे निरंतर सामूहिक प्रयास के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। सामान्य तौर पर ये ऐसे प्रयत्न होते हैं जो सरकार की नीतियों के विरुद्ध खड़े होते हैं और परिवर्तन के लिए प्रतिबद्ध होते हैं। नव सामाजिक आंदोलन भी परिवर्तन की मांग ही करते हैं परंतु इनमें वे आंदोलन आते हैं जिन मांगों को अभी तक नजरंदाज कर दिया गया था अथवा अत्यंत कम महत्व दिया गया था।

4.2 नव सामाजिक आंदोलन: अर्थ एवं संदर्भ

नव सामाजिक आंदोलन वे आंदोलन होते हैं जो उत्तर-आधुनिक राजनीति के अंतर्गत आते हैं। इंका सरोकार मानवीय जीवन की गुणवत्ता का उत्तरोत्तर विकास करना होता है। ये वे आंदोलन हैं जो मानव जीवन में फैले अन्य के प्रति नवीन चेतना से प्रोत्साहित होकर समकालीन परिदृश्य में उभरकर सामने आए हैं। इन्हें नव सामाजिक आंदोलन का सम्बोधन इसलिए दिया जाता है क्योंकि इनमें पहचान, अस्मिता और स्वायत्ता

से जुड़े ऐसे मसलों पर ध्यान केन्द्रित किया गया है जो किसी वर्ग विशेष से संबन्धित मसले नहीं हैं और ये सामाजिक आंदोलन के आधुनिक स्वरूप को दर्शाते हैं।नव सामाजिक आंदोलनों का मूल उद्देश्य केवल राज्य की सत्ता में सुधार करना ही नहीं है अपितु इनके साथ-साथ वैयक्तिक व सामूहिक नैतिकता को भी सुदृढ़ करना है। मोटे तौर पर, अस्मितापरक आंदोलनों को नव सामाजिक आंदोलन की संज्ञा दी जा सकती है। इन आंदोलनों में किसी वर्ग विशेष अथवा किसी समूह विशेष का सरोकार नहीं होता है, यह सामूहिक हित के लिए संचालित होता है। भारत में इन आंदोलनों का आरंभ 70 के दशक से माना जाता है। नव सामाजिक आंदोलनों में पर्यावरणीय आंदोलन, नारीवादी आंदोलन, मानवाधिकार आंदोलन, छात्र आंदोलन आते हैं। 1960-70 के दशक में, यूरोपीय व अमेरिकी समाज व्यापक आधार वाले बड़े आंदोलनों के गवाह रहे हैं जो कि अपनी प्रकृति में मूलत:मानवतावादी, सांस्कृतिक एवं भौतिक वाद से परे की बात करने वाले थे।

इन आंदोलनों के उद्देश्य एवं मूल्य अनिवार्यत: सार्वभौमिक थे। उनके कार्य मनुष्य के सार तत्व को बचाये रखने एवं उन स्थितियों को बनाये रखने वाले थे जो मनुष्य को बेहतर जीवन स्थितियां मुहैया कराने में सहायता दे सकें।

अपने पहले के आंदोलनों से नव-सामाजिक आंदोलन इस बात में समान है कि यह भी फैक्ट्रियों में मजदूरी बढ़ाने में आर्थिक अन्याय व शोषण के मुद्दों पर संघर्षरत रहते है।

नव-सामाजिक आंदोलन 'विविधता''बहुलता' को स्वीकार करते है। इनका यह बहरूपीपन नस्लवाद विरोध, परमाणुकरण विरोध, नि:शस्त्रीकरण, स्त्रीवादी आंदोलन, पर्यावरण वादी आंदोलन, स्थानीयता वाद एवं जाति, नागरिक स्वतंत्रता इत्यादि में प्रकट होता है जो कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता व शांति के मुद्दे है।

4.3 नव-सामाजिक आंदोलनों की विशेषताएं

1. नव-सामाजिक आंदोलनों मुख्यत: अहिंसक व राजनीतिक रूप से गैर रेडिकल चरित्र वाले रहे है यह इस अर्थ में रेडिकल चरित्र वाले है कि ये भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के लोकतांत्रिक चौखटे को नकारते नहीं है।
2. 'नव' आंदोलन नये नहीं है पर वे अपनी विशिष्टताएं रखते है।
3. नव-सामाजिक आंदोलन ज्यादा विविधता एवं परिवर्तनशीलता दर्शाते है लेकिन नैतिकता व न्याय का भाव जगाकर और वंचना के विरूद्ध तथा अपने अस्तित्व एवं अस्मिता के लिए सामाजिक गोलबंदी द्वारा सामाजिक शक्ति को जगाकर व्यक्तिगत गोलबंदी करते है।
4. नव-सामाजिक आंदोलन की शक्ति व महत्ता चक्रीय है और व्यापक राजनैतिक, आर्थिक एवं विचारधारात्मक चक्रों से जुड़ी है। जब आंदोलनों के जन्म देने वाली स्थितियां बदलती है, आंदोलन अदृश्य हो जाते है।
5. नव-सामाजिक आंदोलन के वर्गीय चरित्र को भी समझना महत्वपूर्ण है जो कि पश्चिम में मुख्यतया मध्यम वर्ग, दक्षिण में मजदूर वर्ग एवं पूर्व में दोनों का मिश्रण है।

6. नव-सामाजिक आंदोलन कई तरह के है। इनमें से अधिकांशत: राज्य शक्ति की तुलना में ज्यादा स्वायत्तता प्राप्ति की इच्छा रखते है और कुछ ऐसे है जो यह चाहते है कि राज्य उन्हें सामाजिक आंदोलन की भांति स्वीकार करें।
7. यद्यपि आक्रामक होने की बजाय अधिकांशत: सामाजिक आंदोलन रक्षात्मक व अल्पजीवी है साथ ही ये सामाजिक रूपान्तरण के प्रभावी एजेंट है।
8. नव-सामाजिक आंदोलन एजेंट की भ्रांति प्रस्तुत होते है और वर्तमान पूंजीवाद में 'अलग करने' व 'समाजवाद की ओर संक्रमण' के पुर्नव्याख्याकार माने जाते है।
9. कुछ सामाजिक आंदोलन की सदस्यता आपस में मिली जुली होती है और वे अन्यों के साथ गठबंधन भी बनाते है। जबकि कुछ एक दूसरे से गतिरोध एवं संघर्ष भी पैदा करते है।
10. नव-सामाजिक आंदोलन अपने उद्देश्य एवं रणनीतियों को खुद तैयार करते है जैसे नुक्कड़ नाटक आदि।
11. अधिकांश नव-सामाजिक आंदोलनों की धारणा है कि 'नागरिक समाज' धीरे धीरे समाप्त हो रहे है। इनका सामाजिक क्षेत्र सिकुड़ता जा रहा है,'नागरिकसमाज' की 'सामाजिकता' राज्य की नियंत्रित शक्ति के कारण क्षीण होती जा रही है। राज्य और बाजार नागरिक समाज के सभी आयामों को निर्धारित करने में लगे हुए है। नव-सामाजिक आंदोलन राज्य के बढ़ते नियंत्रण शिंकजे के विरूद्ध समाज व समुदाय की आत्मरक्षा के मुद्दे को उठाते हैं।
12. नव-सामाजिक आंदोलन 'वर्ग' और 'वर्ग संघर्ष' की अवधारणा के सहारे संघर्षो व विरोधाभासो को समझने के मार्क्सवादी विचार में मूलभूत फेरबदल करते है। नस्लवाद विरोध,नि:शस्त्रीकरण, पर्यावरणवादी आंदोलन वर्ग संघर्ष नही है। ये वर्ग से परे सामूहिक संघर्ष है।
13. नव-सामाजिक आंदोलन राष्ट्रीयता से परे है। ये आंदोलन मानवीय मुद्दों और मानवीय अस्तित्व से जुड़ी परिस्थितियों – विशेषत: भविष्य के एक सुरक्षित अस्तित्व की संभावना के लिए संघर्ष और प्रयास करते है।
14. नव-सामाजिक आंदोलन फैक्ट्री मजदूरों के श्रम संघठन मॉडल और राजनैतिक दलों के राजनैतिक मॉडल को नकारते है। ग्रीन पार्टी आदि के अपवाद को छोड़ दे तो नव-सामाजिक आंदोलन जमीनी राजनीति में, जमीनी गतिविधियों में रूचि लेते है। ये छोटे समूह के आंदोलन व स्थानीय मुद्दे पर ध्यान केंद्रित करते है।
15. नव-सामाजिक आंदोलन की संरचना क्लासिक (शास्त्रीय) आंदोलनों से इस मायने में भिन्न है कि नव-सामाजिक आंदोलन अपनी प्रेरणा, उद्देश्यों, लक्ष्यों व दृष्टिकोण में बहुलता को स्वीकारते है और इनका सामाजिक आधार बहलता पर आधारित है।

4.3 पर्यावरणीय आंदोलन

पर्यावरणीय आंदोलन न सिर्फ भारत अपितु पूरे विश्व में चर्चा का पर्याय बन चुका है। आज वैश्विक स्तर पर पर्यावरण राजनीति का अंग बन चुका है। यदि पर्यावरण को वैज्ञानिक नजरिए से विश्लेषित किया जाय तो इसका अभिप्राय है, सम्पूर्ण विश्व जिसमें जीव-जन्तु तथा उनके प्रकृतिक निवास व जल, वायु, मृदा आदि की एक अंतर्संबंधित संरचना है। विश्व के आधुनिक माडल के परिणामस्वरूप उत्पन्न पर्यावरणीय समस्याओं

के प्रतिरोध के रूप में उत्पन्न आंदोलनों को पर्यावरणीय आंदोलन के नाम से जाना जाता है। यहाँ चार पर्यावरणीय आंदोलनों को प्रस्तुत किया जा रहा है–

- **चिपको आंदोलन**

चिपको आंदोलन की शुरुआत सन् 1973 में उत्तराखंड के चमौली ग्राम (तब उत्तर प्रदेश था) में हुआ था। इस आंदोलन में किसानों ने सूखे वृक्षों की कटाई का शांत और अहिंसक विरोध किया था। यह आंदोलन तब शुरू होता है जब वन विभाग ने कृषि उपकरण बनाने वाले एक स्थानीय संगठन 'दसौली ग्राम स्वराज्य संघ' को एक वृक्ष देने से मना कर दिया और वन विभाग ने एक निजी कंपनी को वृक्ष दे दिया। इस घटना से आक्रोशित होकर उक्त संघ के नेतृत्व में सभी ग्रामीण लकड़ी से भरे ट्रकों के आगे एलईटी गए और लकड़ी के गोदाम में आग लगा दी। इस आंदोलन का मुख्य उद्देश्य व्यवसाय के लिए हो रही वनों की कटाई पर रो लगाना था और इसे रोकने के लिए बाद में महिलाएं पेड़ों से चिपक कर खड़ी हो गईं पेड़ों की नीलामी के प्रति स्थानीय महिला गौरा देवी व अन्य महिलाओं द्वारा विरोध किया गया परंतु ठेकेदार और सरकार पर इस विरोध का कोई असर नजर नहीं आया। बाद में एक नेता चंडी प्रसाद भट्ट के नेतृत्व में इस प्रयास ने एक प्रभावकारी आंदोलन का रूप ले लिया। फलतः महिलाएं पेड़ों से चिपक कर खड़ी हो गई और वे कहने लगी कि पहले हमें काटो फिर इन पेड़ों को भी काट लेना। चिपको आंदोलन का घोषवाक्य था–

क्या हैं जंगल के उपकार, मिट्टी, पानी और बयार ।

मिट्टी, पानी और बयार, जिंदा रहने के आधार ॥

प्रारम्भ में इस आंदोलन की मांगें आर्थिक थीं, यथा- वनों और वनवासियों का शोषण करने वाली ठेकेदारी व्यवस्था का उन्मूलन कर वन श्रमिकों की न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण, नया वन बंदोबस्त और स्थानीय छोटे उद्योगों के लिए रियायती कीमत पर कच्चे माल की आपूर्ति। शनैः शनैः चिपको आंदोलन परम्परागत अल्पजीवी विनाशकारी अर्थव्यवस्था के विरुद्ध स्थायी अर्थव्यवस्था-परिस्थितिकी का एक सशक्त जन आंदोलन के रूप में पर्णित हो गया। अब आंदोलन की मांगे बादल गईं, यथा- हिमालय के वनों की प्रमुख उपज राष्ट्र के लिए जल हैऔर कार्य मिट्टी बनाना, सुधारना और उसे स्थिरता प्रदान करना है। इसलिए अभी हरे पेड़ों की कटाई तब तक (10 से 25 वर्ष) स्थगित रखी जानी चाहिए जब तक राष्ट्रीय वन नीति के घोषित उद्देश्यों के अनुसार हिमालय में कम से कम 60 प्रतिशत क्षेत्र पेड़ों से आच्छादित न हो जाए। मृदा और जल संरक्षण करने वाले इस प्रकार के पेड़ों का रोपण किया जाना चाहिए जिनसे लोग भोजन आदि की मूलभूत आवश्यकतों को पूरा कर सकें। मोटे तौर पर, यह आंदोलन निम्न मांगों पर आधारित था–

1. व्यवसाय हेतु पेड़ों की कटाई पर रोक लगाई जाय।
2. परंपरागत अधिकारों को लोगों की न्यूनतम आवश्यकताओं के आधार पर वरीयता दी जाय।
3. वृक्षों के प्रबंधन हेतु ग्रामीण समितियों की व्यवस्था की जाय।
4. वन से संबन्धित कुटीर उद्योगों का संवर्धन हो और इसके लिए कच्चे माल, धन व तकनीकों को मुहैया कराया जाय।

5. वृक्ष लगाने में लोगों की भागीदारी को सुमिश्चित किया जाय और सूखे व ऊसर वनों को हरा-भरा बनाया जाय।
6. स्थानीय परिस्थितियों, आवश्यकताओं और क़िस्मों पर आधारित पौधकरण को वरीयता प्रदान की जाय।

इस प्रकार से इस आंदोलन ने पौधकरण और मृदा अपरदन जैसी आधारभूत मुद्दों पर अपना ध्यान आकृष्ट किया। इस आंदोलन ने 1980 में एक बड़ी जीत हासिल की और तत्कालीन प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी ने प्रदेश के हिमालयी वनों में वृक्षों की कटाई पर अगले 15 वर्षों के लिए रोक लगा दी। सन् 1987 में इस आंदोलन को सम्यक जीविका पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

- **अप्पिको आंदोलन**

चिपको आंदोलन के पश्चात कर्नाटक के उत्तर-पश्चिमी घाट की निवासियों द्वारा किया गया अप्पिको चलैवरी आंदोलन सन् 1983 में किया गया। अप्पिको कन्नड भाषा का शब्द है जिसका कन्नड में अर्थ चिपको होता है। इस क्षेत्र के प्रकृतिक वनों को ठेकेदार द्वारा काट दिया गया था जिसके परिणामस्वरूप मृदा अपरदन हुआ और जलस्रोत सूखने लगे। सिरसों ग्राम के निवासियों को आजीविका हेतु झाड़ियाँ, सूखे टहनियों को इकट्ठा करने व चारा, शहद आदि वनोत्पादों को प्राप्त करने के प्रथागत अधिकारों से वंचित कर दिया गया। कुछ समय के पश्चात ग्रामीणों ने पाया कि उनके गावों के चरो ओर से जंगल धीरे-धीरे गायब होता जा रहा है। इसका परिणाम सितंबर 1983 में आंदोलन के रूप में निकाला और चिपको आंदोलन की ही भांति महिलाएं पेड़ों से लिपट गईं। स्थानीय लोगों ने ठेकेदारों से पेड़ काटने और वृक्षों को गिराने पर प्रतिबंध की मांग की। उन्होंने अपनी आवाज बुलंद कर कहा कि हम व्यापारिक प्रायोजनों के लिए पेड़ों को बिल्कुल भी नहीं कटने देंगे और पेड़ों पर चिपक कर दृढ़ता से बोले कि यदि पेड़ काटने हैं तो उसके लिए पहले हमारे ऊपर कुल्हाड़ी चलाओ। वे वृक्षों के लिए अपने जीवन को भी कुर्बान करने को तैयार हो गये।

जंगल में लगातार 38 दिनों तक चले विरोध आंदोलन ने सरकार को पेड़ों की कटाई पर प्रतिबंध लगाने का आदेश देने के लिए मजबूर किया। यह आंदोलन इतना लोकप्रिय हो गया कि पेड़ काटने आये मजदूर भी पेड़ों की कटाई छोडक़र चले गये। अप्पिको आंदोलन दक्षिणी भारत में पर्यावरण जागृति का पर्याय बना। इसने इस बात पर प्रकाश डाला कि किस प्रकार वन विभाग की नीतियों से वृक्षों के बजरीकरण को बढ़ावा दिया जा रहा है जो जनसाधारण को रोज़मर्रा में उपयोग होने वाले कई आवश्यक संसाधनों से वंचित कर रहा है। इसने इस प्रक्रिया में संलग्न ठेकेदारों, वन विभाग के कर्मचारियों तथा राजनीतिज्ञों की साँठ-गाँठ का भी पर्दाफाश किया। यह आंदोलन अपने तीन उद्देश्यों की पूर्ति में सफल रहा–

- जंगल में विद्यमान वृक्षयोन की रक्षा करना।
- वन भूमि में पुनः वृक्षारोपण करने में।
- वन सम्पदा का प्रयोग प्रकृतिक संसाधनों का ध्यान रखते हुये करना।

अप्पिको आंदोलन ने पश्चिमी घाट के सभी गांवों में व्यापारिक हितों से उनकी आजीविका के साधन, जंगलों तथा पर्यावरण को होने वाले खतरे और उससे उत्पन्न चुनौतियों के प्रति सचेत किया। अप्पिको ने शांतिपूर्ण

तरीके से गांधीवादी मार्ग पर चलते हुए एक ऐसे पोषणकारी समाज के लिए लोगों का मार्ग प्रशस्त किया जिसमें न कोई मनुष्य का ओर न ही प्रकृति का शोषण कर सके।

- **नर्मदा बचाओ आंदोलन**

नर्मदा बचाओ आंदोलन भारत में क्रियाशील पर्यावरण आंदोलनों की परिपक्वता का उदाहरण है। यह आंदोलन नर्मदा नदी परियोजना से उभरा है। नर्मदा नदी परियोजना भारत के तीन प्रमुख राज्यों गुजरात, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र से संबन्धित परियोजना है। सन् 1987 से नर्मदा नदी पर तैयार की जा रही नर्मदा घाटी परियोजना (जिसमें दो महापरियोजनाएं सम्मिलित हैं- प्रथम, गुजरात में सरदार सरोवर परियोजना और द्वितीय, मध्य प्रदेश में नर्मदा सागर परियोजना) सबसे बड़ी इवान बहुउद्देशीय नदी घाटी परियोजना है जो सिंचाई, उत्पादन, बिजली, पेयजल आपूर्ति, बढ़ व सूखे की संभावनाओं पर प्रतिबंध लगाने के प्रयोजन से नियोजित है। यह परियोजना तो बहुत ही लाभप्रद प्रतीत होती है परंतु इसके परिणाम भी बहुत ही भयप्रद हैं। अनुमानतः इस जलाशय में 37,000 हेक्टेयर भूमि जलमग्न हो जाएगी और इस जलमग्न भूमि में 11,000 हेक्टेयर वन सम्मिलित हैं। साथ ही इससे 248 गाँव में निवासरत लगभग एक लाख लोग विस्थापित हो जाएंगे।
उपरोक्त भयप्रद परिणामों की प्रतिध्वनि के रूप में सर्वप्रथम स्थानीय लोगों द्वारा इसका विरोध प्रदर्शन किया गया और यह विरोध प्रमुख रूप से पुनर्वास से संबन्धित था। उसके बाद स्थानीय स्वयंसेवी संगठनों द्वारा इसे एक जन आंदोलन के रूप में संगठित किया गया और विस्थापन, पुनर्वास, आजीविका, संस्कृति आदि प्रकार की समस्याओं को उठाया गया। इस परियोजना के विरोध ने अब एक जन आंदोलन के रूप में विकराल रूप धारण कर लिया था। 1980- 87 के दौरान जनजातियों के अधिकारों की समर्थक गैर-सरकारी संस्था अंक वाहनी के नेता अनिल पटेल ने जनजातिय लोगों के पुर्नवास के अधिकारों को लेकर हाईकोर्ट व सर्वोच्च न्यायालय में याचिका दायर की। सर्वोच्च न्यायालय के आदेशों के परिणामस्वरूप गुजरात सरकार ने दिसम्बर 1987 में एक पुर्नवास नीति की घोषणा की। दूसरी ओर 1988 में इस आंदोलन ने औपचारिक रूप से नर्मदा घाटी परियोजना से संबन्धित सभी कार्यों पर रोक की मांग की। इससे लड़ने के लिए लाखों लोग अपने घरों से बाहर निकले और यह प्रतिज्ञ की कि वे वापस घरों में जाने कि अपेक्षा डूब जान पसंद करेंगे। 1989 में मेघा पाटेकर द्वारा लाए गये नर्मदा बचाओ आंदोलन ने सरदार सरोवर परियोजना तथा इससे विस्थापित लोगों के पुर्नवास की नीतियों के क्रियांवयन की कमियों पर प्रकाश डाला। इस आंदोलन के कारण विश्व बैंक ने सरदार सरोवर परियोजना से अपने हाथ खींच लिए और एक हद तक यह आंदोलन सफल रहा। यथा –

1. 1993 में मन सरोवर से विश्व बैंक का प्रस्थान
2. 1994-99 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सरोवर बांध की निर्मिति पर प्रतिबंध
3. 1999-2000 में महेश्वर बांध से विदेशी निवेशकों ने अपने हाथ वापस लिए
4. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रभावित लोगों के पुनर्वास का आदेश
5. 2003 में राष्ट्रिय पुनर्वास नीति की स्वीकारोक्ति
6. 2005 में सूचना के अधिकार की प्राप्ति

- **चिल्का बचाओ आंदोलन**

उड़ीसा में स्थित एशिया की सबसे बड़ी खारे पानी की झील का गौरव चिल्का को प्राप्त है जिसकी लम्बाई 72 कि.मी. व चौड़ाई 25 कि.मी. और क्षेत्रफल लगभग 1000 वर्ग कि.मी. है। इस झील पर 192 गांवों की आजीविका निर्भर करती है जो मत्स्य पालन खासकर झींगा मछली से जीवन निर्वाह करते हैं। दो लाख से अधिक जनसंख्याऔर 50,000 से अधिक मछुआरे अपनी आजीविका के लिए चिल्का पर आश्रित है। 1986 में, तत्कालीन पटनायक सरकार ने चिल्का में 1400 हेक्टेयर झींगा प्रधान क्षेत्र को टाटा तथा उड़ीसा सरकार की संयुक्त कम्पनी को पट्टे पर देने निर्णय लिया। इसका विरोध मछुवारों के साथ-साथ विपक्षी राजनीतिक पार्टी जनता दल ने भी किया, जिसके कारण जनता दल को विधानसभा की सभी पांचों सीटें पर जीत मिली। लेकिन 1989 में जनता दल के सत्ता में आने पर परिस्थिति फिर परिवर्तित हो गई और परिणाम 1991 में जनता दल की सरकार द्वारा झींगा प्रधान क्षेत्र के विकास हेतु टाटा कंपनी को संयुक्त क्षेत्र कंपनी बनाने के लिए आमंत्रण के रूप में परिलक्षित हुआ।

इस आमंत्रण ने एक संघर्ष की आधारशिला को निर्मित किया। चिल्का के 192 गांवों के मछुआरों ने 'मत्स्य महासंघ' के अंतर्गत संगठित होकर अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करना आरंभ किया और उनके साथ इस संघर्ष में उट्टकल विश्वविद्यालय के छात्रों ने भी बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। 15 जनवरी, 1992 में गोपीनाथपुर गांव में यह संघर्ष जन आंदोलन के रूप में पर्णित हो गया। परंतु इस पर जब सरकार की ओर से कोई सकारात्मक रवैया नहीं अपनाया गया तब चिल्का क्षेत्र के स्थानीय लोगों ने उट्टकल विश्वविद्यालय के छात्रों द्वारा गठित संगठन 'क्रांतिदर्शी युवा संगम' के सहयोग से चिल्का के अंदर बनाए गए बांध को तोडऩा आरंभ किया। अंतत: दिसम्बर, 1992 में उड़ीया सरकार को टाटा को दिये गये पट्टे के अधिकार को खारिज करना पड़ा।

4.4 अन्ना आंदोलन

जन लोकपाल विधेयक की निर्मिति हेतु यह आंदोलन अपने अखिल भारतीय स्वरूप में 5 अप्रैल 2011 को अन्ना हजारे और उनके सहयोगियों द्वारा जंतर-मंतर पर अनशन के साथ शुरू हुआ था। इसे जन लोकपाल विधेयक आंदोलन और भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन के नाम से भी जाना जाता है। यह भारत का राष्ट्र-व्यापी जन-आंदोलन है, जिसके द्वारा देश में भ्रष्टाचार के विरुद्ध कठोर कानून बनाने की अपील की गई। इस आंदोलन में अन्ना के सहयोगियों में अरविंद केजरीवाल, भारत की पहली महिला प्रशासनिक अधिकारी किरण बेदी, प्रसिद्ध लोकधर्मी वकील प्रशांत भूषण, पतंजलि योगपीठ के संस्थापक और योग गुरु बाबा रामदेव प्रमुख थे।

अन्ना हजारे का भ्रष्टाचार अंदोलन देश में भ्रष्टाचार पर बात करने वाला पहला अंदोलन नहीं है इसके पहले जय प्रकाश नारायण के अंदोलन में भी भ्रष्टाचार के मसले पर व्यापक तौर पर विमर्श छेड़ा जा चुका था, परंतु फिर भी यह अंदोलन देश में हुए अन्य अंदोलनों से अलग है।जय प्रकाश नारायण ने भी अपने अंदोलन में भ्रष्टाचार के मुद्दे पर बात की परंतु इनका अंदोलन मूलतः 'मुसहरीअंदोलन' था और इनके अंदोलन में भ्रष्टाचार का मुद्दा आंशिक रूप में था।परंतु अन्ना के अंदोलन में भ्रष्टाचार के मुद्दे को उस स्वरूप में पेश किया गया, जिस रूप में भ्रष्टाचार पर अभी तक किसी भी अंदोलन में बात नहीं की गई।एक लोकतांतत्रक राज्य के

रूप में भ्रष्टाचार को भारत की शासकीय संस्थाओं और शासक वर्ग को सीधे तौर पर एक-दुसरे से अंतर्संबंधित करके देखा गया। भ्रष्टाचार का इतने वृहत पैमाने पर प्रसिद्ध होना इसलिए संभव हो सका क्योंकि सूचना के अधिकार का प्रयोगऔर मीडिया द्वारा इस संदर्भ में सकारात्मक भूमिका का निर्वहन किया गया।सामाजिक खर्च और योजनाओं में घोटालों के उजागर होने के पीछे मनीष सीसोदिया और अरविंद केजरीवाल की संस्था परिवर्तन के कार्य है जिसने इन घोटालों का पर्दाफाश करने में योगदान दिया।

संचार साधनों के विकास होने के कारण यह अनशन आसानी से पूरे भारत में फैल गया और धीरे-धीरे एक बड़ा जनसमूह इसके समर्थन में सड़कों पर उतर गया। इन्होने भारत सरकार से के मजबूत भ्रष्टाचार विरोधी लोकपाल विधेयक बनाने की अपील की और अपनी अपील के अनुसार सरकार को लोकपाल का एक मसौदा भी दिया था। परंतु मनमोहन सिंह के नेतृत्व वाली तत्कालीन कांग्रेसी सरकार ने इसके प्रति उदासीन रवैया अपना और इसकी उपेक्षा की। इसके फलस्वरूप हुये अनशन के प्रति भी तत्कालीन सरकार का रवैया उदासीन ही रहा। हालांकि इस अंशना के आंदोलन के रूप में पर्णित होने पर सरकार ने शीघ्र ही एक समिति को निर्मित किया और 16 अगस्त तक लोक विधेयक को पास कराने की बात को संसद में स्वीकारोक्ति भी दे दी गई। अगस्त से आरंभ हुये मानसून सत्र में एक विधेयक को पारित किया गया परंतु वह अपेक्षाकृत कमजोर था और लोकपाल के विपरीत था। अन्ना हजारे ने इसके विरोध में पुनः अनशन पर बैठने की बात की और जब वे अनशन के लिए तैयार होकर जा रहे थे की तभी दिल्ली पुलिश ने अन्ना हजारे को गिरफ़्ता कर लिया। साथ ही साथ उनके कई सहयोगियों को भी गिरफ्तार कर लिया गया। सरकार की इस प्रवृत्ति से उद्वेलित जनता ने प्रदर्श करने आरंभ कर दिये। अन्ना द्वारा मजिस्ट्रेट की बात न मानने पर उन्हें तिहाड़ जेल में सात दिनों के लिए भेज दिया गया। इस बात ने पूरे देश में आक्रोश पैदा कर दिया और फलतः अगले 12 दिनों तक देश में व्यापक स्तर पर धरना, प्रदर्शन और अनशन हुये। इन बातों से सरकार ने सशर्त अन्ना को रिहा करने का आदेश दिया परंतु अन्ना ने उनकी शर्तों को मानने से साफ तौर पर मना कर दिया। इसके फलस्वरूप अन्ना ने जेल में ही अनशन जारी रखा और जेल के सामने हजारों लोग उनके समर्थन में डेरा डाले रहे। इसके बाद अन्ना को 15 दिनों के लिए रामलीला मैदान में अनशन हेतु अनुमति मिली। अन्ना ने रामलीला मैदान में अनशन के दसवें दिन अपने अनशन को समाप्त करने के लिए सार्वजनिक रूप से तीन शर्तों को प्रस्तुत किया। ये तीन शर्तें थीं–

- सभी सरकारी कर्मचारियों को लोकपाल के दायरे में लाया जाय।
- सभी सरकारी कार्यालयों में एक नागरिक चार्टर लगाया जाय।
- सभी राज्यों में लोकायुक्त हों।

अंततः संसद द्वारा इन तीनों शर्तों पर सहमती का प्रस्ताव पास करने के बाद 28 अगस्त को अन्ना ने अपना अनशन स्थगित करने की घोषणा की।

4.5 जनसत्याग्रह मार्च

यह एकता परिषद द्वारा चलाया गया एक अहिंसक पदयात्रा अभियान है जो ग्वालियर से 2 अक्टूबर 2012 को आरंभ होकर 29 अक्टूबर 2012 को दिल्ली तक चलाया गया था और यह 350 किलोमीटर के पूरे सफर को तय करता है। जन सत्याग्रह गांधी द्वारा चलाये गए नमक सत्याग्रह (1930) पर आधारित है। जन सत्याग्रह मार्च अहिंसक रूप से कार्य करने वाले लोगों का एक अनुशासित संगठन है जो बड़े जनसमूह को संगठित करने का प्रयास है ताकि ग्रामीण भारत की कृषि और खाद्यान्न उत्पादन के महत्वों को उजागर किया जा सके जो कि नगरीय भारत के भविष्य निर्माण हेतु आवश्यक है। इस जनसत्याग्रह को निम्न उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु चलाया गया था–

- एक व्यापक राष्ट्रीय भूमि सुधार अधिनियम और प्रभावी कार्यान्वयन व निगरानी के संस्थानों की व्यवस्था की जाय जो गरीब, भूमिहीन, बेघर और हाशिए के समुदायों के लिए भूमि और आजीविका के संसाधनों तक पहुंच उपलब्ध करा सकें।

- गरीब भूमिहीन और बेघर (ग्रामीण और शहरी) के लिए भूमि फिर से वितरण की प्रक्रिया शुरू करने के लिएसभी उपलब्ध कानूनों, नीतियों (केंद्रीय कानूनों के साथ ही राज्य कानून) में व्यापक रूपरेखा तैयार करने की आवश्यकता है और समयबद्ध तरीके से कार्यान्वित करने की आवश्यकता है।

- भूमि से संबंधित मुद्दों पर केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा गठित विभिन्न समितियों द्वारा किए गए प्रगतिशील सिफारिशों (जिन्हें लंबित रखा गया है) को गंभीरता से लागू किया जाना चाहिए।

- एक कानूनी प्रावधान का निर्माण किया जाना चाहिए जिसमें महिलाओं को पारिवारिक भूमि जोत के वितरण में बराबर का दर्जा दिया जाय और यह अगली योजना अवधि के भीतर किया जाना चाहिए। सरकार को यह लगातार सुनिश्चित करते रहना चाहिए कि महिलाओं को सारे लाभ मिले जो एक किसान होने के नाते मिलते हैं। साथ ही साथ एकल महिलाओं को एक स्वतंत्र शीर्षक सुनिश्चित करने की प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

- भूमि, जल, वन और खनिज जैसे प्राकृतिक संसाधन, जो किसी भी समूह के लिए जीवन निर्वाह का साधन उपलब्ध करते हैं, का बिना किसी पूर्व अनुमति/सूचना के अन्य प्रयोजन हेतु विनियोजन नहीं होना चाहिए और सहमति के पश्चात इसके प्रयोग हेतु एक वैयक्तिक अथवा सामुदायिक पट्टा व्यवस्था होनी चाहिए।

- प्रशासनिक और अन्य अधिकारियों द्वारा गरीबों के मूलभूत अधिकारों के हनन तथा भूमि, जल, वन और खनिजों से संबंधित संवैधानिक अधिकारों का कार्यान्वयन न किए जाने पर दंडात्मक कारवाई की जानी चाहिए।

8 अक्टूबर को एकता परिषद और तत्कालीन ग्रामीण विकास मंत्री जयराम रमेश के मध्य समझौता हुआ जिससे कि आगरा में मार्च को रोका गया। इस सत्याग्रह के परिणामस्वरूप दो बातों पर अमल करने का आश्वासन दिया गया–

- अगले छः महीनों के अंदर राष्ट्रिय भूमि सुधार नीति का एक मसौदा पेश किया जाएगा और शीघ्र ही उसे अंतिम रूप दिया जाएगा।

- भूमिहीन लोगों को कृषि हेतु भूमि उपलब्ध कराने और बेघर लोगों को उनके राज्य-क्षेत्र में आवास उपलब्ध कराने का कानूनी प्रावधान बनाया जाएगा।

4.6 सारांश

सामान्य तौर पर आंदोलनों का सृजन किसी न किसी असंतोष के परिणामस्वरूप होता है। नव सामाजिक आंदोलन भी इसकी परिधि से बाहर नहीं हैं। ये भी असंतोष के परिणामस्वरूप ही उत्पन्न होते हैं परंतु मोटे तौर पर ये अस्मितापरक असंतोष से जन्मते हैं। इस इकाई में नव सामाजिक आंदोलन के क्षेत्र में अवस्थित पर्यावरणीय आंदोलन, नारीवादी आंदोलन, मानवाधिकार आंदोलन और छात्र आंदोलनों की रूपरेखा को प्रस्तुत किया गया है।

4.7 बोध प्रश्न

प्रश्न 1: नव सामाजिक आंदोलन को स्पष्ट कीजिये।

प्रश्न 2: चिपको और अप्पिको आंदोलन का वृहत वर्णन कीजिये।।

प्रश्न 3: टिप्पणी कीजिये

3. नर्मदा बचाओ आंदोलन 2. चिल्का बचाओ आंदोलन

3 . अन्ना आंदोलन

ज्ञान शांति मैत्री

4.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- शाह, घ. (2009). भारत में सामाजिक आंदोलन, जयपुर: रावत पब्लिकेशन
- चक्रवर्ती, व. एवं पाण्डेय, र.क. (2012).आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन, नई दिल्ली: सेज पब्लिकेशन इंडिया प्राइवेट लिमिटेड
- सिंह, व.ए. एवंसिंह, ज. (2005). भारत में सामाजिक आंदोलन,जयपुर: रावत पब्लिकेशन
- सरस्वती, स. स. (2012). किसान आंदोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि. दिल्ली: ग्रांथशिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड

इकाई -5 महात्मा गांधी की प्रासंगिकता

इकाई की रूपरेखा

5.1 उद्देश्य
5.2 प्रस्तावना
5.3 विविध क्षेत्रों में गांधी की प्रासंगिकता
5.4 सारांश
5.5 बोध प्रश्न
5.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.1 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको निम्न बिन्दुओं में सक्षम बनाना है –

- विविध क्षेत्रों में गांधी की प्रासंगिकताबारे में समझ विकसित कर पाने में।

5.2 प्रस्तावना

महात्मा गांधी भारत ही नहीं संपूर्ण दुनिया में सत्य एवं अहिंसा का संदेश फैलाने वाले पुण्य आत्मा थे। उनकी दृष्टि में सदैव गीता के कर्मयोग, सांख्ययोग, भक्तियोग एवं राजयोग की ज्योति जलती थी। भारत ऋषियों एवं सत्तों की भूमि रही है। यहाँ महावीर, महात्मा बुद्ध, कबीरदास, रविदास एवं शंकराचार्य जैस आप्त पुरूष पैदा हुए। जिन्हों ने सत्य के साथ अहिंसा को महत्वपूर्ण मानवीय मूल्य माना। परन्तु महात्मा गांधी 'सत्य एवं अहिंसा' को सैद्धान्तिक स्तर से व्यावहारिक स्तर पर उतारा। गांधी का संपूर्ण जीवन दिग्विजयी एवं आत्मजयी के मध्य संतुलन का रहा है। गांधी ने अतिरेक के जगह समन्वय का दर्शन अपने जीवन में अपनाया। व्यवहार एवं सिद्धांत दोनों अपने अंतर को गांधी के पास पहुँचकर खत्म कर देतें है। गांधी की दृष्टि में व्यवहार परक सिद्धांत ही प्रासंगिक हैं।

5.3 विविध क्षेत्रों में गांधी की प्रासंगिकता

वर्तमान विश्व एवं गांधी की प्रासंगिकता :- आज पूरे दुनिया की लगभग सात अरब मानवीय जनसंख्या हो चुकी है। विचारधारा के तौर पर हम देखे तो पूँजीवाद संपूर्ण दुनिया में अपना पैर जमा चुका है। प्रतिफल व्यक्तिवाद उपभोक्ता, अलगाववाद, संघर्षवाद, अतिप्रतिक्रियावाद, क्षेत्रवाद, सम्प्रदायवाद, आतंकवाद जैसी विचारधाराएँ भी पूरी दुनिया में हिलोरे मार रही है। इन विचारधाराओं के सक्रिय रूप के कारण पूरी दुनिया हिंसा, भ्रष्टाचा, संवेदनहीनता असहिष्णुता जैसी बीमारी से ग्रस्त हो चुकी है। ऐसे में महात्मा गांधी का जीवन दर्शन एवं सिद्धांत ही एक मात्र आधार है जिस पर विनाश के मुख्य में जा रही मानवता को बचाकर पुन: नवीन कलेवर में स्थापित किया जा सकता है। आज राष्ट्र-वाद के नाम पर देशों के बीच हिंसा एवं प्रति हिंसा जारी है जिसके कारण मानवता का संघार हो रहा है। ऐसे में गांधी के अंतरराष्ट्रीय दर्शन का सहारा लिया जा सकता है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि गांधी आज भारतीय एवं विश्व दोनों समाज के लिए अनेक दृष्टि से प्रासंगिकता रखते है।

कल्याणकारी राज्य एवं गांधी की प्रासंगिकता :- दुनिया में औद्योगिक क्रांति के बाद सामंतवाद का खात्मा हुआ और जो लोकतांत्रिक सरकारे बनी उन पर आवाम का यह दबाव बना कि कमजोर पिछड़े एवं हाशिये पड़ खड़े लोगों के सुरक्षा एवं कल्याण के लिए काम करे। लोकतांत्रिक सरकारों ने जनता के हित में अनेक कानून एवं कार्यक्रम प्रस्तुत करना प्रारंभ किया। 1215 में ब्रिटेन में मैग्नाकार्टा, 1609 में एलिजाबेथ कानून तथा 1941 में वेवरिज रिपोर्ट लाया। ये सारे कानून कही न कहीं समाज कल्याण के क्षेत्र में प्रयास थे। राज्य समाज के स्वास्थ्य शिक्षा सुरक्षा एवं जीवन गरिमा के लिए कार्य करता है तो ऐसे राज्य को कल्याणकारी राज्य भी कहा जाता है।

आज जैसे-जैसे समाज में आर्थिक वृद्धि होती जा रही है समाज व्यक्तिवादी स्वरूप को धारण करते जा रहा है इस व्यक्तिवादी स्वरूप का जैसे- जैसे विस्तार हो रहा है वैसे-वैसे राज्य की शक्ति बढ़ती जा रही है। राज्य की शांति में वृद्धि के साथ-साथ राज्य के उत्तरदायित्व में भी वृद्धि होती जा रही है। गांधी जी कहते थे कि अच्छी सरकार वह होती है जो जनता पर कम से कम शासन करे। गांधीजी के अनुसार सत्ता का विकेन्द्रीकरण सम्यक शासन व्यवस्था का उदाहरण है। जैसे-जैसे लोकतंत्र का विकेन्द्रीकरण बढ़ेगा समाज के कल्याण के लिए अधिक लोग निर्णय प्रक्रिया में भाग लेगे। गांधी जी का यह भी कहना कि लोकतांत्रिक शासन प्रक्रिया में सभी जाति, धर्म, भाषा और क्षेत्र के लोगों की भागीदारी ही कल्याणकारी राज्य का असली रूप तैयार कर सकती है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि राज्य को कल्याणकारी स्वरूप धारण करने के लिए गांधी के सत्ता विकेन्द्रीकरण के सिद्धांत को अक्षरश: पालन करना होगा।

लोकतंत्र एवं गांधी की प्रासंगिकता :- आज कुछ विवादों को छोड़ते हुए देखा जाये तो आधुनिक दुनिया के लिए लोकतांत्रिक सार्वभौमिक शासन पद्धति बन चुका है। लोकतांत्रिक शासन पद्धति में देश की जनता अल-अलग क्षेत्रों में अपना-अपना प्रतिनिधि चुनकर भेजती है। ये प्रतिनिधि अपना मुखिया चुनते है। इस प्रकार देखा जाये तो लोकतंत्र प्रक्रिया जनता को शासन करने का अधिकार देती है। जनता खुद की खुद पर शासन करते के लिए खुद की सरकार बनाती है। पर सच्चे अर्थ में होता यह है कि जनता द्वारा बनायी गई सरकार जनता के लिए काम न करके अपने लिए कार्य करने लगती है। महात्मा गांधी कहते हैं कि लोकतंत्र में निर्वाचित प्रतिनिधियों को सत्ता के लिए शासन न करके जनता के सेवा हेतु राजनीति करनी चाहिए। जनता अपने प्रतिनिधियों पर विश्वास करके उनको शासन में पहुँचाती है इसिलए इन प्रतिनिधियों का नैतिक कर्तव्य बनता है कि समाज के कल्याण के लिए कार्य करें। महिलाओं को भी राजनीति में सम्मिलित होने की बात महात्मा गांधी जी करते हैं। वे कहते है कि लोकतांत्रिक शासन प्रणाली में पुरूषों के समान जब महिलाएँ भी भागीदारी प्राप्त करेंगी तभी जाकर शासन व्यवस्था मजबूत होगी तथा सक्षम राष्ट्र का निर्माण हो सकेगा। भारत के संदर्भ में गांधी के विचार थे कि भारतीय लोकतंत्र तभी मजबूत होगा जब भारतीय समाज में गरीबी, अस्पृश्यता, लिंगभेद एवं धर्माधता जैसी बीमारी नहीं होगी।

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी तथा गांधीकी प्रासंगिकता:- महात्मा गांधी सिद्धांत एवं व्यवहार में समरसता बरतते थे। उन्होंने जीवन को प्रवृतिवादी तरीके से जीने की वकालत किया। गांधी जी विज्ञान एवं तकनीकी के प्रति पागलपन को मानवता के लिए विनाशकारी माना। वे कहते थे कि विज्ञान एवं तकनीकी के पीछे दुनिया अंधी बनकर दौड़ रही है। मनुष्य यांत्रिक मशीन बनता जा रहा है जो मानव समाज के हित में नही है। समाज के

लोग जन विज्ञान एवं तकनीकी पर बहुतजोर दे देते है तो सामाजिक संरचना खत्म होने लगती है। सामाजिक मूल्यों, मान्यताओं पर समाज का ध्यान खत्म हो जाता है तथा तकनीकी पर ज्यादा केन्द्रित हो जाता है तब उस समाज एवं सभ्यताका पतन हो जाता है। इस प्रकार देखा जाये तो मेयों, मेसोवोटामिया एवं सिन्धु घाटी की सभ्यता का पतन इस लिए हुआ कि ये सभ्यताएँ जरूरत से ज्यादा तकनीकी एवं विज्ञान पर ध्यान केन्द्रित कर ली थी इसी लिए इनका पतन हुआ।

आज का पुरा विश्व अस्त-शस्त्र, परमाणु बम, हाइड्रोजन बम, जैविकबम, दानवाकार मशीनों का निर्माण कर रहा है। भौतिकवादी जीवन पद्धति में तकनीकी एवं विज्ञान को अतिरेक प्राथमिकता प्रदान की जा रही है जिसके कारण पूरी मानवता प्रकृति से दूर विनाश के पास खुद के खात्मे से अंजान पड़ी है। इस प्रकार देखा जाये तो मानवता का बचाये रखना है और विकास को संतुलित रखना है तो आज गांधी जी के विचारों का अनुशीलता करना होगा तभी समाज बच पायेगा।

कारपोरेट जगत एवं गांधी की प्रासंगिकता :- महात्मा गांधी अपने सात पातकों में से 'नैतिकता विहीन व्यापार' को प्राथमिकता देते हुए कहते हैं कि वे लोग जो समाज में वस्तुओं का उत्पादन एवं वितरण करते हैं उन्हें समजा के हित में कार्य करना चाहिए। मिलवाट खोरी एवं जमाखोरी से समाज का अहित होता है। अत: व्यापारियों को खुद नैतिक बल का परिचय देते हुए समाज के हित में कार्य करना चाहिए। आज पूरे विश्व में लगभग 85% सम्पदा दुनिया के 15% लोगों के हाथों में केन्द्रित है वही 85% जनसंख्या मात्र 15% सम्पदा में अपना गुजर-बसठ कर रही है। ऐसे संसार में अंतिम व्यक्ति तक खुशहाली एवं सम्पन्नता लानी हो तो गांधी जी के नैतिकता विहीन व्यापार के सिद्धान्त की व्यावहारिकता को समझना होगा। अन्तिम रूप में इसे व्यावहारिक रूप भी देना होगा।

पर्यावरण एवं गांधी की प्रासंगिकता :- विकास के नाम पर प्राकृतिक पर्यावरण का अंधाधुंन विदोहन हो रहा है। जिसके कारण पर्यावरण प्रदूषण एवं अवनयन की दर बढ़ती जा रही है। प्रतिफल स्वरूप अनेक समस्याएँ आ रही है। महात्मा गांधी प्रकृति के संरक्षण एवं स्वच्छता पर ध्यान देते थे। उन्होंने अपना सेवाग्राम आश्रम प्रकृति के गोंद में बनाया था। उनका कहना था कि पृथ्वी एवं इसके प्राकृतिक वातावरण के रहने पर ही मानवता रह सकती है। इस लिए आवश्यकता है कि पर्यावरण की सुरक्षा एवं संवर्द्धन किया जाये। इस नाते पर्यावरण संरक्षण एवं विकास के दृष्टि से भी गांधी के विचार की प्रासंगिकता है।

विश्व परिवार एवं गांधी की प्रासंगिकता :- संपूर्ण विश्व एक परिवार है। वसुधैव कुटुम्बकम हमारी संस्कृति का मूलार्थ रहा है। जब देश आजाद हुआ तो गांधी जी ने कहा कि यह स्वतंत्रता नही स्वराज्य प्राप्त हुआ है जिसमें विश्व नागरिक बननेका भाव हुया है। गांधी जी किसी भूगोल खण्ड की मानवता की बात न करके संपूर्ण विश्वी के मानवता की बात करते है। जब वह दक्षिण अफ्रीका में थे तो वहाँ पर रोगियों एवं घायलों की देखरेख के लिए कोसाँ दूर पैदल चलरक जाते थे। उनका जीवन जाति-धर्म से भी उपर था इसीलिए हिन्दु धर्म को अपना धर्म मानते हुए भी मुसलमानों के लिए लड़ते रहे। इसलिए आज के व्यक्तिवादी एवं संकीर्णता वृद्धि समाज में गांधी के विचारों प्रासंगिकता बनती है।

आधुनिकभारत के निर्माण में गांधी की प्रासंगिकता : - महात्मा गांधी गीता को अपनी माँ मानते थे। गीता में कर्म को प्राथमिकता दी गई है। गीता निक्काम कर्म की बात करती है। निक्काम कर्म का पुरूषार्थ से गहरा रिस्ता है। पूरे मन: वचन एवं शरीर से किसी कर्म को करने की प्रतिबद्धता का नाम ही पुरूषार्थ कहलाता है। महात्मा गांधी भारत के लोगों को कहते हैं कि धार्मिक जीवन का अर्थ कर्मों से पलायनता नहीं कर्मो के प्रति अनासक्त होकर कर्म करना ही सबसे बड़ी पूजा है। इसलिए भारतीय लोगों को भाग्यवादी सोच को खत्म करके पूरे पूरूषार्थ से कर्म करने की आवश्यकता है। कहा भी जाता है कि भगवान उसी की सहायता करता है जो अपनी सहायता स्वयं करते हैं।

अध्यात्मिकता के क्षेत्र में गांधी की प्रासंगिकता :- महात्मा गांधी कुशल वकील राजनीतिज्ञ एवं समाजसेवी के साथ-साथ एक संत भी थे। संत के रूप में उनका आध्यात्मिक जीवन बड़ा ही संयमित तथा लोक संदेशगामी था। महात्मा गांधी ईश्वर में अटूट विश्वास करते थे। वे कहते थे कि अंतआत्मा में ईश्वर का ध्यान करने से अटूट शक्ति प्राप्त होती है। गांधी के जीवन के एकादशव्रत के प्रारम्भिक पाँच मूल्य सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह एवं ब्रम्हचर्य की स्थापना जैन, बौद्ध एवं हिन्दु धर्म में भी की गई है। गांधी जी सत्य को ईश्वर मानते थे तो इस सत्य को प्राप्त करने के लिए अहिंसा को साधन मानते थे। लोक कल्याण के दृष्टि से अस्तेय (चोरी न करना)तथा अपरिग्रह (अपनी आवश्यकता से ज्यादा धन न रखना) के सिद्धांत का पालन करने की बात करते है। गांधी जी समाजसेवी लोगों को अविवाहित रहकर ब्रम्हचर्य का पालन करने की बात करते है। वही अस्वाद के लिए खने के साथ नीम की पत्ती की चटनी खाते थे। आज के राजनेता एवं समाजसेवी गांधी जी से आध्यात्मिक प्रेरणाले तो बहुत ही अच्छा होगा।

चिकित्सा के क्षेत्र में गांधी की प्रासंगिकता :- गांधी जी अपनी पुस्तक हिन्द स्वराज में आधुनिक चिकित्सा पद्धति एवं दवाओं का विरोध किया है। वे आधुनिक चिकित्सा जगह प्राकृतिक चिकित्सा की वकालत करते है। उनका कहना है था कि आधुनिक चिकित्सा पद्धति रोग को जड़ से खत्म नही करती जबकी प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति रोग को खत्म कर देती है। प्राकृतिक चिकित्सा के अंतर्गत मृदाथेरेपी, जल थेरेपी, वायु रेचन ब्रम्हचर्य, आकाश में बैठकर ध्यान आदि के संदर्भ में गांधीजी ने विचार प्रस्तुत किये और अपने जीवन में इसका भरपूर पालन भी किया। आज चिकित्सा के क्षेत्र में धोखेबाजी एवं हिंसा जारी है। अगर गांधी जी के प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति को बढ़ावा दिया जाये तो अत्याधिक राष्ट्र एवं मानव जाति को फायदा होगा।

अस्पृश्यता निवारण के क्षेत्र में गांधी की प्रासंगिकता :- महात्मा गांधी अस्पृश्यता निवारण के संदर्भ में सदैव तत्पर रहे। उन्हों ने हरिजनों के साथ सदैव सहानुभूति एवं सक्रियता रखी। वे छुआछुत के विरोध में कहते है कि यदि मेरा जन्म पुन्न हो तो मैं ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र के रूप में न हो बल्कि अतिशुद्र के रूप में हो ताकि मैं पूरी तरह को तथा उनकों इस दु:खों एवं कष्टों से छुटकारा दिला सकूँ। गांधी जी अस्पृश्यता के निवारण के तिथे पूरी ताकत के साथ लड़ने की बात करते हैं तथा कहते है कि विजय लक्ष्य की प्राप्ति में नहीं, अपितु उसके लिए अथक प्रयास में निहित है। आज भी भारत में जाति प्रथा कायम है और आवश्यकता है कि इसके निवारण के लिए गांधी के विचारों का पालन किया जाये।

लैंगिक असमानता एवं गांधी की प्रासंगिकता :- महात्मा गांधी औरत को पुरूष के बराबर योग्य एवं महत्वपूर्ण मानते है। कुछ मामलों में तो वह औरत के ममत्व, स्नेह, प्रेम को ज्यादा स्थान देते है तथा कहते है कि इन मूल्यों का संरक्षण औरत ही करती एवं मानवता को संवर्द्धित करती है। वे कहते हैं कि औरत को खुद की आबरू के रक्षण के लिए ताकतवर नही चारित्रिक निर्मल बनना होगा। क्योंकि जो स्त्री ताकतके बल पर खुद की रक्षा करती है ताकत के खत्म होने पर वह परास्त हो जायेगीपर चारित्रिक निर्मलता के सामने सभी लोग झुक जायेंगे। औरत एवं पुरूष को मानवता के विकास मैं समान महत्व देकर नैंगिक समानता को गांधी जी प्रासंगिक बनाते है।

साम्प्रदायिक एकता एवं गांधी की प्रासांगिकता :- महात्मा गाँधी जी अपने रचनात्मक कार्यक्रम में कौमी एकता को भी बहुत महत्व देते है और कहते हैं कि धार्मिक सहिष्णुता की भावना ही मनुष्य को मनुष् बनाती है। एक सच्चा धार्मिक व्यक्ति जितना अपने धर्म को महत्व देता है उतना ही दुसरेके धर्म को भी महत्व प्रदान करता है। अपनी माँ को प्रेम करना और सम्मान देना तथा दूसरे की माँ को भी वैसा प्रेम एवं सम्मान की भावना रखना ही सच्ची धार्मिक भावना है। इस प्रकार आज धर्म के नाम पर आतंकवाद, अलगाव को खत्म करने में गांधी का साम्प्रदायिक विचार प्रमुख है।

शिक्षा और गांधी की प्रासांगिकता :- महात्मा गांधी व्यावहारिक जीवन को महत्व प्रदान करने वाले व्यक्ति थे। वे जो कहते थे वही करते भी थे। अर्थात गांधी जी के कथनी में करनीमें अंतर नही था। उसी प्रकार वे शिक्षा क बात करते थे। उनके शिक्षा संबंधी विचार बुनियादी शिक्षा के नाम से जाना जाता है। वे शिक्षा का अर्थ व्यक्ति के शारीरिक मानसिक एवं आत्मिक को मानते थे। इसके इस विचार को 341 (Head, Hand and Heart) कहा जाता था। गांधीजी का कहना था कि शिक्षा ऐसी हो कि जो जीवन के व्यावहारिक समस्याओं को दूर कर सके। इसी लिए वे प्रारंभिक शिक्षा को कटाई बनाई सिलाई श्रम से जोड़ कर देखते थे। उनका कहना था कि जितना ज्ञान अथवा सिद्धांत को व्यवहार का रूपन दिया जा सके उसकी कोई प्रासंगिकता नहीं है। औस उच्च शिक्षा के बावजूद भी रोजगार प्राप्त करना संभव नहीं है ऐसे में गांधी जी के शिक्षा संबंधी विचार अधिक प्रासंगिक है।

आधुनिक जीवन पद्धति एवं गांधीकी प्रासांगिकता :- आज की मानव जीवन की पद्धति पूरी तरह अवैज्ञानिक प्रवृत्तिसे दूर उपभोक्तावादी बन गई है। जीवन के हर क्षेत्रमें संयम हीनता, भागमभाग एवं विघटन बढ़ती जा रही है जिसके कारण तनाव, अवशाद, रक्तचाप एवं मोटापा जैसे- बीमारियाँ बढ़ती जा रही है। गांधी जी संयम, त्याग एवं प्रकृति के साथ सामंजस्य बैठाकर जीवन जीने की वरत करते थे। वे कहते थे कि किसी एक ही व्यक्ति के लोभ को पूरा करने में दुनिया की चीज कम है पर संपूर्ण मानवता के आवश्यकता को पूर्ण करने हेतु पर्याप्त चीजे पृथ्वी के पास है। इस तरह संयम एवं त्याग संबंधित विचार आज गांधी के प्रासांगिक है।

5.4 सारांश

सारांश रूप में देखा जाये तो महात्मा गांधी एक ऐसे व्यक्ति थे जिनकी जीवन पद्धति कर्य एवं सिद्धांत की एकरूपता का दर्शन प्रदान करती थी। वे भारत ही नहीं अपितु विश्व के कल्याण के लिए सत्य एवं अहिंसा का सिद्धांत जो दिया आज भी प्रासांगिक है और आनेवाले कल में भी प्रासांगिक रहेगा। आज दुनिया निरंतर यात्रिक होती जा रही है। व्यक्तिवादी सोच बढ़ रही है तथा समूह वादी सोच कमजोर होती जा रही है। मनुष्य में संयम एवं धैर्य कमजोर बढ़ता जा रहा है। राष्ट्रवाद के नाम पर देशों की सरकारों में टकराहट बढ़ रही है जो कभी भी युद्ध का रूक ले सकती है। ऐसे में गांधी जी के एकादश व्रत, सात पातक, रचनात्मक कार्यक्रम एवं प्राकृतिक चिकित्स के सिद्धांत ही इस दुनिया को आधुनिकता के पागलपन से बचा सकते है। और आवश्यकता है कि विश्व समाज गांधी जी के विचारों की आदर्श मात्र न मानकर इसकी व्यावहारिकता के महत्व को समझे एवं लोक जीवन का हिस्सा बनाये।

5.5 बोध प्रश्न

प्रश्न 1: शिक्षा के क्षेत्र में गांधी की क्या प्रासंगिकता है? स्पष्ट कीजिये।

प्रश्न 2: अध्यात्मिकता के क्षेत्र में गांधी की प्रासंगिकताका वृहत वर्णन कीजिये।

प्रश्न 3: टिप्पणी कीजिये

1. आधुनिक जीवन दृष्टि 2. लैंगिक असमानता एवं गांधी की प्रासंगिकता

5.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- प्रभु, आर.के.एवं राव, यू.आर. (अनु. भवानी दत्त पंड्या) (1974). महात्मा गांधी के विचार. दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट.
- मशरूबाला, किशोरलाल. (2001). गांधी विचार-दोहन. नई दिल्ली: सस्ता साहित्य मंडल.
- सुमन, श्रीरामनाथ. (1967). सत्याग्रह : निष्क्रिय प्रतिरोध, असहयोग, सविनय एवं, सत्याग्रह बनारस: उत्तर प्रदेश गांधी स्मारक निधि.
- आचार्य,नंद किशोर.(2004). सभ्यता का विकल्प. बीकानेर : वाग्देवी प्रकाशन.

ज्ञान शांति मैत्री